उद्गम के द्वारों पर

२

विराट हृदय

शंभु प्रसाद बहुगुणा

सूची

विराट् हृदय

"विश्व के ईश्वर वही हैं जो सभी की वेदना में हृदय से हैं रुदन करते,
जो सभी की वेदना को हैं समझते,
कवि वही जिन के स्वरों में भरी रहती है हृदय की हार उर की वेदना !"

एक व्यक्ति है जिस की आत्मा इस देश में ऐसे महान् पुरुषों की सृष्टि कर रही है जिन के प्रयत्नों से भारत एक बार फिर से विश्व का मुकुट बन जावेगा। उसे देखिये, वह गेरुयें वस्त्र पहिने है, वह निस्पृह है, उस ने काम क्रोध को जीत लिया है। उस अजेय जितेन्द्रिय तपस्वी के स्वर सुनिए वह कह रहा है--"किसी बात में केवल इसलिए विश्वाश मत करो कि बहुत से लोग उसे मानते हैं न इसलिए ही कि वह तुम्हारे आचार्यों की कही हुई है, अथवा तुम्हारे धर्म-ग्रंथों में लिखी हुई है, बल्कि प्रत्येक बात को अपने व्यक्ति गत अनुभव की कसौटी पर जाँचो, यदि वह तुम्हें अपने तथा औरों के लिये हितकर जान पड़े तो उसे मान लो न जान पड़े तो न मानो।" कबीर ने सिद्धार्थ गौतम (५६३-४८३ई० पू०) के इन स्वरों को सुना था, रवीन्द्रनाथ (६ मई १८६१ई०- ७ अगस्त १९४१ ई०), गाँधी (२ अक्टूबर १८६९-३० जून १९४८), 'प्रसाद' और चन्द्रकुँवर ने इन को अपने अंतर की मुरली में कालिदास की चेतना सहित भरा। कालिदास की आत्मा, ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी तक इस देश में सुंदर साहित्य की सृष्टि करती रही। बारहवीं शताब्दी से जयदेव का प्रभाव बढ़ने लगा और उन्नीसवीं शताब्दी तक भारत गिरता ही नजर आया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में कालिदास फिर जगे, और मैं देख रहा हूँ जहाँ जहाँ यह मूर्ति जाती है वहाँ- वहाँ सुन्दर सुमन खिल उठते हैं, नये नये नगर खड़े हो जाते हैं, उपवनों में अपूर्व सुन्दरियाँ दिखाई देती हैं। इस सुन्दर मूर्ति के सन्मुख मैं सिर झुकाता हूँ।

गाँधी जयन्ती, चं० २ अक्टूबर १९५० ई०, शंभुप्रसाद बहुगुणा

१ हिन्दी कविता और 'प्रसाद'

हिन्दी-कविता के जन्म लेते ही देश पराधीन हो गया, इसलिए हिन्दी-कविता का स्वतंत्र रूप में पनपना उतना ही कठिन था जितना संदूक के भीतर रक्खे हुए किसी पेड़ का अनंत आकाश में फैल कर मुक्त साँसें लेना, और छाया देने के योग्य हो सकना।

हिन्दी, विजितों की बोली थी। राजसभाओं में तुर्की-फारसी और अरबी का प्रचार था, गाँवों की जनता तथा पंडितों के समाज में हिन्दी अनादर के भाव से देखी जाती थी। विषम दशा थी, न तो खाते ही बनता था और न उगलते ही। संस्कृत में जो कह सकता था, संस्कृत में वह कहता, फारसी में जो कह सकता था, फारसी में वह कहता, जो कुछ नहीं जानता उसे विवश हो अपनी ही बोली में कहना पड़ता। और ऐसे ही लोगों ने हिन्दी-भाषा को भूख प्यास से नहीं मरने दिया, समय-असमय उस की खबर वे लेते रहे।

हिन्दी पर विदेशी प्रभाव के रूप में, फारसी मसनवियों का प्रभाव सब से पहले पड़ा। कुतुबन, मंझन, जायसी (१४९४ - ई० १५९१ ई०) आदि कवियों ने हिन्दी में वह क्रम कुछ दिनों तक चलाया। कबीर पर भी सूफियों का प्रभाव स्पष्ट था। मीरा, नानक, दादू, घनानंद उस प्रभाव से मुक्त नहीं रहे। खाने-कमाने और उच्च पदों की प्राप्ति के लिए हिन्दू भी फारसी का अध्ययन सिकंदर लोदी के समय (जन्म १४५० ई०, गद्दी १५१७ ई०, मृत्यु रवि २३ नवंबर १५१७ ई०) से ही करते चले आ रहे थे।

अकबर के समय (जन्म १४ अक्टूबर १५४७ ई०, गद्दी १४ फर्वरी

१५५६ ई०, मृ० मं० १५ अक्टूबर १६०५ ई०) में एक नई लहर चली। संस्कृत का प्रभाव भाषा पर पड़ा; जिस के फल स्वरूप, सूरदास, तानसेन, और तुलसी आदि के गीतों की रचना हुई, जहाँगीर (जन्म बु २६ अग त १५६६ ई०, गद्दी बृ० २२ अक्टूबर १६०५ ई०, मृत्यु रवि, २८ अक्टूबर १६२७ ई०) और शाहजहाँ (जन्म बृ० ५ जनवरी १५६२ ई०, गद्दी चं ६ फर्वरी १६२८ ई०, मृत्यु २२ जनवरी १६६६ ई०, के समय में साहित्य-शास्त्रीय-पद्धति पर काव्य-चलने लगा तो, संस्कृत का प्रभाव और भी बढ़ गया।

हिन्दी के दुर्भाग्य मे इस काल के कवि, संस्कृत-साहित्य के वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि उच्च कवियों से प्रभावित नहीं हुए। हाल तथा गोवर्द्धनाचार्य की सत शतियों, अमरूक-शतक तथा अन्यान्य ग्रंथों का अनुकरण किया गया जिस का प्रभाव, साहित्य तथा समाज के लिए घातक सिद्ध हुआ।

परिस्थितियाँ भी ऐसी थीं। कविता, उस समय राजाओं और नवाबों के मन बहलाव की वस्तु थी। कवियों का ध्यान भी रुपय्ये कमाने के सिवा शायद और किसी बात पर न था, चरित्र भ्रष्ट राजाओं की कई दूतियों में से एक का नाम कविता था। कवि भी 'विट' से अधिक नहीं था।

धीरे-धीरे उस विलास के युग को भी खातमा हुआ। पश्चिम की बंदूकों ने हमारे नायकों की विलास पुरियों को चूर-चूर कर दिया। हिन्दी पर तीसरी रानी का शासन प्रारंभ हुआ।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में अंग्रेजी का प्रभाव हिन्दी पर पड़ना शुरू हुआ। एक नज़र से देखा जावे तो यह प्रभाव अत्यंत हित कर हुआ। हिन्दी ने थोड़े-से वर्षों में संतोष जनक उन्नति की। नायक-नायिकाओं तथा उनके हाव-भावों से छुट्टी पाकर, हिन्दी कविता ने मुक्त आकाश में साँस ली। उसे कौतूहल हुआ, आनंद हुआ, जिस की

अभिव्यक्ति प्रसाद, पंत आदि की 'किरण', 'प्रथम रश्मि' आदि गीतों में हुई। निराला बंगला की चेतना से कभी भी मुक्त न हो सके।

इन कवियों का विरोध हुआ आवश्यकता से अधिक हुआ, किन्तु इस में तनिक संदेह नहीं कि इन्हों ने अत्यंत परिश्रम से, हिन्दी को एक गहरे गड्ढे से ऊपर उठाया और ऐसे स्थान पर ला खड़ा किया, जहाँ से वह जहाँ चाहे जितनी दूर चाहे जा सकती है।

जय शंकर 'प्रसाद' (जन्म, माघ शुक्ल द्वादशी १९४६ व०=१८८९ ई० मृत्यु कार्तिक शुक्ल शनि १९९४ वि०=१९३७ ई०) इस बात को भली भाँति जानते थे फिर भी इन के जीवन का अधिकांश भाग, कामायनी के मनु की तरह ही, ईड़ा के साथ बीता। अज्ञान के प्रलय से ध्वंस भ्रंश भारतीय इतिहास के राज-भवनों को पुनः बनाना, खड़ी बोली के शुष्क प्रदेशों में पहले पहल, सरस्वती से जलधारा लाना, उद्यानों को लगा कर निकुंजों को गंधर्वों के बसने योग्य बनाना आदि ये सब काम प्रसाद को अकेले ही करने पड़े थे। उन्हों ने इसे बड़ी तत्परता से किया। हिन्दी के एक नवीन मन्वन्तर के प्रवर्तक माने जाते हैं।

निर्जन, निर्जल प्रदेशों में एकाकी बीते हुए जीवन की छाप प्रसाद जी के काव्य पर यथेष्ट मात्रा में पड़ी है। उन का हृदय हीरे की भाँति उज्ज्वल बहुमूल्य हो गया, पर आँसू के कण की भाँति सजल और अपना न हो सका।

'प्रेमी-पथिक', 'कानन-कुसुम', 'झरना' आदि आरंभिक पुस्तकों में प्रसाद जी की सफलताएँ और असफलताएँ यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं। एक पृष्ठ पर एक सुंदर कविता देखने को मिलती है तो उसी के पड़ोस में भावहीन, भाषाहीन, निम्नश्रेणी की तुकबंदी के भी दर्शन होते हैं। प्राण की ओर, उसे प्रांजल, ललित तथा कमनीय बनाने की ओर प्रसाद जी ने कभी भी ध्यान नहीं दिया।

मनुष्य के जीवन में जो गुण विकसित होते हैं उन के बीज बाल्य-

काल से ही अ कुवाने लगते हैं। बीज के गुण वृक्ष में विस्तार पाते हैं। प्रसाद की आरंभिक रचनाओं में पाई जाने वाली कमजोरियाँ तथा खूबियाँ. आँसू, लहर, कामायनी आदि प्रौढ़ रचनाओं में भी मिलती हैं। झरना में यदि, 'सुधा की मनो बड़ी सी बूँद', 'कठिन गिरि कहाँ विदारित करना (कहाँ', ब्रज भाषा के 'कहँ' के अर्थ में प्रयुक्त है) आदि प्रयोग मिलते हैं तो पीछे की रचनाओं में भी, खिले फूल सब गिरा दिया', 'कामिनियों ने अनुराग भरे अधरों से उन्हें लगा ली है, 'दोनों ही कूल हरा हो' आदि प्रयोग भी आसानी से मिल जाते हैं।

आँसू के परिवर्तित तथा परिवर्धित सस्करण में भी कहीं कहीं क्रम ऐसा है जिस का थोड़ा-सा बदल देन से शायद वे अधिक सुंदर हो सकते थे (पर 'प्रसाद' जी ने ऐसा नहीं किया)। पृष्ठ २७ पर लीजिये, छंद है—

व्याकुल उस मधु सौरभ से मलयानिल धीरे धीरे !

व्याकुल का पहले आना उच्चारण में जरा असुविधा कर रहा है यदि वह यों बदल दिया जाता—

उस मधु सौरभ से व्याकुल मलयानिल धीरे धीरे।

तो शायद 'व्याकुल' अपने मित्र 'मलयानिल' के समीप ही आ कर हमारे कानों पर प्रसन्न हो जावे।

पृष्ठ २८ में एक सुंदर पद है—

'चुंबन-अंकित प्राची का पीला कपोल दिखलाता।

'चुंबन अंकित प्राची का' पढ़ने में असुविधा हो रही है। स्वर 'चुम्बन-अंकित' के जाल में बुरी तरह उलझ रहा है। यदि उसे यों बदल दिया जावे—

पीला कपोल प्राची का चुंबन-अंकित दिखलाता।

तो शायद ई, ल, प, आ को अपने साथियों से मिलकर आनंद प्राप्त हो !

'प्रसाद' जी दार्शनिक थे। दार्शनिकों में सुंदर-असुंदर का भेद

प्राय: कम रहता है, क्यों कि वे तो सुंदर और असुंदर में उसी एक को देखा करते हैं। तह की ओर दृष्टि संलग्न होने के कारण वे बाह्य बातों (भाषा, वस्त्र आदि) पर अधिक ध्यान नहीं देते। शायद इसीलिये 'प्रसाद' जी को साधारण-सी बातों का जरा भी ध्यान नहीं रहा। एक पद है—

छिल छिल कर छाले फोड़े मल मल मृदुल चरण से,
घुल घुल कर बह रह जाते आँसू करुणा के कण से।

मृदुल चरणों का मल मल कर छाले फोड़ना—यह वीभत्स दृश्य शायद कहीं फारस प्रदेश में नज़र आता हो पर शायद भारतवासियों को न कभी वह अच्छा लगा और न कभी लगेगा!

इस के अतिरिक्त-एक खटकनेवाली बात 'प्रसाद' जी के काव्य में दूसरी देखी जाती है— और वह बुरी लगती है; उन की उपमाओं और रूपकों की पूँछें हैं।—जैसे—

परिरम्भ-कुम्भ की मदिरा निश्वास मलय के झोंके,
मुख-चन्द्र-चाँदनी जल से मैं उठता था मुँह धो के!

'परिरंभ की मदिरा' तो हम, आलिंगन के मादक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए निसंकोच कह सकते है पर प्रिय के आलिंगन को वह घड़ा बनाना जिस से मदिरा पी जाती है 'भद्दे पन की ओर बढ़ना है।' 'मुखचंद्र की चाँदनी-जल' की हम जितनी प्रशंसा चाहे कर सकते हैं—वह हमें चकोर की तरह मुग्ध कर दे, कुमुद को भाँति खिला दे, पर उसे पाइप का पानी बना कर, उस से कुल्ले-पिचकारे करना मुँह धोकर उठना आदि सुरुचि का द्योतक कदापि नहीं हो सकता।

जहाँ पर यह बात नहीं है, वहाँ उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ इतनी सुंदर हैं कि एक दो उदाहरण सामने दे कर चुपचाप आनंद मग्न रहना बुरा न होगा। "लिपटे सोते थे मन में सुख दुख दोनों ही ऐसे, चंद्रिका अँधेरी मिलती मालती कुंज में जैसे।" या—"अधरों के मधुर कगारों में, कल कल ध्वनि की गुंजारों में मधु सरिता-सी यह

तरल हँसी अपनी पीते रहते हो क्यों ? " या—धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश मधुर मुरली-सी फिर भी मौन ! ऐसे उदाहरण सहज ही में बढ़ाये जा सकते हैं।

एक और बात जो 'प्रसाद' जी को दुर्भेद्य और (कुछ लोगों की सम्मति में) झूठा कवि बना देती है—उन की विषय की अस्पष्टता है ! आँसू को ही लीजिये। हिंदी के 'खद्योत-सम' कवियों ने इस की खूब नकल की। पर आदि से अंत तक आँसू पढ़ जाइये, कई बार पढ़िये—प्रश्न बना रहता है—कवि किस की स्मृति में आँसू बहा रहा है ? वह इसी संसार का जीव है या 'नीचे आ कर गौरव देन वाला' कोई अपार्थिव प्राणी ? 'बाँधा था विधु को किसने'—आदि पर तथा वह सुंदर पद—"शशि-मुख पर घूँघट डाले आँचल में दीप छिपाए—जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आए।" तो यह कहते हैं कि वह कोई अपनी ही पृथ्वी का प्राणी था। पर "गौरव था नीचे आए प्रियतम मिलने को मेरे" या—"पाऊँगा कहीं तुम्हें तो ग्रह-पथ में टकराऊँगा;" आदि संदेह उत्पन्न कर देते हैं, तो शायद आँसू अपनी प्रियतमा के लिये नहीं बहाए जा रहे हैं, वे तो किसी ऐसे प्रिय के लिए बहाए जा रहे हैं, जिस के दर्शन किसी भाग्यवान छायावादी को ही हो सकते हैं। इस विचार के आते ही पाठक 'प्रसाद' जी की पलकों के आँसू को अपनी पलकों पर देखने का विचार 'अथवा उन के पलकों के आँसू को और अपनी पलकों के आँसू को एक समान समझने का विचार एकाएक छोड़ देता है। 'प्रसाद' जी तो पता नहीं किस के लिये आँसू बहा रहे हैं और वे आँसू न जाने कैसे हैं—हम लोगों को उन से क्या मतलब !

'कामायनी' ही को लीजिये। प्रायः सब के सब समालोचकों ने इसे आधुनिक हिंदी का सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ माना है ; फिर भी कथा की दृष्टि से लीजिये; 'कामायनी की सफलता संदिग्ध है। मनु, श्रद्धा को क्यों छोड़ते हैं, इड़ा को अपने अंक पाश की बंदिनी बनाने की इच्छा करते

ही क्यों देवता सहसा अप्रसन्न हो उठते हैं इत्यादि प्रसंग, कथा की दृष्टि से असफल हैं। और रस का तो 'कामायनी' में एकांत अभाव है। कितने ही प्रसंग, जैसे वासना-मनु और देवताओं का युद्ध आदि शिथिल पत्थर की लेखनी से लिखे गये हैं। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बहुत ठीक कहा है—"प्रेम, घृणा, शोक और अनुकंपा, 'कामायनी' में आ कर विचारों को उत्तेजित कर देते हैं; लेकिन मनुष्य को हिला नहीं देते। वे मनुष्य के हृदय की अपेक्षा मनुष्य के विचारों को अधिक अपील करते हैं।" (प्रारंभ में मनु का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली है, उसे जैसे 'प्रसाद' जी ने सोच विचार कर लिखा। मनु को जैसे उन्हों न अपनी आँखों से देखा हो।)

चरित्र का विकास जंगल में, एकान्त में क्या हो सकता है? राम के चरित्र को लीजिये - दशरथ की विवशता, कैकेयी की कुटिलता, सीता, लक्ष्मण के प्रेम, रावण के वैर आदि अनेक भावों से राम के चरित्र का जन्म होता है। राम हमारे सामन सामने पैदा होते हैं, बड़े होते हैं, निर्वासित होते हैं, युद्ध करते हैं, सीता को खो कर रोते हैं तथा शत्रु की पुरी को ध्वश-भ्रंश कर त्रैलोक्य को आनंदित करते हैं। जीवन के जितने पहलू हो सकते हैं वे राम में मौजूद हैं, वे मनुष्य हैं और मनुष्यों के बीच चलते फिरते हैं। मनु का चरित्र इस से एकान्त भिन्न है। वे एक उजड़ी हुई पृथ्वी के अकेले प्राणी हैं। उन के साथी दो हैं, एक कामायनी और दूसरी ईड़ा। मनु अपना सब कुछ खो कर बैठे हैं, उन के ललाट पर चिंता की शिकन पड़ी है। उन्हें एक नारी मिलती है, जिस से वे प्रेम करते हैं। सहसा ही उसे छोड़ कर वे चले जाते हैं। उन्हें एक दूसरी नारी मिलती है. जिस के इशारे पर वे नगर प्रतिष्ठित करते हैं। सब कुछ करने पर भी उन की प्यास बिना इड़ा को पाये नहीं बुझना चाहती। वे अपनी प्रजा के साथ बलात्कार करना चाहते हैं, इस पर देवता कुपित होते हैं, युद्ध होता है। मनु घायल होते है। उनकी पहली

संगिनी अपने शिशु को ले कर उन्हें खोजती आती है। उसे देख मनु लज्जित हो भाग निकलते हैं, श्रद्धा अपने पुत्र को इड़ा को सौंप उन्हें पाने निकलती है। दोनों मिलते हैं। और तप करने लगते हैं। बहुत दिनों के बाद ईड़ा और मानव वहाँ आते हैं, मनु कुछ उपदेश करते हैं, प्राणमी हिमवती प्रकृति मांसल हो उठती है। कथा आनंद में समाप्त हो जाती है। मनु के चरित्र के बनने की कही गुंजायश ही नहीं है। वे राम से भिन्न प्राणी हैं, वे एक भिन्न वातावरण में पलते और घूमते हैं। यही कारण है कि मनु, राम की तरह 'हमारे' नहीं हो पाते (हाँ जब हम विचार करते हैं कि मनु का अर्थ मन से है तब कथा को कुछ दूसरी नजर से देखने लगते हैं।) सब कुछ करने पर भी मनु में प्राणों का, जीवन का अभाव है। (यहाँ सांकेतिक अर्थ – मन की सफलता—का विवेचन नहीं है।)

'प्रसाद' जी में मस्तिष्क का पक्ष प्रबल था। अधिकतर उनके मस्तिष्क लिखा करता था, फिर भी जब कभी उन की श्रद्धा, अपने कंठ को खोलती थी—(वह प्राय: छोटे छोटे गीत—'तुम कनक-किरण के अंतराल में', 'किरण तुम क्यों बिखरी हो आज', 'बीती विभावरी जाग री', 'अरे आगई है भूली-सी विषाद', 'ले चल मुझे भुलावा देकर' गाना पसंद करती थी)—उस समय अपने को रोकना, प्रशंसा में कुछ कहना बेकार है। इन गीतों में, 'आँसू' के कुछ पदों में, तथा 'कामयनी' के कुछ अंशों में जहाँ 'प्रसाद' जी इड़ा के प्रभाव से मुक्त हो सके हैं उन्हों ने हिन्दी-साहित्य को अमूल्य संपत्ति दी है—वहाँ उन की तुलना और किसी से नहीं हो सकती। और उन के आदर का, उन के यश का एक कारण दूसरा भी है—वे राजशेखर की सम्मति के अपवाद कवि हैं—वे 'नख से शिख तक मौलिक हैं।" मानसिक परतंत्रता की यंत्रणा से निर्बल हिन्दी-साहित्य को 'प्रसाद' जी ने पहले पहल मुक्त और गर्वास्पद किया। 'निराला' जी के शब्दों में—अब हम निर्भय—

'बढ़े हुए जो, उन की आँखों पर आँखें रख बात चीत कर सकते हैं।

२ प्रकृति और मानव

१

मनुष्य जब पहले पहल पृथ्वी पर पैदा हुआ, जब बस्तियाँ नहीं थीं तब उस ने अपने चारों ओर प्रकृति की वस्तुओं को देखा सूरज की किरणों ने उसे तपाया, फूलों की सुगंधि ने उसे प्रसन्न किया। विस्मय और आश्चर्य से वह चकित रह गया। आज भी इन चीजों को जब अधिक समय के बाद वह सहसा देखा जाता है तो आश्चर्य चाहे न हो, कुछ नये रूप में अवश्य ये चीजें उसे दिखलाई देती हैं, और हृदय में एक विशेष प्रकार की प्रसन्नता भरी गुदगुदी पैदा कर देती हैं।

धीरे-धीरे संख्या में मानव बढ़ता गया, उस के जीवन की जटिलताएँ भी बढ़ती गईं, और उस का ध्यान अब अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर अधिक से अधिक बढ़ने लगा, उस ने अपने भय, आश्चर्य, विस्मय के भावों को सामूहिक रूप से प्रकट करने के अनेक साधन ढूँढ निकाले। किन्तु जैसे जैसे उस को अनुभवों से नई नई बातें मालूम होती गई वैसे ही वैसे बाहर की सत्ताएँ उस के लिए भयावनी न रह कर सामान्य रूप में आ गईं। अपनी जिन भावनाओं से पहले वह प्रकृति को भयानक, उग्र, प्रचण्ड रूप में देखता, वहाँ अब उस में परिवर्तन होने से प्रकृति के इन रूपों में भी उसे परिवर्तन दिखाई दिया। प्रकृति की जिन वस्तुओं का ज्ञान उसे हो गया वे तो साधारण रूप में आ गईं किन्तु जिन का रहस्य उस के ज्ञान ने न खोल पाया वे उस के लिए कुतूहल भरी महान् परोक्ष सत्ताएँ हो गईं; जिन के सामने वह अपनी रक्षा वृद्धि और शान्ति के लिए गिड़गिड़ाया, रोया, हँसा और

उस ने उन से बल, जल, धन की प्रार्थना की। इस भाँति भय और आश्चर्य, निराशा और आशा के प्रवाहों के बीच से ही वह ज्योति फूटी जिसे धर्म कहा जाता है। और धर्म ने धीरे धीरे दर्शन, ज्ञान विज्ञान तथा कलाओं को जन्म दिया। इन के विकास में किसी न किसी प्रकार उस का योग रहा।

मनुष्य की भावना और कल्पना ने आदि युग में ही वृक्ष' देवों यक्षों, किन्नरों, भूत प्रेतों, जल-देवियों आदि की उत्पत्ति प्रकृति के उपकरणों से ही कर ली थी, प्राचीन जीवन अवशेष और परंपराओं से चले आते हुए, विश्वास रीति-नीति के अध्ययन से यह बात सिद्ध होती दिखलाई दे रही है। हरप्पा और मोहनजोदाड़ों की खुदाई से मिली हुई वस्तुओं के अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक सभ्यता से पहिले के आर्य लोगों में पार्थिव पूजा और अपार्थिव भावना एक साथ थी। पूजा वास्तव में प्रतीकात्मक वस्तुओं और क्रिया-व्यापारों का समाज सापेक्ष रूप है, जो अनेक व्यक्तियों के साहचर्य से अथवा दो सत्ताओं के व्यक्तिगत संबंध से भी हो जाती है। महत्त्व, हृदय की त्याग भावना का होता है। किन्तु आरंभिक अथवा बाद की किसी स्थिति में किसी न किसी हद तक लेन देन की भावना भी छिपी रहती है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के चिन्हों से इस प्रकार की पूजा स्थिति स्थानीय भूमि पालों, भूत-प्रेतों पितरों, यक्ष नागों किन्नरों आदि में की जाती थी। यहाँ से प्राप्त हुई मुहरों में वृक्ष की छाप भी पाई जाती है, जिस से वृक्ष पूजा का पता चलता है। यक्ष और नागों की पूजा पूर्व वैदिक काल से बराबर अभी तक भी जनता के जीवन में मिली हुई है। और तो और उपनिषदों के समय और बौद्ध तथा जैन और भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग में भी लता वृक्षों का सिंचन उन के विवाह और उन में देवी देवताओं के बास का बराबर वर्णन मिलता है। अनुश्रुति के अनुसार शाक्य लोग यक्ष शाक्य

वर्धमान को शिशु-बलि देते थे। और बौद्ध ग्रंथों में वृक्ष तथा वृक्ष-वासी यक्ष देव को सुजाता ने खीर चढ़ाई थी जिसे शाक्य मुनि गौतम खा गये थे। ज्ञान के प्रतीकों तथा मूर्तियों में आज तक वट--वृक्ष, कल्प वृक्ष, नदी, सूर्य, आदि के रूप पाये जाते हैं। नागों की पूजा तो प्रचलित है ही, गणेश के वाहन के रूप में चूहे की पूजा, शिव के वाहन के रूप में बैल की पूजा, लक्ष्मी के वाहन के रूप में उल्लू की पूजा दुर्गा के वाहन के रूप में सिंह की पूजा, ब्रह्मा के वाहन के रूप में भेड़े की पूजा और यम के वाहन के रूप में कटड़े (भैंस, बागी) की पूजा होती है। मछली, कछुआ, वाराह आदि की पूजा अवतारों के रूप में होती है। तुलसी और पीपल के साथ-साथ आम, केला, देवदारु, चीड़ आदि के वृक्षों की पूजा आज भी विवाह के अवसरों पर चलती है। नदियों की पूजा का प्रमाण किसी भी मंगल उत्सव पर भिन्न-भिन्न नदियों के जलों की आवश्यकता तथा नदियों की महिमा में गाये गये स्तोत्रों में मिल जाती है। पहाड़ों की पूजा इन्द्र के ही रूप में नहीं, मैनाक, हिमालय, कनकाचल, उदयाचल, अस्ताचल, नीलाचल, कूर्माचल, कैलाश, सुमेरु आदि आदि के रूप में साहित्य में पाई जाती है और आज भी जनता में इन की पूजा प्रचलित है।

प्रकृति की व्यक्त सत्ताओं ने जहाँ इस ढंग से पूजा पाई, वहाँ उन के बाह्य रूप के पीछे एक चेतना का आभास अपने धड़कते हृदय के साम्य से मनुष्य ने पाया, और उस अव्यक्त सत्ता की विविधता की उपासना उसने अनेक दैवी शक्तियों के रूप में की। आरम्भ में वे दैवी शक्तियाँ उस के लिए एक नहीं अनेक थीं। वह उन्हें अपने से अधिक बलवान और सर्व-समर्थ समझता था। किन्तु, जिस दिन से अपनी ओर उसका ध्यान गया, और उस की समझ में यह बात आ गई कि भिन्नता के मूल में एक प्राण-सूत्रता है उस दिन

से उस ने सभी देवी देवताओं को एक महान् शक्ति के आधीन कर दिया। अब उस 'एकम् अद्वितीयम्' की अनुभूति के सम्मुख अन्य सत्ताएँ फीकी लगने लगी उन का बाह्य-महत्व भी कम होने लगा। उपनिषदों के युग में यह वृत्ति प्रबल रूप में दिखलाई देने लगती है।

इस से आगे विकास की वह सीमा आती है जहाँ अंतर्मुखी एक सूत्रता साधना के मार्ग से बहुमुखी धाराओं में बाहर फूट कर मानव जीवन और ईश्वरीय सृष्टि को प्रेम और करुणा से आप्लावित कर देती हैं; अंतर्यामी और बहिर्यामी दो अलग अलग चीजें न रह कर सर्वात्म भाव में एक हो जाती हैं। गौतम बुद्ध की करुणा और प्रेम की पीयूष धाराएँ इसी सर्वात्म भाव के व्यावहारिक रूप हैं। विश्वात्मभाव के व्यापक प्रवाह में प्रकृति का अर्थ बाहर दिखलाई देने वाली सभी व तुओं के अलावा प्राणियों की सहज स्वाभाविक वृत्ति और वस्तुओं का धर्म भी हो जाता है।

बौद्ध धर्म के उपरान्त वह समय आता है जब ब्रह्मवाद के विराट आत्मतत्व का जल, कर्मवाद और भक्ति-प्रेम योग के कोटों पर बहने लगता है। वास्तविक रूप में इस युग में भारत की सभी प्राचीन धाराएँ अथाह सागरों 'महाभारत' और 'रामायण' में मिल गईं। प्राचीन प्राकृतिक शक्तियों के जो रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश में बदले थे वे अब दिव्य स्वर्ग भूमियों से उतर कर हरी-भरी मानवी पृथ्वी में पहिचानी जाने लगीं। पृथ्वी पर ही, कल्पना के स्वर्ग को उतार लाने से, जनता को वह विश्वास मिला जिस ने उस के प्राणों को आशा की ज्योति दी, बल दिया, वैदिक युग का उल्लास दिया और अन्य युगों की दार्शनिक तथा भौतिक क्रिया-शीलता और समन्वयवादी प्रेम-प्रवणता दी। मनुष्य की कलाएँ प्राणवान, दिव्य और सुंदर हो गईं। शिव, कृष्ण और राम जनता के जीवन के अभिन्न अंग बन गये। दुःख की काली घटाओं के बीच कृष्ण, राम और शिव के लोक-कल्याणकारी कार्यों की याद, जीवन

की आशामयी शक्ति बढ़ाने लगी, 'जब जब धर्म की हानि होती है, तब तब, दुष्टों के निग्रह, संतों के संग्रह और धर्म की स्थापना के लिए ईश्वर मनुष्य के रूप में उत्पन्न होता है' इस भावना में मनुष्य का घना विश्वास जम गया जिस ने उसे गाढ़े सकटों में भी सत्य की ज्योति और एक निष्ठता की लगन दे कर आगे बढ़ाया है।

दार्शनिक और व्यावहारिक क्षेत्र में मनुष्य की भावना में इतना अधिक विकास जहाँ हुआ वहाँ प्रकृति पूजा से उस का संबंध विच्छेद भी नहीं हुआ, बल्कि, प्रकृति जो पहले भयावह उग्र और विचित्र रूपों में पूर्ण दिखलाई देती थी वह अब सजीव सुन्दर और भुवन मोहिनी छवि के रूप में पहिचाने जाने लगी। सत्य के साथ शिव और सुंदर की यह समष्टि है जिस में प्रकृति ने अपने विकास से जीवन में धर्म और कलाओं का विकास कर के सभ्यता के विकास में पूरा योग दिया।

भारत में जिस प्रकार की प्रकृति की उपासना से धर्म का विकास हुआ उसी प्रकार के विकास के लिये अन्य देशों में भी गुंजायश है। मिश्र, यूनान और ग्रीस के धर्म-ग्रन्थों में देवी-देवताओं की सत्ताओं से संबंध रखने वाले अनेक शब्द, तथा वर्णन आते हैं इन देवताओं के स्वरूप और नामवाची शब्दों के पीछे चलने वाली जीवन धारा सब देशों में बहुत दूर तक एक समानता लिए रहती है। भारतीय देवी देवताओं से बहुत साम्य है जिसका कारण भारत और इन देशों में एक ही परंपरा के लोगों का प्रसार भी हो सकता है। 'द्यौस' का पश्चिमी रूप 'ज्यूस', 'वरुण का 'यूरेनस' (नेपचून) 'धरती माता' का 'मदर अर्थ', 'अग्नि' का 'इग्निस', 'अश्विन कुमारों' का 'इक्वी होर्सेज', देवगुरु 'वृहस्पति' का 'जुपीटर' (जोम) 'इंद्राणी' का 'जूनों', 'सरस्वती' का 'मिनर्वा', 'रति' का 'भीनस' 'काम' का क्यूपिड, भद्रकाली का 'बैलोना हेक्टर' रूप है। त्रिमूर्त्ति की भावना भारतीय रूप 'अस्ति, भाति, प्रिय', 'सत्, चित, आनंद', और 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' है तो पश्चिम में वह भाव 'दि ट्रू,

दि गुड, दि ब्यूटीफुल' के रूप में पाया जाता है।

सामान्य जनता के विश्वास और सभ्य समाज की कलात्मक कृतियाँ —दोनों ही प्रकृति पूजा के विकास के इतिहास के अपने में छिपाए हैं। प्रकृति का एक अंग होने से, प्रकृति और धर्म से अलग मनुष्य कभी रह नहीं सकता। धर्म उसका जीवन है, प्रकृति उस का प्राण है। सभ्यता दोनों को जोड़ने वाली शृंखला है।

(२)

संघर्ष के इस युग में भी जब चारों ओर से निराशा का अंधकार प्राणों को विलीन करने के लिए उत्पात की बाढ़ों की तरह आ रहा हो, प्रकृति प्रेमी मानव हृदय पुकार उठता है—

नहीं शान्ति से मुझे न रहने देगा मानव !
दूर बनों में, सरिताओं के शीत तटों पर,
सूनी छायाओं के नीचे लेट मनोहर—
विहगों के स्वर मुझे न सुनने देगा मानव !
यौवन के प्रभात में पुष्पों के उपवन में—
खड़ी किसी मृदु मुखी मृगी के प्रिय चिन्तन में—
मुझे खड़ा न रहने देगा मानव !

(विराट ज्योति)

मनुष्य अपने पुराने दिनों के संस्कारों से प्रकृति के बीच शान्ति पाने का यत्न आज भी करता है। मानव हृदय का प्रतिनिधि सौन्दर्य प्रेमी कला-कार, प्रकृति में एक धड़कते हृदय का स्पंदन देखता है। उस को भी मनुष्य की भाँति सुख दुख के आँसू बहाते खिलते-खेलते देख कर अपने इन साथियों को अपने घरों के फूल पौधों, बाग-बगीचों, सरोवरों-झरनो, तोता-मैना, हिरन आदि के रूप में पालता है।

जब कभी मनुष्य ने प्रकृति को भुला कर जड़ता की ओर ही विशेष झुक कर अपनी चेतना-क्षीणता का पता दिया है, तभी उसे राह पर

लगानेवाले हृदय विशेष रूप से प्रकृति के उद्दाम गीत गा कर सामने आये हैं। मनुष्य की कृत्रिम सभ्यता में प्रकृत धर्म की बहती हुई धारा को पहुँचा कर जीवन में हरियाली लाने का उद्योग उन्हों ने किया।

एक समय यह था जब प्रकृति की उग्र शक्तियों को मानते हुए भी उन की कल्याणकारी विभूतियों से ही मनुष्य का हृदय आनन्द विभोर हो जाता था। ऋग्वेद के समय में इन्द्र, वरुण, मरुत, परजन्य, रुद्र आदि के भीषण रूप थे सही किन्तु प्रधानता वहाँ उन के दिव्य मोहन रूप को ही दी गई। ऋग्वेद के समय का मानव हृदय आशा के प्रकाश से खिल उठता था। तारा-नेत्रों से अन्धकार को चीरने वाली रात जिस के लिये स्निग्ध शांत विभूति और पृथ्वी जिसके लिये माता हो वह सच्चा प्रकृति पुजारी नहीं तो क्या है?

आरण्यक और उपनिषदों के युग के मानव ने प्रकृति की व्यक्त सत्ताओं में हृदय की धड़कन की संभावना देखी वह उस आंतरिक चेतना के चिन्तन में लीन हो गया। आनन्द का वह स्रोत फूट पड़ा जिसने प्रकृति के उग्र, भीषण अजेय रूप को सौम्य शान्त, शोभन और पुरुष के आधीन बना दिया। जिस के फल-स्वरूप आत्म चिन्तन की व्यवहारिकता का ही नाम धर्म और धर्म व्यापक एक रूपता का नाम दर्शन हो गया। प्रकृति और पुरुष, जीवन और दर्शन धर्म और जीवन एक ही अखंड सौन्दर्य-स्रोत के विविध नाम थे।

इसी असीम सौन्दर्य की अखंड भावना का मानवी करण महाकाव्यों और पुराणों के युग में किया गया। इस युग में प्रकृति गौण, पुरुष प्रधान हो चला। प्रकृति से मानव का उतना ही नाता रह गया जितना उसके जीवन के विकास में सहायक हो सकता था।

वह समय भी आया जब प्रकृति से विमुख हो कर मनुष्य अपने में ही लीन रहने लगा। प्रकृति का उपयोग वह अब भी करता था किन्तु सामान्य यांत्रिक रूप में वह उस के निस्सीम सौन्दर्य से अब आनन्द

विभोर नहीं हो पाता था उस ने अपना प्रकृत हृदय खो दिया। उस के जीवन की सहज आनन्द धारा उस के लिए सूख गई।

अपने भौतिक जीवन के विकास के लिए इच्छुक मानव ने प्रकृति के रहस्यों को खोल कर उस ज्ञान विज्ञान का प्रसार किया जिस ने अपने विकास हो जाने पर मनुष्य को ही पीस डाला, प्रकृति पर विजय पाने की महत्वाकांक्षा से मनुष्य प्रकृति के सौन्दर्य ही को नष्ट करने लगा जिस से जीवन का विषाद बढ़ा ही घटा नहीं। जब वेदना अति की सीमा तक पहुँच गई तब प्रकृति प्रेमी संस्कार, विरोध के रूप में प्रकट हुए।

धिक है विज्ञान ज्ञान जिस ने तुझ को जीवन से दूर किया,
धिक है विज्ञान, देवता को जिस ने दानव सा क्रूर किया।

और मनुष्य कामना करने लगा—

मेरे प्राणों के ऊपर तुम हे, सुख के नील-वितान तनो
मैं पुत्र तुम्हारा चिर अनुगत तुम मेरे स्नेही पिता बनो।
(विराट ज्योति) पृ

जिस दिन यांत्रिक सभ्यता के मद में डूबा योरोप, पृथ्वी को नैसर्गिक शोभा से रहित कर रहा था उस दिन रस्किन की आवाज 'बैक टु नेचर' की उठी वर्डस्वर्थ, आँसू बहा कर कहने लगा "तुम सौन्दर्य को चीर फाड़ कर नष्ट कर दे रहे हो"। और मैक्समूलर कह रहे थे—कुछ समय के लिए अपनी खगोल विद्या को भूल कर उषा कालीन आकाश की ओर तो देखो, असीम सौंदर्य सोए प्राणों को पुलकित करने चला आ रहा है। अंधकार को चीर कर कोमल प्रभा दिगंत को भरने लगी है। विहगों के गाने, नदियों के स्वर से एक हो रहे हैं। भौंरों की गूंज, प्राणों के कमलों को प्रफुल्लित कर रही है। मोती जैसी ओस की बूंदों को छू कर मंद आती हुई शीतल पवन, सुरभि से प्राणों को पुलकित कर देती है। इस अनन्त ऐश्वर्य, इस असीम

सौंदर्य के सागर में लहराते आनन्द को अपने चारों ओर पा कर प्राणों के पुलक का ठिकाना नहीं रह जाता। अंधकार में दीप्त उन असंख्य तारा रत्नों को देखने से कुतूहल भरा आनन्द होता है उस पर सौ विज्ञान न्योछावर किए जा सकते हैं।"

सौन्दर्य और शोभा में प्रसन्न रह कर अपने को भूले रहना मनुष्य का पुराना स्वभाव है। पर इस शोभा को प्रति दिन देखते रहने पर जब वह उस का आदी हो जाता है, जब उस की दृष्टि अपने में ही सीमित हो जाती है तब वही शोभा चिर नवीन होने पर भी उस के लिए सामान्य हो जाती है। किन्तु जिस घड़ी उस का मन अपने सीमित संसार के ऊपर उठ कर क्षण भर के लिए भी प्रकृति के असीम सौन्दर्य पर दृष्टि डालता है उस समय वह फिर विस्मय विमुग्ध हो कर पूछ बैठता है—

हे परिचित ! हे सदा अपरिचित ! हे नीरव ! हे सुन्दर ! तुम प्रति दिन कहाँ से मेरी आत्मा के द्वारों पर आते हो ? और मुझे कहाँ ले जाते हो ?'

दूसरी घड़ियों में इस प्रश्न के अनेक तरह के उत्तर मनुष्य के मन में आते रहते हैं और उन्हीं के आधार पर वह अपने व्यावहारिक जीवन में प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग अपनी सौन्दर्य प्रियता की तृप्ति तथा आध्यात्मिक जिज्ञासा की पूर्ति के लिए कर लेता है। किन्तु भौतिक जीवन की वृद्धि और कृत्रिम सभ्यता के विकास ने उस के लिए एक उलझन पैदा कर दी है। संघर्षों से फ़ुर्सत ही नहीं पा रहा है, तब प्रकृति के सौंदर्य में कैसे डूब पावे ?

जीवन के संघर्ष ने यद्यपि भौतिकता से उत्पन्न दुखवाद को बढ़ा कर यांत्रिक सभ्यता के नीचे मानव को भीषण रूप से पीस दिया है और जीवन की स्वाभाविक शान्ति से उसे बहुत कुछ हद तक दूर फेंक दिया है किन्तु फिर भी उस का हृदय सूख नहीं गया है। संघर्ष

की भीषणता से क्षुब्ध हो कर वह रुद्र से प्रश्न करता है—

हे भीषण, तुम जल में, थल में महाकाश में—
लगे हुए हो अविश्राम किस के विनाश में ?
मरते हैं निरीह नर-नारी पृथ्वी भर में।
हा हा कार उठ रहा है निर्दय अम्बर में।
घृणा द्वेष से हीन प्रेम के भाव मनोहर
पावेगी पृथ्वी क्या इतनी बलियाँ देकर ?

(विराट ज्योति)

किन्तु प्रकृति के दर्शन से उस का प्रकृत हृदय आज भी आनन्द से नाच उठता है। मन, द्रवीभूत होता है। आज भी उस के हृदय में वह विस्तार शेष है जो "प्रकृति में भी मनुष्य के सुख-दुख के लिए सहानुभूति ढूँढ सकता है, जीवन का स्पंदन देख सकता है। परमात्मा के अंतर्हित स्वरूप का आभास पा सकता है। फूल उस के लिए निरुद्देश्य नहीं फूलते, नदियाँ बे मतलब नहीं बहतीं, वायु निरर्थक नहीं चलती है।" प्रकृति उस के लिए सौंदर्य की देवी है। नभ के तारों में आलोक जगाने वाली संध्या उस के लिए जीवन की ज्योति ले कर आती है। उस का असीम सौंदर्य, पश्चिम में सोने की धूल उड़ा रहा है। उस के आते ही पुष्पों के मुख मुकुलित हो जाते हैं, कलरव नीरव हो जाता है। शशि और प्रिय को लेकर आने वाली रात, संध्या के साथ गायों के झुंडों को घर पहिले ले आती है तब आती है। सरिताओं में सुकुमार प्रभाएँ जगमगा उठती हैं, सरोवरों में कुमुदिनियाँ विकसती हैं, विहग स्वर में माता का संदेश आज भी प्रकृति कवि सुन लेता है। और वर्षा उस के हृदय को अपार छवि से भर देती है। उमगी आती हुई वर्षा को देख कर आनन्द विभोर स्वरों में वह नाच उठता है। और प्रसन्न मन से देश देश तक वर्षा के संदेश को पहुँचाने लगता है—

जग का ताप शान्त करने को, उमड़ उमड़ वर्षा आई !
दिशा दिशा से उठ उठ, मंगल की बदली लहराई !
(हिमवंत का एक कवि)

उदीयमान सूर्य को वह, पुलकित, पवनों की चंचल स्वर्ण-पुरी के हीरे के रूप में देखता है। बनों की शोभा पर वह अपने शत शत जीवन अर्पण करने के लिए तैयार है—"न जाने कितने प्रिय जीवन किए मैं ने तुमको अपर्ण, माधुरी मेरे हिमगिरि की !"

नदी की शोभा उस की भावुक कल्पना को सुन्दर से सुन्दर रूप में जगा कर आनन्द गीतों में उसे डुबा देती है; और वह गाता चला जाता है—

मैं बैठ कर नवनीत कोमल फेन पर शशिबिम्ब-सा,
अंकित करूँगा जननि तेरे अंक पर सुरधनु सदा,
लहरें जहाँ ले जायँगी मैं जाऊँगा जल-बिन्दु सा,
पीछे न देखूँगा कभी आगे बढ़ूँगा मैं सदा,
हे तट-मृदंगोत्ताल-ध्वनिते ! लहर-बीणा-वादिनी !
मुझ को डुबा निज काव्य में, हे स्वर्ग सरि मन्दाकिनी !
पयस्विनी पृ

उत्पातों की बाढ़ों में जब कि जीवन के छिद्रों-छिद्रों से, सघन निराशा के कलुषित प्रवाह, प्राणों की ज्योति को अंधकार विलीन करने, फूट आ रहे हों तब भी मनुष्य का प्रकृति-प्रेम, धर्म की तेजस्विता को अपनाये, वज्रों से हिलते मेघों को चीर कर सूर्य की दीप्त कान्ति को फैलाने में लगा ही हुआ है। भीषण विष-पान से मूर्छित प्राण, प्रकृति की सुन्दरता का कोमल स्पर्श पा कर जागने लगे हैं, यह आशामयी भविष्य के लिए मंगलमय संकेत है।

---

३ पल्लव के पंत

पल्लव का प्रकाशित हुए चौबीस पच्चीस वर्ष हो गये। हिन्दी-पाठकों को पल्लव ने दो दलों में विभाजित कर दिया। एक श्रेणी के लोग वे थे जिन के लिए पंत जी (जन्म १४ मई १९०२ ई०) का पल्लव हिन्दी के भावी वसन्त का प्रथम किसलय था दूसरे दल के लोगों ने हिन्दी की वाटिका में इस अपरिचित पल्लव को 'विस्मित चितवन डाल' कर आश्चर्य से अपने 'अधर-प्रवाल' हिलाये। पहली श्रेणी में अधिकतर, कोट-पैंट पहन कर अंगरेजी बोलने वाले नौजवान थे, और दूसरी श्रेणी में वे लोग जो नायिका के हाव-भावों का वर्णन पढ़ पढ़ कर उस अवस्था को पहुँचे थे जिस अवस्था को पहुँच जाने पर संभवतः सम्मन (१५८० ई०-१६४३ ई०) ने अपने बालों को वह गाली दी थी लोग, जिसे बूढ़े केशव (१५५५-१६१७ ई०) की उक्ति समझते हैं—

केशव केसन अस करी, जस अरि हू न कराहिं,
चन्द्र बदनि मृग लोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं!
सम्मन बुढ़पन अस करी, जो बैरी न कराइ,
कमल बदन मृग लोचनी, बाबा कहि-कहि जाइ!

पल्लव, हिन्दी में नवीनता को ले कर आया लेकिन मौलिकता को नहीं। सन् १९२६ में पल्लव यदि अंगरेजी में प्रकाशित होता तो वर्डसवर्थ, श्यैले, कीटस्, टेनिसन की मधुर ध्वनियों से परिचित और मुखरित इस साहित्य में शायद ही कोई पंत जी की ध्वनि को सुनने की तकलीफ करता, लेकिन पल्लव हिन्दी में लिखा गया और हिन्दी में प्रकाशित हुआ। पल्लव के पाठकों की आज, कमी नहीं है और

हम एकाग्र चित्त से पंत जी की वाणी को सुन रहे हैं।

पल्लव की भूमिका में पंत जी ने हिन्दी के चार कवियों की प्रशंसा की है, वे हैं, तुलसी, सूर, कबीर और मीरा। बाकी कवियों को उन्हों ने ठीक ही कोसा है; लेकिन इन चार कवियों में से किसी ने भी पंतजी का निर्माण नहीं किया है, किसी से भी पंत जी ने कुछ नहीं लिया. केवल एक लाइन (तुड़ा मरालों से मन्दर धनु) में, गोस्वामी जी के 'बाल मराल कि मंदर लेही' का प्रसंग है, एक दूसरी जगह पर भी नक्षत्र में कहते हैं—'सूर सिन्धु, तुलसी के मानस, मीरा के उल्लास अजान,' लेकिन ये सब नक्षत्र की तारीफ में है।

पन्त जी का निर्माण चार कवियों ने किया है। लेकिन वे हिन्दी के नहीं थे; उन के नाम हैं वर्डसवर्थ, (१८००-१८५० ई०), कौलरिज़ (१७७२ ई० १८७६,) श्यैले (जन्म ४ अगस्त १७६२ ई० मृत्यु ८ जुलाय १८२२ ई०) और कीटस् (१७९५ ई० १८२७ ई०;) और इन में भी इन को सब से अधिक श्यैले और कीटस् ने दिया। पंत जी ने सोचा श्यैले की तरह है और लिखा कीटस् की तरह है।

वर्डसवर्थ ने ही श्यैले और कीटस् को सब से अधिक प्रभावित किया है वर्डसवर्थ ने श्यैले और कीटस में रह कर पन्त जी को प्रभावित किया है। 'वर्डसवर्थ के प्रसिद्ध 'ओड टु द इंटिमेशन औव इम्मौर्टैलिटी' ने पंतजी की सब से लम्बी कविता 'परिवर्त्तन' को प्रभावित किया है। कम से कम शुरू तो परिवर्त्तन उसी ढंग से होता है जैसे वह 'ओड' होता है, अर्थात् अतीत के अनुभवित सुख से दीन वर्तमान की तुलना कर, उस से उत्पन्न निराशा के साथ।

पंत जी तथा श्यैले और कीटस् में अन्तर भी बहुत है। श्यैले और कीटस अच्छी अच्छी कविताएं लिखते हैं। पन्त जी केवल अच्छी अच्छी पंक्तियाँ लिखते हैं। पल्लव में अनग को छोड़ कर कोई भी सम्बद्ध कविता नहीं है। धधकती है जलदों से ज्वाल' और 'उड़ गया अचानक

लो भूधर', आदि लाइन जिन में पंत जी अद्भुत रस बतलाते हैं कौलरिज से प्रभावित है, 'द वेस्टर्न वेभ वज़ औल अफलेम' की स्पष्ट छाया इस में है।

पंत जी, पल्लव में ललित कल्पनाओं के कवि हैं। पन्त जी स्वयं कहीं लिखते हैं, पल्लव में उन्हें 'सा' के सौंदर्य ने अधिक मोहित किया है। छाया, वीचि-विलाश, नक्षत्र, बादल आदि किसी भी कविता को पल्लव में से ले लीजिये, पन्त जी केवल कल्पनाओं में मस्त हैं। जीवन में इसी तरह की ललित कल्पनाओं में श्यैले भी डूबे थे। केवल एक बार श्यैले को भी 'सो, सा' के सौन्दय ने मोहित किया था--वह उन की प्रसिद्ध कविता स्काइलार्क में। स्काइलार्क को वे तरह तरह से देख रहे हैं जैसे पंत जी छाया, नक्षत्र, वीचि, बादल, शिशु वगैरह को देखते हैं, कभी उन्हें स्काइलार्क प्रकाश छिपा हुआ, एक कवि की भाँति अपने विचारों को गाता हुआ दिखाई देता है। ('लाइक अ पोयट' इत्यादि), कभी एक उच्च कुल की महिला की तरह अपनी ऊँची अटारी में प्रेम-गीत गाता हुआ- ('लाइक अ हाइबौर्न मेडन इत्यादि), कभी ओस के भीतर छिपे हुए एक सुनहले जुगनू की भाँति, 'लाइक अ ग्लो वर्म गोल्डन इन अ ड्यल औव ड्यू' कभी एक गुलाब की तरह जो अपने ही हरे पल्लवों में छिपा हुआ हो— 'लाइक अ रोज इम्बौंडर्ड इन इटस् ओन ग्रीन) कहने का तात्पर्य यह कि स्काइलार्क में श्यैले मधुर कल्पनाओं के ललित कवि हैं। पंत जी ने श्यैले से ही शायद मधुर कल्पनाएँ करना सीखा हो।

श्यैले की कविताओं में एक दूसरी बात मार्के की होती है, उन का अन्त वैयक्तिक होता है, जैसे स्काइलार्क में, और और बातें लिखने के पश्चात्, श्यैले उस चिड़ियाँ से प्रार्थना करते हैं—
टीच मी हाफ द ग्लैडन्यस, दैट दाय ब्रेन मस्ट नो, सच हारमोनियस मैडन्यस्, फ्रौम माय लिप्स शुड फ्लो, द वर्ल्ड शुड

लिस्सन द्यन, ऐज़ आइ ऐम लिसनिंग नौ ! एक मधुप कुमारी से पंत जी भी कहते हैं—सिखा दो ना हे मधुप कुमारि मुझे भी अपने मीठे गान ! पंत जी की प्रायः सभी कविताएँ उसी वैयक्तिक ढंग से पूरी होती हैं जैसे श्यैले की होती हैं, जैसे 'वीचि' से वे कहते हैं—मेरे मन की विविध तरंग, रंगिणि सब तेरे ही संग, एक रूप में मिले अनंग ! मधुकरी से वे कहते है—कुसुम के खिले कटोरों से (मुझे भी) करा दो ना कुछ-कुछ मधु-पान; अनंग से वे कहते हैं—ऐ असीम सौंदर्य राशि में, हृतकम्पन से अन्तर्धान, विश्व कामिनी की पावन छवि, मुझे दिखाओ करुणावान ! छाया से वे कहते हैं—हाँ सखि आओ बाँह खोल हम, लग कर गले जुड़ा लें प्राण, फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में, हो जावें द्रुत अन्तर्धान ! नक्षत्र-से वे कहते हैं—इन्दु-दीप से दग्ध शलभ शिशु; शुचि-उलूक अब हुआ विहान, अंधकारमय मेरे उर में, आओ छिप जाओ अनजान । इसी प्रकार अन्य कविताओं में भी । पल्लव में एक कविता 'बादल' भी है । यह कविता श्यैले के क्लाउड का हिन्दी रूप है लेकिन श्यैले के क्लाउड की छाया पन्त जी के बादल में कहीं कहीं ही है, जैसे—फिर अनंत उर की करुणा से त्वरित द्रवित होकर उत्ताल, आतप में मूर्छित कलियों को जाग्रत करते हिम-जल-डाल । और, श्यैले का क्लाउड कहता है—आइ ब्रिंग फ्रेश शावर्स फौर द थर्स्टि फ्लावर्स । द सीज़ ऐन्ड द स्ट्रीम्स । स्वर्ण भृंग तारावलि वेष्टित, गुंजित-गुंजित तरल रसाल श्यैले का क्लाउड कहता है—द स्टार्स पीप बहाइन्ड एन्ड पीअर, ऐण्ड आइ लाफ टु सी द्यम ह्वल ऐन्ड फ्ली, लाइक अ स्वार्म औव गोल्डन बीज़; बादल में एक जगह पर है—अनिल बिलोड़ित गगन सिन्धु में, प्रलय बाढ़ से चारों ओर, उमड़-उमड़ हम लहराते हैं, बरसा उपल, तिमिर घन घोर । श्यैले की 'ओड टु द वेस्ट विन्ड में है—फ्रौम हूज़ सौलिड ऐटमोस्फियर ब्लैक रेन ऐन्ड फायर, ऐन्ड

हेल विल बर्स्ट, ओह ! हियर !

पंतजी की बादल कविता यद्यपि अच्छी रचना है किन्तु श्यैले के क्लाउड से अच्छी नहीं। श्यैले का बादल एक सजीव चीज़ है, (उस कविता को बादल ही बोलता है, उस में उस के सृष्टा श्यैले का; जैसा कि एक समालोचक का कथन है, कहीं नाम निशान नहीं, श्यैले ही जैसे स्वयं बादल बन गया हो, लेकिन पंत जी के बादल का कोई व्यक्तित्व नहीं।

पंत जी के बादलों की वैयक्तिकता उसी समय मिट जाती है जब वे 'मेघदूत की सजल कल्पना, कृषक बालिका के जलधर' कह कर अपने को कालिदास के मेघदूत से परिचित और संस्कृतज्ञ साबित करते हैं।

पंत जी ने एक तीसरी प्रथा को संस्कृत या हिन्दी कवियों के ढंग से नहीं बल्कि अंग्रेजी कवियों के ढंग से हिन्दी में चलाया, यह प्रथा है भावनाओं को स्वरूप देने की, जैसे छाया में—**कभी लोभ सी लम्बी हो कर, कभी तृप्ति-सी हो कर पीत,** और बादल में—**धीरे-धीरे संसय से उठ, बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर, नभ के उर में उमड़ मोह से, फैल लालसा से निशि-भोर**। लेकिन ऐसा करना भी उन्हें कबीर, मीरा, सूर-तुलसी, (घनानन्द, कालिदास) आदि ने नहीं श्यैले ने ही शायद सिखलाया—**विद डिज़ायर्स'ज़ हाइटनिंग फीट** तथा **लाइक ऐन इम्बौडीड ज्वाय हूज़ रेस जस्ट बिगन इत्यादि-इत्यादि**।

यदि इस तरह विचार कर देखा जाय तो पंत जी कहीं भी मौलिक नहीं है। हिन्दी के अधिकांश पाठक इस बात को जानते हैं फिर भी हम लोग पंत जी को पढ़ना नहीं छोड़ते, क्या इस की वजह हिन्दी की दरिद्रता है ? अथवा पन्त जी ही में कुछ ऐसी मोहनी है जो उन की दुर्बलताओं को जानने वाले मनुष्य के हृदय को भी बरबस खींच लेती है ? मैं समझता हूँ दोनों बातें कुछ कुछ सही हैं। हिन्दी की दरिद्रता से भी पन्त जी का आदर है, और पंत जी मधुर भी हैं। उन की

मधुरता के बाबत आप कहीं भी, हिन्दी के किसी भी पाठक से सुन सकते हैं। शब्दों के सूक्ष्म रूप उन्हों ने साकार देखे हैं, प्रत्येक शब्द से उन का असाधारण परिचय है। इस का उदाहरण उन के पल्लव की भूमिका है। उच्छ्वास और आँसू तथा अनंग बहुत अच्छी कविताएँ हैं। उच्छ्वास और आँसू में, पहाड़ों में वर्षा रितु की सुषमा के अमर तथा मनोहर चित्र हैं, और उन पर्वत प्रदेशों में, जहाँ प्रकृति अपने केशों को पल-पल में बदलती है, जहाँ अपनी कुसुमित आँखें खोल कर मेखलाकार अपार पर्वत खड़े हैं, जहाँ नीले पहाड़ों पर द्विरद-दन्तों जैसे सुन्दर बादल खेल रहे हैं, जहाँ पपीहे बोल रहे हैं, झरने झर रहे हैं और गंभीर घन, घहर रहे हैं, और उन सब के बीच फिरती हुई पन्त जी की प्रेयसी वह बालिका—

सरलपन ही था जिस का मन निरालापन था आभूपन,
कान से मिले अजान नयन, सहज था सजा सजीला मन,

उस बालिका को कौन भूल सकता है जिस की वाणी में त्रिवेणी की लहरों का गान है!

हमें असली पंत के दर्शन उच्छ्वास आँसू तथा ग्रंथि में होते हैं। यद्यपि अनंग भी बहुत अच्छी कविता है किन्तु उस में दो चार खटकने वाली बातें भी हैं; पंत जी जब कहते हैं—'मेरे मानस की तरंग में पुनः अनग बनो साकार', पाठक तब सोचता है यह वाक्य तो 'मदनमर्मर परे' के लेखक रवीन्द्रनाथ को लिखना चाहिए था, उसे पंत जी ने क्यों लिखा? दूसरी जगह, एक दूसरी गहरी गलती पंत जी ने की है वे लिखते हैं—

पा कर अबला के पलकों से मदन तुम्हारा प्रखर-प्रहार,
जब निरख त्रिभुवन का यौवन गिन कर प्रबल तृषा के भार,
रोमावलि की शर-शय्या में तड़प-तड़प करता चीत्कार,
हरते हो तब तुम जग का दुख, बहा प्रेम सुर-सरि की धार!

इस में महाभारत के भीष्म-वध की कथा के उस समय के संदर्भ की बात चली आती है जिस समय भीष्म ने शिखंडी को देख कर अस्त्र छोड़ दिये थे और अर्जुन ने अपने प्रखर प्रहारों से उन्हे शर-शय्या पर गिरा दिया था। भीष्म को प्यास लगती है तब अर्जुन ही अपने बाण से धरातल बेधते हैं और वहाँ से जल की धारा निकल कर भीष्म पितामह की तृषा बुझाती है। लेकिन, आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म पितामह को त्रिभुवन का यौवन बनाना और उन का वर्णन 'अनंग' के साथ करना अक्षम्य अपराध है।

पंत जी विचारों में यदि मौलिक होते, पंत जी गंभीर विचारक यदि हुए होते और पंत जी के स्वर यदि इतने ही मधुर रह पाते जितने कि पल्लव में हैं तो हिन्दी, पंत जी को पा कर धन्य-धन्य हुई होती। लेकिन हिन्दी को पंत जी पर नाज नहीं होना था। और अब तो पंत जी की 'ताज' सरीखी कविताओं को पढ़ कर आश्चर्य और विषाद होता है। अच्छा होता पंत जो ताज सरीखी कविताएँ लिखने के बदले कुछ न लिख कर कानपुर के मिल मजदूरों का संगठन करने लग जाते! अपनी पतली आवाज में, लम्बे-लम्बे लेक्चर झाड़ते, कागज पर लिखते तो गद्य लिखते पर कविता न लिखते! यदि वे ऐसा करते तो रवीन्द्र नाथ और विश्वभारती बनने बनाने के उन के काल्पनिक स्वप्न भी टूट जाते और कविता के साथ ही साथ उस आलोचना की भी पतन से रक्षा हो जाती जो पंत जी में आइन्स्टीन ढूँढती है।

पल्लव, ग्रंथि, गुंजन और ज्योत्स्ना ही पंत जी की सुंदर कृतियाँ हैं। यद्यपि इन को देख कर भी दुख होता है। दुख यह देख कर कि पंत जी की निर्मल प्रभा पर श्यैले का ग्रहण लगा हुआ है। और उन्हों ने अपने जीवन के साथ ही अपनी भाषा को भी स्त्रैण्य बना दिया है।

---

४ हिमवंत-पुत्र

(हिमालय)

"तुम से पावन और उच्च कुछ भी पृथ्वी के
पास नहीं था, इसीलिए पूजन करने की
अभिलाषा जब हुई उसे प्रभु के चरणों की,
तुम्हें उठा हाथों में कमलों की माला-सी,
भूमि लग्न वह हुई भक्ति से गद्‌गद् हो कर;
उसी भाँति तुम स्वच्छ और निश्चल आँखों से
देख रहे हो स्वर्ग लोक की ओर ज्योति में,
जहाँ वास करते प्रभु पृथ्वी के परमेश्वर;
प्रभु आयें या नहीं ग्रहण करने को तुम को,
स्वर्ग-लोक हो अथवा नहीं जहाँ वह रहते,
पर अपनी दृढ़ भक्ति और निश्चल श्रद्धा से,
स्वर्ग लोक का निशि-दिन चिन्तन करते करते,
तुम बन गये स्वर्ग से सुन्दर लोक स्वयं ही।"

हिमवन्त देवताओं की भूमि है। उस अतीत में जब कि अप्सराएँ किसी मनुज की छवि पर मोहित हो कर, अपने प्रिय को स्वग में ही छोड़ कर इस धरा में जन्म लेती थीं, राजकुमार, जब हेम-माणिक-मुक्ता के शैलों को छोड़ कर बनों में तपस्या करने चले जाते थे इस भूमि-भाग में दुर्गा और बाणासुर के राज्य थे। शिव और दक्ष के विरोध का जो रूप, हरिद्वार के पास स्थित कनखल में, यज्ञ-विध्वंस के समय दिखाई देता है उस को चित्रित करने वाला साहित्य उत्तराखंड के हिमालय को

शिवलोक बतलाता है। हिमालय के इस भूमि-भाग में शैव धर्म की प्रधानता रही है। इसी से यह दिखलाई देता है कि मध्यकाल में योगी नाथ और सन्तों का साहित्य वहाँ खूब फूला फला। गोरखनाथ, सत्य नाथ, बाला नाथ, हनुमंत बीर, मै मंदा बीर, कबीर, रैदास, मौलाराम आदि की वाणियाँ वहाँ प्राप्त होती हैं। लोक गीतों में भी, विशेष कर मंत्र तंत्रों में यह धारा अबाध रूप से चली आ रही है, नारायणी वैष्णव धर्म की पंच देवोपासना और शैव शाक्त धर्म की पंचरात्र प्रणाली भी वहाँ पाई जाती है। योगियों के गिरी, पुरी, भारती और सरस्वती चार संप्रदाय पाये जाते हैं। मौलाराम ने मन्मथ पंथ का विकास किया। बौद्ध, जैन, और सिख धर्म भी भिन्न-भिन्न समय वहाँ पहुँचे। इन धर्मों के अनुयायी भी वहाँ जा बसे। वैदिक धर्म की धार वहाँ उस युग में ही पहुँच गई थी जिस में आकाश की बिजलियों से अग्नि को उत्पन्न कर उसे उपयोग में ला सकना आर्य लोग सीख रहे थे। हिमवंत के विवाह-गीत, माँगल=मंगल-गीत, इस धूमिल इतिहास को छायाए लिए है। इस्लाम और ईसाई धर्म भी अब वहाँ पाये जाते हैं, किन्तु इन के अनुयाई संख्या में अल्प हैं और अधिकांशत; समाज के अविकसित मानस-स्तर के हैं। नारायणी धर्म का जन्म हिमवंत में हुआ जान पड़ता है। प्राचीन साहित्य से विदित होता है कि नारद, बदरिकाश्रम में पांच रात्र की शिक्षा पा कर द्रविड़ देश पहुँचे। और द्राविड़ी भक्ति फिर उन के उद्योग से मथुरा से गंगा के मैदान में फैलती है।

ईसा पूर्व की चार शताब्दियों से ले कर ईसा बाद की छठी शताब्दी तक इस हिमालय प्रदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार रहा। शंकराचार्य ने केदारनाथ और ज्योतिर्मठ के केन्द्रों में नये रूप में शैव धर्म की ध्वजा फहराई। अठारहवीं शताब्दी के शैव धर्मावलम्वी चित्रकार कवि मौलाराम अथवा उन के पुत्र ज्वालाराम में से किसी एक ने बदरीनाथ का शब्द चित्र अंकित करते हुए मूर्ति मंडली (आयतन) वर्णन में इस

ओर संकेत किया है कि केदारखंड में बौद्ध धर्म वैष्णव धर्म में बदल गया ।

१

केदार षंड उत्तर दिषैं, भये बौद्ध हरि रूप,
बैठ्यौ ध्यान लगाय कै, सुन्दर श्याम अनूप ।

२

क्रीट मुकुट मणि खचित कर्न कुंडल सु विराजत,
स्याम अंग शुभ अंग पीत, पीताम्बर साजत,
जोग ध्यान विज्ञान विमल कमलासन बासी,
कमला वाऐं अंक परम सोभा परकासी,
नर नारायण गरुड़ादि कुवेर उद्धव मुनी,
सब हि करत प्रणाम, उच्चारत हैं जय जय धुनी !

बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए अशोक ने अपने यत्न किए, अपने धर्म लेखों को उत्कीर्ण करने के लिए हिमालय में भी स्थल चुने । कनिष्क के समय वहाँ शकों का राज्य हो गया । बाद की शताब्दियों में हूण, गुप्त, प्रमर, सोलंकी, गहड़वार, चौहान, मुसलमान, गुरखे और अंगरेज वहाँ के शासक क्रम-क्रम से हुए ।

समय-समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार के आपद्ग्रस्त राजकुमारों, कवियों, तथा अन्य व्यक्तियों ने हिमवंत में शरण पाई । देवधाम यात्रा प्रकृति दर्शन तथा तपस्या के लिए भी लोग वहाँ गये; कालिदास की, जन्मभूमि याद यह हिमवन्त न भी रहा हो, शकुन्तला यदि इस देश की न भी रही हो, पार्वती की जन्मभूमि भी यदि और कहीं सिद्ध हो जावे तब भी इतना निश्चय है कि कालिदास ने अपने मेघदूत को अलका की ओर भेजा है, उस उदगम् की ओर जहाँ से अलकनंदा निकलती है । हस्तिनापुर के दुष्यन्त का भरत जननी शकुन्तला से मिलन मरीचि के आश्रम में दिखलाया है, शैलाधिराज तनया की तपस्या-स्थली

इसी भूमि भाग को बनाया है। मेघदूत, कुमार संभव, रघुवंश सभी में हिमवंत का यशोगान किया है। शंकराचार्य सातवीं शताब्दी में हिमवंत में पहुँचते हैं। उस के पश्चात् राजपूतों का आधिपत्य वहाँ हो जाता है। शिव और शक्ति की उपासना बढ़ती है; पांडव पूजा चलती रहती है। योगी-संतों की विचार धारा के साथ वैष्णव धर्म फैलाता है। मुसलमान अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं किन्तु विजयी नहीं होते। लोदियों और मुगलों के समय में बल्लभाचार्य, तुलसीदास, राणा प्रताप, अहल्याबाई, गोकुलनाथ मिश्र, जगन्नाथ मिश्र, भूषण, मतिराम, रत्नाकर, सुलेमान शिकोह, श्यामदास, केहरिदास, गुरु रामराय आदि वहाँ पहुँचते हैं। बल्लभ-संप्रदाय के ग्रंथों से पता चलता है कि बल्लभाचार्य ने दो बार बदरिकाश्रम की यात्रा की थी। वैष्णव धर्म की ध्वजा वहाँ फहराई थी। व्यास के दर्शन वहाँ उन्हें हुए थे। उन से शास्त्रार्थ हुआ, और उन से प्रेरणा पा कर भागवत की सुबोधिनी टीका लिखी। तुलसी का नाम आज भी बदरीनाथ की स्तुति के साथ जुड़ा मिलता है। राणा प्रताप के दिये पट्टे बदरी नाथ के पंडों के पास पाये जाते हैं। गोकुलनाथ जगन्नाथ मिश्र के रचे संस्कृत ग्रंथ जो आज, सेंटपीटर्सबर्ग लाइब्रेरी में हैं इस बात को बतलाते हैं कि इन मैथिल कवियों ने श्रीनगर गढ़वाल के राजा फतेहशाह के दरबार की शोभा बढ़ाई थी और अनेक संस्कृत ग्रंथ वहाँ रह कर रचे थे। श्यामदास केहरिदास के वंशज मौलाराम का विपुल साहित्य मिलता है। रतन-कवि के फतेह प्रकाश, फतेह भूषण ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। भूषण ने गढ़वार राजा के हाथियों का वर्णन किया है। मुगलों तथा सिक्खों के इतिहासों में श्रीनगर के दर्बार तथा गढ़वाल के सबंधों का उल्लेख मिलता है। फतेहशाह के समय में श्रीनगर, अनेक विद्याओं का केन्द्र तथा फलता फूलता शहर था। सन् १८१५ ई० में गोरखों का राज्य जो १८०३ में आरंभ हुआ था अंगरेजों ने समाप्त कर दिया। बाईस अप्रैल १८१५ ई० को गढ़वाल में ईस्टइंडिया कंपनी की

ध्वजा फहरा रही थी। गुर्खाली तथा कंपनी के अनिष्टकारी राज्यकाल में श्रीनगर अपनी उस श्री को खो चुका था जो उस ने महराज फतेहशाह के समय (१६६७ ई०-१७५६ ई०) में प्राप्त की थी। श्रीनगर के चित्रकार कवि मौलाराम ने **'श्रीनगर-दुर्दशा'** का वर्णन एक अर्जी में किया है जो रेखता छंद में लिखी गई है। अर्जी नैपाल दर्बार में जनरल भीमसेन को भेजी गई। नैपाल, सन् १८०३ ई० से गढ़वाल पर राज्य कर रहा था। गढ़वाल में गोरषा राज्य का अन्त ईस्ट इंडिया कंपनी ने २७ अप्रैल १८१५ ई० को किया। जनरल भीमसेन दिसम्बर १८०५ में नैपाल के मंत्री पद पर आये थे। मौलाराम की यह अरजी दिसम्बर १८०५ ई० और अप्रैल १७१५ ई० के बीच की है।

मालिक रहा नगद मैं, मुल्क खुवार हो गया,
साहेब गुलाम पाजी सब इकसार हो गया,
रैय्यत पै जुल्म और बिसियार हो गया,
क्या खूब श्रीनगर था, कैसा उजार हो गया!
गुलजार था यौं सैहर जवानी के वखत मैं,
बैठे थे महाराज फतेशाह तखत मैं,
करते थे गौर सब की इन्साफ जुक्त मैं,
राजी थी दीन दुनिया, रहती थी भक्त मैं,
बिरता जगीर गूँठ सभी के बहाल थे,
मिलता था रोजीना, सभी रंग लाल थे,
घर-घर मैं लोक सब ही साहेब कमाल थे,
करते थे राग रंग सहर मैं षुस्याल थे,
बसता था सहर सारा, क्या ग्वूब थी बहार,
राजी थे लोक सब ही, हजारांन दैह हजार,
करते थे रोज मर्रे सब लोक रोजगार,
साहू रिणी थे राजी, चलता था सब विहार.

चलती थी रौसेरंगी. गुलजार चमन था.
गुलगुल-सी गुफ्तै गुंचै बुलबुल कौं अमन था.
मैहबूब की जबाँ लब सीरींहि सुपन था,
अलमस्त मौलाराम जन संग मगन था;
ऊजड़ पड़ा है जब सौं, नहिं सहर मैं अमाली,
हाटैं पचास साठ बसैं. और सबै खाली,
तिन कौं बी नहीं चैन, तिलंगाहि देह गाली,
करते नाहक हि सिजतस वाही सौं गोरयाली!
सुनता न कोई दाद हि फर्याद किसू की,
कहिते न भली बात कोई सात किसू की,
राजी है चुगल चोर नहीं दाद किसू की.
असराफ फिरै ख्वार, नहीं याद किसू की,
चलती न लाल मोहर, महराज की रकम,
देता न रोजी हाकिम, नहीं मानता हुकम,
मलते हैं दोऊ दस्त षिरदमंद भरे गम,
पड़ता है कोई दिन मैं सितमगर पै क्या जुलुम,
करते हैं जो तैहसील वो धरते फाँट ड्योढ़ी,
बरबाद हुवा मुलक जो, सब ही नैं आस छोड़ी,
किरसान के न बीज बयल पास रही कौड़ी,
भाजे सभी मधेस कौं रैय्यत भई कनौड़ी,
करते हैं जन जनाह जबरदस्त घर पराये,
सुनते नहीं इन्साफ अमाली जो गढ़ मैं आये,
करते जो चोर चोरी, किसू नें न वो बँधाए,
साहू के दाम खाय रिणी नें सभी हराये,
विरता, जगीर गूँठ, रोजीना हि हर लये,
मासंत षर्च भत्ता मैं सभ भंग ही भये,

मिलता नहीं रोजीना. सभ बंद कर दये,
नेपाल मैं महाराज, मौलाराम गढ़ रहे;
चाहौ मुलक बसाया, तो जल्दी षबर करो,
जर्नैल भीमसैन साहब, तुम ही नजर धरो,
आमल रहा न कोई, इहाँ, पाप मत भरो,
तुम धर्म कौं प्रकास, भीमसेन दुख हरो,
बिरता जगीर गूँठ रोजीना हि थाम दीजै,
देगी दुआ कुल आलम, जर्नैल नाम लीजै,
भेजो सहर मैं जूद अमाली मुदाम कीजै,
इन्साफ करै साफ सभी कौं अराम दीजै,
साहेब हो मेहरबान, कदरदांन दर जहाँ,
जर्नैल भीमसैन तुम नैपाल हम इहाँ,
अर्जी दई पठाय पौंछेगी जो तहाँ,
सब ही जो मतालब, इहै कहि देहिगी जबाँ,
घर-घर में अकल सब की हैरान हो रही है,
खलक तमाम सारी बैरान हो रही है,
कोई न षिरदमन्द कुफरगान हो रही है,
रैय्यत इहाँ की सबही पिरेसांन हो रही है,
रैय्यत के घर न पैसा, कंगाल सब भये,
ताँबा रहा न काँसा, माटी के चढ़ गये,
टुकड़े का पड़ा साँसा, मधेश बढ़ गये,
कपड़ा रहा न तन मैं, अँगेले बि सड़ गये,
आम है यो बात मौलाराम मुलक रब का,
रैयत कौं करो राजी, अहवाल सुनो सब का,
चाहता है मुलक लीया, फिरंगी पड़ा है कब का,
होता है कोई दिन में हुकुम कंपनी साहेब का !

श्रीनगर में उन दिनों नैपाल की ओर से काजी अमरसिंह थापा हुकूमत कर रहा था। मौलाराम ने उसे भी समझाने का प्रयत्न किया—

उत्तर औ दषण, पूरब-पछम तमाम सब का,
होता है कोइ दिन में हुकम कंपनी साहेब का,
घर-घर मैं अदल करना आलम तमाम सब का,
होता है कोई दिन मैं हुकम कंपनी साहेब का,
कलकत्ते बीच काली दीनी है इह बहाली,
दिल्ली पड़ी है खाली, आवता है तह अमाली,
भेजे हैं कहीं कंपू, कहीं कंपनी निराली,
आवैंगे कहीं साहब करते हुकम कमाली,
आवैंगि समैह ऐसी, इह बात मुकर जानो,
बहतरी के साल फिरंगी धसैं पहारों,
जीवेगा जौं न तब लौं सुनते हो बात कानों,
काजीह अमर सिंह मानों या मती मानो!
कहती है सारदा यौं मौलाराम की जबानी,
आवाज यही आई इह कंपनी कहानी,
कलजुग मैं होय सतजुग, फिर होयगी सिंहानी,
महियर का राज होगा, मिट जायगी तुरकानी।

किन्तु, मनाने से ही यदि कोई मान जाय तो भवितव्यता के लिए स्थान ही न रहे। फिरंगी अपने राज्य को बढ़ाने लगा। मौलाराम ने भारत की भूमि पर बढ़ती हुई उस जाति को चारों ओर फैलते देखा और उस के गुण दोषों का ब्यौरा अपनी वाणी में प्रस्तुत किया। एक नहीं अनेक रूपों में फिरंगी तथा कंपनी के कारनामों को चित्रित किया गया है। उदाहरण के रूप में कुछ ही अंश यहाँ दिये जा सकते हैं—

१

धसा जब सौं हिन्दोतां में फिरंगी सैयर करता है,

जमी जागीर रोजीनां सभी का फैर करता है,
भयी जागीर तागीरैं, मिलक बरबाद सब ही की.
मल्कौ कैद मैं दीया, मुलक पै कैहर करता है,
किसी का आसनां नाँहीं, भस रहता है गर्रे मैं,
कलम ले दस्त जुज षुंबाद न लैहर करता है,
पढ़ा सब फारसी, हिन्दी, अँग्रेजी जबाँ को पढ़ता है,
करै यह चाकरी जिस की, उसी को जेर करता है,
हरामी निमका आया यो हिन्दोस्तां के अन्दर,
खबरदारीह सैं रैहना, अलका घेर करता है,
कमीना पास रखता है, षिरद मन्दान का दुश्मन,
मायल है नाजनी ऊपर, चु चीस्मै सेर करता है.
रहै अलमस्त आला मैं, शराबी औ कबाबी है,
षलक मैं आप मोलाराम शायर बैहर करता है।

२

सिर की उतार कंधे, कंधे की जमी पै,
लेता है मिल्क षोस कै रिन्दे की थमी पै,
देता है फिर सालीना, नहीं और कुछ रकम,
रखता है मुल्क कबजै मैं कंपनी हुकम,
उत्तार और दषण, पूरब-पछम जपत किया,
दिल्ली का तख्त सारा बातन मैं ले लिया,
करते हैं इल्म आप ही जो सभी बात का,
इन मैं रहा न काम किसी के बि हाथ का,
हिकमत सभी हि जानैं जंजीर तो फँसाना,
लड़ते हैं जहाँ जाय के, लेते हैं खजांना,
छुटते हैं बम्ब गोला, लेते हैं किला छीन,
देते हैं उसे ढाय कै चिनते हैं जो नवीन,

चद्र गज्ब बारूद की आतश उड़ावते,
जल मैं जहाज ऊपर किस्ती दौड़ावतें,
करते हैं सब बिहार जो कोठी हि डालते,
करते हैं जर परीद न फा की निकालतें,
पड़ती हैं जहाँ कोठी, लेते हैं मुलक दाब,
कम जात की तरकी, पिरदमंद सब खराब,
चलते हैं सैल करते, मुलक मैं जो पराये,
सब राह निगेह करते जो राज दबाये,
देखा जहाँ सी काढ़ दिया सब हि जो कढाय,
संन-भंग सब पहाड़ मैं देते हैं जो सन भराय,
सँन-भंग के बहाँनें धस्ते मुलक पराये,
नहीं जानते यो बात कोई, पाने दुजद आये,
सँन-भंग के बहाने सब भेद लेत हैं,
दुश्मन के घर मैं भंग ही जो बोय देत हैं ।

३

इन्साफ नहीं साफ फिरंगीं के अैन मैं,
फिरते हैं सभी साहेब रंडी की सैन मैं,
चाहती है जिसे रंडी, करती है उसे प्यार,
मालिक कौ मिलैं धक्के, होते हैं खुशी यार,
इन्साफ की अदालत आलम सौं उठ गई,
बैठी है पुलस आंन कै, सब रीत छुट गई,
चोरी करै जो चोर, न जिनस दिलावते,
बाँधैं जो कोई दुजद कौं साहेब बुलावते,
साहेद कहै जो बात सोई मानते से साँच,
चोरी बगल के बीच न करता है कोई जाँच !
साह के दाम खाय रिणी देत हैं जवाब,

मकदूर नहीं उन का जो कर सकैं खराब,
नादांन हुवे दानां, षिरद मंद उठ गये,
कंगाल बने साह, साहूकार लुट गये,
सब तखत पड़े खाली, वाली न को रहे,
घर-घर मैं जमी फूट, फिरंगी नै षरीदी,
आलम मैं पड़ी लूट, चले चाल न सीधी !
हिन्दू य मुसलमान सब तगीर हो गये,
अंगरेज वर जमी ले अमीर हो रहे ;
अमीर थे जो कोई सो हो गये फकीर,
बिरता जगीर उन का सब हो गया तगीर !
मिलता नहीं रोजीना, सुनता न कोई दाद,
गरीब इल्मदार करैं किस पै जा फिराद !
मुसकिल पड़ी सभी कौं कुछ जात ना कही,
गुलाम को सलाम मौलाराम हो रही !
गुलाम ये षास रहैं पास हमे सैं
खाते है घूस वो वि सिवार सभी सैं,
लेते नहीं सलाम, न सुनते हैं किसू की,
बामन कौं न परनाम, राम-राम 'किसू की !
अर्जी करैं जो कोय वो पहिलौं हि घुरकते,
मजलस के बीच कायत आपस मैं चुरगते ;
रहिते हैं घुसै साहेब षाने के बीच मैं,
होते हैं खफा अंदर आवने के बीच मैं,
ताकत नहीं किसू की, बिन बुलाये कोई जा,
रहते हैं पड़े ऐस मैं करते हैं नित मजा,
शराब रंगारंग जो हरदम हि पीवते,
खाते हैं गोस्त सब का, डरते न जीव ते,

हलाल औ, हराम कछू जानते नहीं,
घाते हैं ढोर वो सूँवर कछु मानते नहीं,
हिन्दू न मुसलमान हैं हयवान फिरंगी
करते हैं मचामच हो आलम में तरंगी !
पढ़ते नहीं पुरान ये कुरांन न फारसी,
लिखते हैं ये अंगरेजी आईन आरसी,
मतलब का सभी अपने आईन बनाया,
हिन्दू मुसलमान का सब राह उड़ाया,
कहते नहीं ये राम-रहीम खुदारा,
साहब बने हैं आफ कहैं सब कौं चिकारा;
अवल्ल वनै सिफाई, गरीबी हि चालकी,
लेते हैं मुल्क घोस फिर करते हैं मालकी;
धस्ते हैं जहाँ पहिलौं लेते हैं द्रअन्नी,
रहते हमेस हाजरं, कर दोस्ती घनी,
फिरते हैं संग उस्के जिधर कौं वो जा चढ़ैं,
ले संग तोपखांना निहसंक ही लड़ैं,
सब भेद लेह उस का, घर फूट डाल दैं,
उस की चलै न कुछ वी दसअंन्नि आफ लैं।

४

साहब इस्म विसियार था दिल तंग क्यों किया ?
बिरता जगीर गूँठ सभी का क्यों हर लिया ?
छोटा था राज गढ़ का देता सो वी रहा,
मोटा था गोरष्याली उन ढेर जस लिया,
पोटा था अमरसिंह जग मूल सौं गया,
अपने ही दस्त सेती जहर घोल कै पिया,
कहते हैं सभी ल्यानत, आलम निमक हराम,

करता है ज्यौं न नेकी, हमेसैं न सो जिया,
आम है यो बात मौलाराम की जहाँ,
माने तो वाह वाह है, इह अैंन कहि दिया !

५

गरीब परबर दो आल्मै कहैं तुम कौं सभी दांना,
जरीजर गंज दौलत सौं मुलक आवाद है खांना,
मुलक सब हिंद का लीया, जपत दिल्ली तषत कीया,
हुकम नहिं काहुँ कौं दीया, तमामी षलक ने जाना,
दिया है तख्त कादर नैं तुमैं इनसाफ की षातर,
सरे मू जब अदल करना, किसू का दिल न तरसाना,
दिया जागीर रोजीना सभी का षोल आल्मै,
रहा उम्मेद में फिद्वी, बिन पढ़ा है न परवाना,
नहीं याकूत षाने मैं जिगर कौं षून कर षाते,
हमन जैसे गरीबन का, नहीं कुछ दर्द पहिचाना,
हमन जैसे गरीबन पै करम करना हि लाजम है,
[1]बहत्तर साल मैं अरजी मौहर साहब पै दीनी थी
तेहतरवीं लगा जाने, न पाया हम नै कुछ म्याना,
सुकर दरगाह मैं भेजा मिलै दीदार आज कौं.
मिले किस्मत सौं जज साहेब, करो अब जूज फरमाना,
षलक मैं आंम मौलाराम का नहिं काम काहू सौं,
सभी के आफ मालक हो सुनो अरजी मेहरबानां!

१—विक्रम संवत १८७२=१८१५ ई०, इस तिथि के आधार पर लोगों ने मौलाराम के जीवन की अंतिम सीमा को स्थिर करने का प्रयत्न किया है, किन्तु १८२१ ई० तक की रचनाएँ मौलाराम की उपलब्ध हैं। १८२१ ई० के बाद की उन की कोई रचना मेरे देखने में अब तक नहीं आई है।

६

(१) हिन्द मैं न रह्यो कोय, हिन्दू-मुसलमान दोय,
दीन्यो है तषत खोय, कंपनी बुलाई है;
आई है ढापू, ढाप लीनी है वसुधा माप,
येक चडसा भरि माँगि, सारी धरती दबाई है,
बिरता जगीर सब तगीर भई लोगन की.
कहत मौलाराम फूट घर-घर फैलाई है,
येक नहीं होते, मिलि रोग नहीं खोते,
पग-पग मैं गोते षाहिं अकल की कोताई है।
(२) आई है कुचाल, कोई बूझै नहीं हाल,
पाप बाट जोहै, कमाल हिन्दवाने तुरकाने में,
डाँडमार लीन सब रह्यौ कोय परबत गिरदाने में,
कहत मौलाराम, कहा कांम रह्यो कवि जन को,
होय रहे अंध सब सिपाही के समाने मैं,
'हाय-हाय! तोबा-तल्लाह? करैं रैय्यत सब,
षांने-षांने षलल है छतीसौं कारषांने मैं!
(३) आमल के न्याव नहीं, नगरी मैं भाव नहीं,
रैय्यत कौं थाव नहीं, पाप झकाझोर है,
घर-घर मैं माच्यो सोर, ठौर-ठौर कागा रोर,
औषद नहिं करत कोय, रोग यह कुठौर है,
येक नहीं होते, मिलि मंत्र नहीं जोहते,
आपस में पड़ी फूट, सब के मन चोर है,
कहत मौलाराम षबरदारी मैं रैहते नाहिं,
हिन्दू कौं न घाट, मुसलमान कौं न घोर है!
(४) आपस मैं राह नहीं, सब की सलाह नहीं,
कोई अब मलाह नहीं, कैसो काम कीजिए,

सारे में देखि फिरयौ, घर-घर में पाप भर्यौ.
नेक नहीं रह्यौ कोय, काको नाम लीजिए !
कहत मौलाराम आयो बत्तर जमानो यह,
मिलत न जगीर औ रोजीना जा सौं जीजिए.
कैहिता हूँ पुकार, निराधार के अधार,
चली खोटी यह बयार, इसे जल्दी थाम दीजिए !
५ कहिए तो मुस्किल, जो न कहिए तो मुस्किल;
देपि रहिए तो मुस्किल, महा मुस्किल आन छाई है
रहिए तो मुस्किल जो न रहिए तो मुस्किल
कहिए तो मुस्किल, कठिन ऐसी वनि आई है;
कहत मौलारा । य हवाल भयो आलम में,
गुण-ग्राहक रहे नहिं अब नीच प्रभुताई है.
कैहिता हूँ पुकार निराधार के अधार,
सभी भई मुस्किल नाव ऐसी भरि आई है !

७

१ श्रीनग्र वहै अब नाहिं रह्यौ अत विग्र भयौ, कब लौं लहिना,
गढ़वाल में हाल रह्यौ न कछु, दुख-सुक्ख परै कब लौं सहिना !
निरमानुषता पुर होय रही, इन नीचन के संग क्या कहिना !
रैहना क्यों कीमत नाहिं जहाँ, गुनि कौ न उचित्त तहाँ रहिना ।
२ गुण ग्राहक ते नरनाह किते, गुण चाह जिते तहीं रैहना,
निज देस हितै परदेस भलो, अपनो जह जाय भिडै लैहना,
लैहना जहँ चार आचार भलो, उन के दरबारहि कौ गहिना,
रैहना क्यों कीमत नाँहिं जहाँ, गुनि को न उचित्त तहाँ रहिना
३ कवि की कविता न सुनै ये विथा अपनी प्रभुता मैं करै कहिना,
कब हूँ कवि होय के छंद पढ़ै, कबहूँ सुर ताल करै गहिना,
जस कीरत जानत नाहिं कछू, उन के संग मैं जो कहा लहिना,

रैहना क्यों कीमत नाहिं जहाँ, गुनि को न उचित्त तहाँ रहिना
मौलाराम की रचनाओं से पता चलता है कि वे श्रीनगर से तंग आ कर नजीबाबाद, लखनऊ, कान्तिपुर, लाहौर, काँगड़ा, जयपुर आदि स्थानों में भटकते फिरे और अंतिम दिन उन्हों ने राम-भजन में बिताये।

गढ़वाल पर अंग्रेजों का कबज़ा जब हो गया तब उन्हों ने पौड़ी को राजधानी बनाया और सुदर्शन शाह ने (राज्यकाल १८१५ ई० १८५६ ई०) टेहरी को राजधानी बनाया। सुदर्शनसाह के यहाँ भी पंडित और कवि रहा करते थे। इन के समय में अचलानंद के पुत्र कुमुदानंद बहुगुणा ने सुदर्शनोदय काव्य लिखा। टिहरी नाम करण पर गंगावली बासी लोकरत्न पंत उपनाम गुमानीपंत (१७८० ई०-१८४६ ई०), का एक हिन्दी छंद मिलता है—

सुर गंग तटी, रसखान मही, धन कोश भरी यहु नाम रह्यो,
पद तीन बनाय रच्यो बहु विस्तर वेग नहीं जब जात कह्यो,
इन तीन पदों के बखान बस्यो अच्छर एक ही एक लह्यो,
जनराज सुदर्शन साहपुरी, टिहरी इस कारण नाम रह्यो।

पूर्वी गढ़वाल की राजधानी पौड़ी बन जाने और अंग्रेजी राज्य की वहाँ स्थापना हो जाने पर ईसाई धर्म प्रचार के लिए चोपड़ा में अमरीकन मिशन हाई स्कूल खुला गढ़वाल में शिक्षा प्रसार में इस स्कूल का विशेष हाथ रहा है। संस्कृत शिक्षा का वह महत्व राजकीय दृष्टि से अब नहीं रहा, राजाओं के समय में जो था। श्रीनगर में ये भी गवर्न्मेंन्ट हाई स्कूल है। इन दो स्कूलों से निकले व्यक्तियों में डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, अम्बरीश और चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने साहित्यिक क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। डाक्टर बड़थ्वाल का मुख्य क्षेत्र यद्यपि, खोज पूर्ण आलोचना का रहा है और संत-नाथ-साहित्य की महत्वपूर्ण शोधें उन्हों ने की हैं, किन्तु गद्य काव्य और पद्य क्षेत्र में भी उन्हों ने प्रयोग किए हैं। उन के पद्य कुसुम-कुंज में संचित हैं। अंबरीश का कार्य

बहुमुखी है। कविता में धारावाहिक सौन्दर्य अभिव्यक्ति उन की विशेषता है। बेजोड़-बीरा, मानस-हंसिनी, गीत-गोविन्द टीका, दोहावली टीका आदि उन की रचनाएँ हैं। उन्हें कालिदास की परंपरा का प्रकृति मानव प्रेमी कवि समझना चाहिए। कक्कू को वर्डसवर्थ की सी विशेषताएँ उन के काव्य में मिलती है।

वेदना के मनोहर गायक सभी देशों, सभी साहित्यों में हुए हैं। अंग्रेजी साहित्य में श्यैले और कीटस की वेदना, पंख खोल कर नील नभ में चीत्कार करती उड़ती है और, सुननेवालों के हृदयों में एक टीस उत्पन्न कर देती है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के स्वर कालिदास और भवभूति के हैं। बंगला में रवीन्द्रनाथ के, गुजराती में कलापी के, हिन्दी के पुराने कवियों में कबीर, जायसी, मीरा और घनानंद के आधुनिक युग में, प्रसाद महादेवी नरेन्द्रशर्मा, हरिवंशराय 'बच्चन' और चन्द्रकुँवर के। आधुनिक हिन्दी के कवियों में पश्चिम की चेतना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आई है। पश्चिम के साहित्य-शास्त्र के सिद्धान्त भी बहुत कुछ अपना लिए गये हैं। गीति काव्य की रचना में आधुनिक कवि अपने पूर्वजों की अपेक्षा आगे बढ़े हुए माने जाते हैं। साहित्य-शास्त्र तथा संगीत-शास्त्र के सिद्धान्तों की मान्यता और उन का अनुसरण भी इस का एक कारण है। सौन्दय वेदना, करुण-संगीत और मनोहर वाणी के स्वर जब एकमेक हो कर निर्झर की भाँति फूटते हैं, गीतों की ऐसी धारा, पृथ्वी पर तब बहने लगती है जिस के शीतल जल में स्नान कर संतप्त मानव भी शान्ति पाते हैं। अमूर्त सूक्ष्म चेतनाओं की तन्मय स्वर लहरी, साहित्य में, काव्य के क्षेत्र में गूँजने पर 'गीति' कहलाती है।

अभिव्यक्ति (शैली) की दृष्टि से गीति की गिनती मुक्तक में होती है, कथा की स्थूलता का अभाव उस में होता है। कथा-सूत्र के सहारे, भावों-विचारों को माला में जब पिरो दिया जाता है तब खंड काव्य-प्रबंधकाव्य की सृष्टि होती है। जीवन कथा का आत्मपर्यवसित एक लघु

अंश, खंड काव्य में स्थान पा सकता है। उस में अधिक विस्तार नहीं होता। जीवन के विस्तार को समेटनेवाली कथा, प्रबंधकाव्य तथा उस के लघु अंश खंड काव्य इन दोनों ही में मुक्तक आ सकते हैं, आते हैं; किन्तु, मुक्तक में कथा की ओर कवि का ध्यान उतना नहीं रहता जितना घनीभूत भावनाओं की अभिव्यक्ति की ओर। मुक्तक में वह आत्माभिव्यक्ति में लीन रहता है। प्रबंध और मुक्तक की अपनी-अपनी सुविधाएँ और कठिनाइयाँ हैं। डाक्टर वासुदेव शरण के शब्दों में कहें (देखिए, नंदिनी में 'काफलपाक्कू कवि' लेख)—तो कहना होगा, "प्रबंध काव्य, पृथ्वी पर पैर रख कर चलता है, किन्तु मुक्तक, पृथ्वी और आकाश दोनों में एक साथ ही अपने पंख फैलाता है। पृथ्वी का साथ न छोड़ते हुए भी आकाश में ऊँची से ऊँची उड़ान भरने का अभ्यासी वह है। आकाश की निर्मल धूप में अपने आप को विलीन करने की अभिलाषा से ऊपर उठकर भी, पृथ्वी के साथ वह अपना संबंध बनाये रहता है।"

हिन्दी में गीतियों की कमी नहीं है। निराला, प्रसाद, महादेवी आदि ने बहुत सुंदर गीतियाँ दी हैं किन्तु, "कलात्मक सौन्दर्य और आनंद की कसौटी पर खरी उतरनेवाली मुक्तक गीतियाँ विरल हैं। शुद्ध मुक्तक की यही सब से बड़ी परख है कि न तो उस में पार्थिव अंश की अधिक गंध हो और न आकाश की अस्तित्वहीन तरलता। इस प्रकार की सफल कविता अत्यंत कठिन और विरल होती है। श्री चन्द्रकुँवर का मुक्तक इस प्रकार की विलक्षण रस प्रतीति तक हमें ले जाता है। वह ऊपर से वेदनामय जान पड़ता है, पर उस की यह करुणा कहीं भी जीवन के आनंदी निर्झर का निराकरण करती हुई नहीं जान पड़ती। करुण काव्य के इस गुण की भरपूर प्रतीति हमें कालिदास के मेघदूत में प्राप्त होती है देखिए काफलपाक्कू कवि।

कालिदास का मेघदूत जिन परिस्थितियों का प्रसाद है उन का बाहरी रूप आज बदल गया है किन्तु आंतरिक चेतना की शाश्वत धारा

में वह प्रवाह अपने ढंग से विद्यमान है। 'प्रसाद', मेघदूत और कालिदास आत्मा को अपना कर चले हैं। चन्द्रकुँवर में कालिदास मूर्तिमान हुए हैं। चन्द्रकुँवर ने कालिदास को अपना पथ-प्रदर्शक और हिमालय को अपनी कविताओं का आधार स्तंभ बनाया है। इसलिए कालिदास के इस "लघु अनुचर एक छोटे से फूल" में मलय-पवन की सुरभि और हिमालय की विराट भावना का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। चन्द्रकुँवर की कविता के प्राण, वेदना में हैं। 'हाय मेरा वेदना से बना जीवन" स्वयं उन्हों ने कहा है (देखिए 'पयस्विनी' पृ १५०। उस वेदना को रूप-वाणी देने में चन्द्रकुँवर की सहायता कालिदास ने भी की है और श्यैले, कीटस आदि वेदना के उन मनोहर गायकों ने भी जिन के चरण तल पर बैठ कर चन्द्रकुँवर ने अपने दीर्घ दुख की रजनियाँ बिता कर भी यह अनुभव किया कि मेरी वेदना को कोई नहीं गा सका है, वह उपेक्षित है उसे अपने स्वर चाहिएँ, वह अपने हृदय तल के मणियों की प्रभा को नहीं बदल सकती। 'बंधु मेरी है उपेक्षित वेदना,' 'हो गये अब प्राण परिचित वेदने तुम से' "वेदना के उन मनोहर गायकों के चरण-तल पर बैठ मैं ने हैं बिताई दीर्घ दुख की रजनियाँ' 'पर मेरे तल के मणि, अपनी बदले नहीं प्रभाएं" आदि पंक्तियों में चन्द्रकुँवर के वेदनामय जीवन ने अभिव्यक्ति पाई है (देखिए पयस्विनी पृ २६-४०; १४८-२३२;) 'छोटे गीतों, में यह अभिव्यक्ति अत्यंत करुण हो गई है—(देखिए गीतमाधवी)

"जीवन को कुछ आश्वासन दो, प्राणों को कुछ अवलम्बन दो,
ओ विहगा, आज ऐसे स्वर में, गाओ जिस से इस अन्तर में,
अभिनव आशा का वर्षण हो!

चन्द्रकुँवर के काव्य में वेदना की गहरी गंभीर धारा कवि के अंतरतम से प्रवाहित हुई है। करुणा के आनंदी निर्झरों में वेदना-जल झरता है। चन्द्रकुँवर की कविता वेदना के अभाव में जी नहीं सकती।

अनुभूति के प्राण जिस में नहीं वह कविता ही नहीं रह जाती, "विश्व के ईश्वर वही हैं जो सभी की वेदना में करुण स्वर से रुदन करते, जो सभी की वेदना को हैं समझते; कवि वही जिन के स्वरों में भरी रहती है हृदय की हार उर की वेदना।" किन्तु चीर कर भी कागज पर रख देने से अभिव्यक्ति में पूर्ण रीति से हृदय कभी नहीं आ सकता। अभिव्यक्ति का स्पर्श पाते ही वेदना भी लाजन्वती की भाँति सकुचा जाती है किन्तु फिर भी वेदना के गीत सभी गाते हैं, सभी सुनते हैं। वेदना ही हृदयों को एक करने वाली धारा है, इसी से भवभूति ने करुणा को सर्वोपरि घोषित कर रस की एकता को स्वीकार किया है- एको रसः करुण एव, इत्यादि से वह स्वीकृति विद्यमान है। आन्तरिक वेदना की तीव्रता सौन्दर्य प्रेम की पीड़ा, जीवन के सुख-दुखों की मार्मिक अनुभूतियों की सजलता देश-देश के गंधर्वों को समानधर्मा बना देती है। चन्द्रकुंवर को श्यैले और कीटस् का समान धर्मा हम कह सकते हैं। श्यैले और की भाँति नंदिनी के कवि को भी अत्यधिक मानसिक तथा शारीरिक कष्ट झेलने पड़े। उन्हीं की भाँति इस कवि की भी मृत्यु अल्प अवस्था में ही हो गई। नंदिनी में वेदना का कवि सौन्दय का वर्णन करते हुए, कहीं कहीं अपनी भावनाओं में श्यैले और कीटस् से भी आगे बढ़ गया है। पयास्विनी में 'रो रही है वह परी' (पृ १३५); प्रिय तुम्हारी घाटियों में चातकी रोती सदा मेरे हृदयतल की व्यथा, (पृ १५८) आदि गीत इस प्रकार के उच्चतम भाव शिखरों के गीत हैं। श्यैले, कीटस् और चन्द्र-कुँवर को परिस्थितियाँ यद्यपि ठीक एक सी नहीं थीं। फिर भी सौन्दय का प्रभाव तीनों पर बहुत कुछ हद तक एक सा पड़ता। अभिव्यक्ति में तीनों में भिन्नता होते हुए भी एकता है। श्यैले और कीटस् की अधिकांश कविताएँ सौन्दर्य देवियों के चरणों में खिलती है; नंदिनी के कवि की आन्तरिक व्यथा आत्म क्रंदन, में शान्त जरा के सर्व समर्पण, तुम, जीवन तम किरण प्राणधन में, लीन होती है। उदात्त कल्पनाओं की थिरकती

क्रंदन करती ध्वनियाँ तीनों में एक सी पाई जाती हैं। तीनों ने सौन्दर्य के उस प्रभाव को अधिक चित्रित किया है जो अत्यंत भावुक हृदयों में रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निसम्य शब्दान्, पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोपि जन्तुः रूप लता है। सौन्दय के क्षेत्र में प्रकृति और उस की सपूर्ण मानवीय चेतना तीनों के काव्य में आ गई है। तीनों के स्वर गीत धाराओं में फूटे हैं। नंदिनी के कवि ने कहा भी है-"मेरे उर से उमड़ रही गीतों की धारा, बन कर गान विखरता है यह जीवन सारा।' श्यैले और कीटस की आरंभिक और बाद की रचनाओं में जैसा अन्तर है वसी हो अन्तर नदिनी के प्रथम खंड और शेष दो भागों के पदों में हैं। नंदिनी व्यक्तिगत कथा गीति होते हुए और भी सार्वभौम,गीति-कथा है। नंदिनी के पदों में पहली अथवा दूसरी पंक्ति की छठी पक्ति में पुनरावर्ति भावना को घनीभूत पीड़ा में परिणित कर हृदय को शान्ति देती है। अकेली नंदिनी को भी देख कर निरपेक्षा रूप से कहा जा सकता है—

चन्द्रकुँवर मन्दाकिनी, हिम ज्योत्स्ना की धार,
विकल वेदना बाँसुरी, बहती शान्ति अपार!

नंदिनी के कवि ने साहित्य तथा कविता का साथ, अन्त तक न छोड़ा। साहित्य सेवा में वह निरंतर लगा रहा। उस ने इस बात का दुख माना कि जीवन के प्रभात काल में जिस देवी चरणों पर उसने अपना जीवन अर्पित किया था, वह उसे सिद्धि की अवस्था का बरदान न दे सकी; अपने जीवन काल में उस की गिन्ती प्रसिद्ध साहित्यकारों में न हो सकी, "मुझे इस बात का संतोष रहेगा कि जीवन के प्रभात काल में जिस देवी के चरणों पर में ने अपना सिर रक्खा था उस की मैं ने सदा पूजा की। मुझे इस बात का दुख नहीं है कि उस के प्रसिद्ध उपासकों में मेरी गिनती नहीं हुई (आठ सितम्बर १९४२ ई०)। उस ने मरण को वरा। और निराला के शब्दों में—

मरण को जिस ने वरा है, उसी ने जीवन भरा है,

दरः भी उस की, उसी के अंक सत्य यशोधरा।

मुक्ताएँ

१ जम कर बैठो पीठ पर, मौत बिखेर बाल।
मरियल टट्टू चल रहे, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल।
२ मैं ने देखे एक दिन, सखि! मी० के० बर्त्वाल,
रंकी से थे कह रहे— हाय! मार तू डाल!
३ मकड़ी काली मौत है, रोग उसी के जाल,
मक्खी से जिन में फँसे, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल!
४ रोगों से हैं मर रहे, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल!
लकड़ी हो रही हड्डियाँ, सूख रहा है ख्याल!
५ मी० के चूहे का गला, अपने मुँह के बीच,
दबा कहाँ ले जा रही, रंकी बिल्ली नीच?
६ जैसे आया कष्ट यह, सहसा हो चुपचाप,
वैसे ही फिर जायगा, क्या वह अपने आप?
७ मुझे भुला तुम ने दिया मृत ही मुझ को जान,
चले गये तुम कह मुझे, अपनी प्राण समान!
८ चले गये तुम मौन ही, कह मुझ को निज प्राण!
नहीं विधाता का मिला, मुझ को क्या वरदान?
९ मुझे भुला तुम ने दिया, मेरे उर हो मौन,
व्यथा-भरी अब है कथा, इसे सुनेगा कौन!
१० शशि की कन्या ने मुझे, किया कुंज में प्यार,
मुख चूमा, भेंटा हृदय, पहनाया मृदु हार!
११ मुझे मिली छवि-कुंज में, एक सुन्दरी नारि,
बजी हृदय में बाँसुरी, चली गई सुकुमारि।
१२ मिले न अधरों से अधर, औ, अंगों से अंग,
केवल प्रिय मुख पान से, चढ़ा सुरा का रंग।

१३ तोड़ काम-धनु भौंह से, कर शशांक अकलंक,
विधि को छण-छण कर गई, वह सुंदरी सशंक।
१४ जग में यदि मन चाहती, होती अपने हाथ,
प्रेयसि! तो यों बीतती, यौवन की यह रात?
१५ छिटकी नभ में पूर्णिमा, छाया फिर मधु-मास,
बजी कुंज में बाँसुरी, रोया हृदय उदास!
१६ तम में डूबा मैं सघन, सुधि आई बन बीच,
उगी मनोहर चाँदनी, नील गगन के बीच!
१७ प्रेम नहीं मुझ से रहा, तुम को यदि सुकुमार,
आती मेरे पास क्यों, ये आँखें सौ बार?
१८ नयनों में वे प्रिय नयन, बैनों में वे बैन।
रूप एक वह रूप था, यहाँ कहाँ अब चैन!
१९ आँखों में प्रिय रूप वह, वाणी में प्रिय नाम,
श्रवणों में उन की कथा, यहाँ किसे विश्राम!
२० मुझे ज्ञात है तुम नहीं अब हो मेरे पास,
मैं जीवित हूँ है मुझे, प्राण मिलन की आस।
२१ मुझे ज्ञात है तुम नहीं, हो अब मेरे पास,
किन्तु करोगी तुम सदा, मेरे उर में बास।
२२ नयन छोर छू, छल भरी, यह हिमगिरि-वातास,
करती क्यों जाने हृदय, व्याकुल और उदास!
२३ प्रिय के मुख में वह सुखी हँसती पा निज कंत,
विरही को देता भुला, आता देख वसंत!
२४ तुम-सा मैं होता कहीं, होता कभी न भूल,
काँटों में भी देखता, सदा खिले ही फूल!
२५ तुम-सा मैं होता कहीं, रहता नित सानंद,
तुम्हें भुला यदि मैं सकूँ, क्या न मुझे आनंद!

२६ नील नयन, नव घन वसन, अलक पुंज घन घोर,
उमड़ रहा घन गगन में, वर्षा रूप अछोर!
२७ वन में छाया से कहीं, अब न तुम्हारा वास,
अब न सुरभि मंथर पवन, अब न कहीं मधु-मास!
२८ चुभे प्राण! इस हृदय में मधुर विरह के बाण.
नयनों में, जल-कण भरे, अधरों में प्रिय गान!
२९ ज्यों ज्यों होती घोर तम, घन-विषाद की रात,
त्यों त्यों उर में फूटता, प्रिय आनंद प्रभात!
३० हे भौंरे इस देश भी कर तू मित्र विलंब,
जब तक कुसुमों में भरा रहता वहाँ कदंब!
३१ औरों को बहु सुख सदा, मुक्ता-माणिक हेम,
उसे नहीं कुछ विश्व में, जिसे तुम्हारा प्रेम!
३२ रोये ज्ञानी, मूढ़ के, मुख पर छलका हास,
होती जब दुख की निशा सुख का हुआ विकास!
३३ खिलते हैं कुछ खिल चुके, कुछ मर रहे उदास,
उसी वृन्त में मृत्यु है, और उसी में हास!
३४ अपने गुण-गण भूल कर, औरों का गुण--गान,
जो नर करते जगत में, वे ही देव--समान!
३५ ग्रहण करते हैं पथिक फल, पल्लवों को छोड़ देते,
सुजन द्रुम फिर भी उन्हें, निज गोद में धरना न तजते!
३६ अंगों में आपीत शरद औ, ग्रीष्म विरल शोभा में,
शिशिरागम से दीन कमल-सा, काँप रहा है आनन!
३७ अलकों में बिखरे हैं बादल, आँखों में हैं सावन,
बिछा हुआ मधु-मास प्रिया की कष्टमयी शय्या बन!
३८ गूँज न रे सुनसान विजन में, रो न देख वह दिशा जहाँ
रहती थी मालती मद-छकी, भौंरे अब वह वहाँ कहाँ!

३६ किसी तरह पाऊँगी यदि प्रिय, अकिया काज करूँगी,
नये सकोरे में पानी-सी, नस-नस में प्रविसूँगी!
४० सुख-दुख के हाथों से अविरल मंथित उर का सागर,
छोड़ प्रकट होता जीवन का सुधा-बिन्दु चिर सुन्दर!
४१ नयन पर धरते नयन ही, दृष्टि उस की नमित होती,
बैठते ही भ्रमर के ज्यों, माधवी की कली झुकती!
४२ सुनसान उजाड़ पहाड़ों ने फिर अपना वह सँदेश घोर,
भेजा है मेरे प्राणों को, मैं फिर चलता हूँ उसी ओर!
४३ ऐसी मत हँसी हँसो जो थमती रोकर ही,
ऐसी मत शान्ति वरो, जो मिलती मर कर ही!
४४ नव वसन्त के मृदुल स्पर्श से, पिघली शीत हिमानी,
बहने लगा नील नदियों में हिम से धूमिल पानी!
४५ जब शेष न नभ में वह रहता, धरती है भूल उसे जाती,
रवि-किरणों से क्रीड़ा करतीं, हँस-हँस सरिताएँ मदमाती!
४६ पके धान की बाल सुनहली कानों में कर के धारण,
आई शरद-लक्ष्मी, नभ में मेघों के सज वाहन!
४७ प्रथम ध्यान धरि राम को, पुनि गणेश को आय,
मन इच्छा को पूर्ण कर, दीजो हे जग-राय।
४८ हम डूबत सागर महँ, तुम तौ बैठे पार,
हम जो तुम्हरे पुत्र हैं, जरा उतारो पार।
४९ यह संसार विचित्र है, पावे कोइ नहिं पार;
हम तो कीट पतंग हैं, कैसे पावैं पार!
५० जंगल-जंगल जाय के, मिटी न मन की प्यास,
सारे जग में भ्रमण कर, हुई न पूरी आस!
५१ हे जगदीश दया कर, दिखा मुक्ति का मार्ग,
फिर से आ संसार में, दिखा भक्ति का मार्ग!

५२ प्रकृति-सुन्दरी हास्य में, बनी हुई लवलीन,
अत्याचार हैं हो रहे, सत्य विचारा दीन !
५३ मधुप मनुष्य नहीं कोई, भक्ति-कंज अदृश्य,
आडम्बर है यह वृथा लोप सत्य का दृश्य !
५४ दुराचार हैं हो रहे, निशिचर का है राज्य
तारन वाले कृष्ण हे ! करो देव साम्राज्य !
५५ तुम्हरे बिन अब हे प्रभो ! होती दशा विचित्र,
कृपया फिर से आय कर, दीजौ ज्ञान सचित्र !
५६ धेनु चुगा कर ज्ञान दे, कर दुष्टन को नाश,
गीता ज्ञान दिया बड़ा, करी जुगन को आश !
५७ भारत तो अब डूबता, नय्या नहीं हे कोय,
तुम ही तो अब हे प्रभो, हो हमरे सब कोय !
५८ पार उतारो तो हमें, दे के ज्ञान अमोल,
कर दो हम को फिर जरा, हीरा बड़ा अमोल !
५९ ब्रह्मचर्य का नाश है, है नहिं कोई रीति,
बल पौरुष सब खो चुके, है अब सब को भीति !
६० तुम्हरे बिन अब हे प्रभो ! कोइ न खेवनहार,
सागर तो गंभीर है, नैय्या है मँझधार !
६१ हे प्रभु विनती है यही, देव धरो अवतार,
इस भारत को तो जरा, दे दो पार उतार !
६२ अंश को अपने भेज के, शान्ति महत्व सिखाय,
पार उतारौ विश्व को, मच्छ-कच्छ जग-राय !
६३ व्यर्थ ज्ञान है मेरा, व्यर्थ-व्यर्थ है जीवन !
यदि न हुआ कुछ कार्य तुम्हारा इस से साधन !
६४ ब्राह्मण नहीं, नहीं क्षत्रिय, मैं आज शूद्र हूँ !
मेरी माँ दासी है.

दीन-हीन मैं आज श्वान से अधिक क्षुद्र हूँ!

६५ एक रात देखा मैं ने हिमगिरि के ऊपर,
कालिदास बैठे थे आँखों में आँसू भर!

६६ कैसी शीतलता अहा! अब यहाँ आती हिमाधार से,
हा-हा आकुलता सदा बढ़ रही है दीनता द्वार पै,
प्यारे वीर जनो! मुझे अब सदा को भूल जाओ विदा!
छोड़ो रो कर ही यहाँ कर सकूँगी मैं स्वयं को क्षमा!

६७ आज्ञा मैं ने सकल जिन की प्रेम से क्रोध से दी,
जो मेरी थीं परम सुख में शुद्ध हा लाड़िलाएँ,
वे रानी हो वचन-शर से विद्ध काया करेंगी,
आज्ञा क्या मैं विवश-नत हो हा सहूँगी अभागी!

६८ हे जीवन के सत्य! सृष्टि के सत्य! प्रलय के बालक!
सर्वनाश हे! हे अनंत! हे शेष! जगत के रूप!

६९ जिस पर था गर्व मुझे, उस ने वह छीन लिया,
जिस का था डर मुझ को, उस ने वह साथ किया,
उस दिन से कुछ का कुछ मेरा मन हो गया!

७० काले पानी के बंदी का दुख भी लहरों के जल में,
मिट जाता होगा शशि मुख-सा लहरों के जल में!

७१ बैठ जान्हवी के तट पर कासों के वन में,
देख रहा हूँ मैं मेरे निस्सीम गगन में,
उड़ती स्वच्छ बलाकाएँ करती मृदु कूजन,
और गिर रहे हैं शशि से अमृत के चुम्बन!

७२ जीर्ण जरा के अंग झुक गये पीत हो गया मुख सारा
सब विरक्ति दर्शित करते हैं, मेरा गया सहारा,
उस दूर क्षितिज के कोने से, उठता जीवन अँधियाला,
नभ में बिखेरती माला है कौन निराशिनी बाला?

७३ अपने वन की कलिकाओं को, चुनते की विनय सुन विनत हो,
तुम ने था कहा नयन नत कर, मैं कैसे नहीं कहूँ तुम को,
उर पर धरते ही एक कली, तस्कर कह मुझ को लिए चली,
तुम किस बंदी-गृह में जिस में कितनों की रोनी हैं आहें !

७४ देख तुम हो आज सुन्दर, नव कुसुम ज्यों वृन्त पर,
मर्म से मेरे अचानक दीर्घ रोदन; फूट कर देता विकल मेरे नयन.
प्रार्थना मैं कर रहा हूँ अश्रुओं से,
प्रिय तुम्हारा मुख सदा सुन्दर रहे ! कुसुम ये न कभी झरें,
तुम्हें जो रखते सुखी हैं, कुसुम ये न कभी झरें !

७५ मुझे देख रो नहीं, देख मुख मलीन और भरे हुए ये नयन;
दूर लोक में कहीं कर रहे क्षीणपदों से गमन, रो नहीं! रो नहीं
उड़ेंगे प्राण कहाँ; भले लगे इन्हें कौन कुसुम कानन !
तुम न थी प्राण जहाँ ? आज ही प्राण कहाँ.
छोड़ तुम्हें जीवन, उड़ेंगे प्राण कहाँ ?

७६ स्वर बनो, मेरे हृदय के स्वर बनो ! आ, हृदय के देव गृह में,
तुम पुनीत अमर बनो, स्वर बनो, मेरे हृदय के स्वर बनो !
बीज बन संगीत के मेरे हृदय से, तुम जगत पूरित करो.
नीड़ अपना प्रिय बना मेरे हृदय को तुम मधुर कूजन करो.
तुम विहग सुंदर बनो, स्वर बनो ! मेरे हृदय के स्वर बनो !

७७ नव प्रणय-मय मधु कान्ति दे !
इस रैन के हेमन्त में, इस जगत जीवन अन्त में,
निज प्यार मय नव दृष्टि से लख आज अक्षय शान्ति दे !
इस भग्न लय में लय मिला, आसव अमर जीवन पिला,
क्षण नृत्य कर इस प्राण के संग. आज अक्षय शान्ति दे !

७८ रसमाती यौवन बरसाती प्रेयसि ! नाथ लजाती है !
अवगुंठन को खोल-खोल कर मिलन गीत गाती है,

करुणा घन बरसावो मधुकण, प्रेयसि प्यासी है,
रहे न प्रेयसि, नाथ ! मलिन मन जो अकुलाती है,
रसमाती यौवन बरसाती प्रेयसि नाथ लजाती है !

७९. तुम ने जब मुझ को कुसुम दिये, अधरों पर निश्छल हँसी लिए,
मैं ने उस दिन आँखें भर कर, वे चूम धरे अपने उर पर,
मैं रोता हूँ अब जान यही, निश्छल थी हा वह हँसी नहीं !

८० पीली शरद की धूप में तेरी याद मुझको सता गई,
सुधि उस हँसी की आज पलकों पर पिरो मुक्ता गई,
किस भाँति मरते हैं हृदय यह ओस उड़ के बता गई,
जिस को करती न तुम क्षमा, मुझ से वह कौन खता हुई ?

८१ वह महानता के सूनेपन में उदासिनी,
करुण भाव से रहती चिर यौवना हिमानी,
जिस ऊँचाई पर पेड़ न पल भर रह पाते,
जहाँ नहीं मृगों के स्वर पल भर मँडराते,
कुछ बादल छाया शरीर, अस्थिर उर पर भर,
जी बहलाती है वह सुन्दरता हँस पल भर !

८२ कैसा रूप मधुर प्रिय री !
प्रिय आगमन काल की सुंदर शरद चन्द्रिका री,
छिद्र-छिद्र से प्रकटित होती हँस-हँस आभा री,
वह विभावरी की-सी सुंदर ध्वनिमय ध्वनि-सी री !

८३ क्या ढूँढ़ रही हो रूप प्यार !
सरिता देखो पाथ युक्त, करती तृषितों को तृषा मुक्त,
ये चपल वीचियाँ बन उदार, क्या ढूँढ रही हो रूप प्यार ?
पर रूपसि कितनी हो उदास, कह रही वीचियाँ 'प्यास-प्यास'!
व्यापार यही जग का अपार, क्या ढूँढ़ रही हो रूप प्यार ?

८४ रजनी कितनी मौन सभा !

है आज चन्द्रिका मौन करों को हिला-हिला कर कुछ कहती,
है आज तारकों की परिषद् चुपचाप मौन हो कर सुनती !
है जहाँ मौन तरु, मौन पवन, निस्तब्ध नगर का कोलाहल,
उस मौन सभा में मैं क्या हूँ अनुभव करता ?

८५ गिरि हैं वैसे ही हरे भरे, मैं ही बादल-सा बदल गया !
उजले निर्झर पादप सुंदर, भौंरों से हिलते, गुँजन कर,
बाँहों में जिनके प्रेमी खग तल पर आँखों में मदिरा भर,
बैठे हैं सुंदर नारी औ नर,
वे जैसे थे वैसे ही हैं, मैं ही बादल-सा बदल गया !

८६ अब वह पहले की बात नहीं, वे दिन सुखद वह रात नहीं !
उज्ज्वल रखती थी मुख को जो अब उन हँसियों का साथ नहीं,
लाते थे स्वर्ग धरा पर जो, आँखों में वे मधु प्रात नहीं,
सूने तरु उर में खड़े हुए, वे विहग हरे वे पात नहीं !

८७ आशा हाय ! न कर कल की ! दुर्बल मन कल की !
कौन जानता क्या कर देती देरी पल भर की,
आशा न कर आयु की, बुद्धि, रूप, गुण, बल की,
आशा न कर मरुस्थल के इस चलते छल की,
वही तुम्हारा था अतीत बन कर जो बीता,
वही तुम्हारा घन था बरस हुआ जो रीता !

८८ कितना सुख इन में रहा हुआ, मेरी आँखों को देखो तो !
मेरा उर अब क्या कहता है, इस के स्वर सुनना सीखो तो,
पतझड़ जिन में बस जाता है, जीवित रहते वे तरु कैसे,
मेरी छाया में आ कर के कुछ काल बिताना सीखो तो !

८९ सुनी नहीं क्या तुम ने यह दुखियारी बाणी ?
तुम्हें बुलाती है जो आँखों में भर पानी !
किस मानव का हृदय छोड़ वह बाहर निकली ?

तुम्हें खोजती हुई भुवन में एक अकेली ?

६० मैं ने मधुर मौत देखी, नट खट एक बालिका-सी,
गंगा के सूने तट पर गिनती मिटती हुई लहर !
बना ढेर सित सिकता के, माता की कोमलता से,
निठुर भाव से फिर हँसती, उन्हें पदों से मल देती,
मैं ने सुना कि उसके घर में कोई नहीं बचे;
हुई मूल में वह इस से उस से कोई नहीं रहे !

६१ न जाने कहाँ से कहाँ आ गया हूँ,
अभी कौन था मैं, अभी क्या हुआ हूँ !
कसकती हृदय में हँसी है कि आँसू,
हृदय हर्ष या शोक क्या पा गया हूँ ?
निरादर करूँगा न अब आप अपना,
स्वयं आज अपने को मैं भा गया हूँ !

६२ मैं रहा भरोसे तेरे ही, मणि-सोपानों पर रंक चढ़े !
हारे, जीते, मृत हुए खड़े, वे चिर निराश अब आशा के-
शिशुओं से हँसते हुए बढ़े, मैं रहा भरोसे तेरे ही !

६३ सहन करो हे हृदय !
हुए नहीं वे तीर तुम्हारे शून्य निलय में लय !
अपना ही प्रमाद आया है पास तुम्हारे निर्भय ?
घन झंझा के साथ बरसता आया नयनों का पय !
झनक रहे दारुण गर्जन में करुणा कनक-वलय !
आज हास का कुलिश देख कर फिर उस में क्यों है भय ?

६४ बास अपना बदलने वाले मनोरम प्राण मेरे !
किरण से चंचल, सुरभि से सदा अस्थिर,
मर्म के स्वर में कभी ही गहन सुख में फूटने वाले,
मनोरम प्राण मेरे !

इस हृदय के कमल में बस, स्वर्ग सुख हँस,
ज्योति की कर दीप्त बरसा,
निज परस मन्दाकिनी से नयन-नैय्या कर विकंपित
अचानक बास अपना बदलना मत प्राण मेरे !

६५ गिरि नीले ये चीड़ पत्र फर फरा उड़ रहे;
नभ के सूने कोनें में छवि-जलद छा रहे !
पास-पास सोया अनंग का पेलव शिशु दल,
छितरी छाया है उन पर जलदों की कोमल,
पद पर माता सजल हृदय से गाती लोरीं अविरल,
सरल शान्ति के दूत. कुंज से कुंज जा रहे,
वे जाती सुंदरी प्रिया के प्रणय गीत गा रहे,
गिरि नीले ये चीड़ पत्र फर फरा उड़ रहे !

मंदाकिनी के तीर अपने भौतिक शरीर को छोड़ने वाले इस गंधर्व-किन्नर-कवि ने अपने जीवन काल में सब की उपेक्षा पा कर भी अपने जीवन की सरिता को सूर्य-सा अक्षत रहने दिया; सूर्य-कान्त त्रिपाठी निराला की भाँति आगे बढ़ते रहने वाले इस विराट कवि के साहित्यक की ओर हिन्दी-साहित्य संसार का ध्यान अब जाने लगा है वह समय भी आ ही जावेगा जब निष्पक्ष हृदय कहेंगे हिंदी ने अपने बारह सौ वर्षों के इतिहास में चन्द कुँवर की टक्कर का कोई दूसरा कवि उत्पन्न नहीं किया।

सरल अकृत्रिम जीवन के भव्य चित्र हिन्दी-साहित्य में विरल हैं। राजस्थान और हिमवन्त के कवियों ने ऐसे शोभन सौन्दर्य की उपासना की है। हिमवन्त पुत्र भोलादत्त चन्दोला 'अम्बरीश' (उद्विग्न' 'दत्त' 'एक छुपे') की बेजोड़ बीरा इस प्रकार की एक अपूर्ण किन्तु अति सुन्दर देन है। कविता के सरल आभरणों की तरलता, इस कविता के घरेलू चित्रों की स्नेह-चाँदनी में खिली है। भाषा की लोच अपना नृत्य दिखा रही है। अकुलुष मानवों के हृदय की धारावाहिक नैसर्गिक अभि

व्यक्ति और घनी अनुभूति की स्निग्धता अम्बरीश की अपनी विशेषताएँ हैं। कोई चाहे तो उन्हें वर्डसवर्थ का सामान धर्मा कह सकता है किन्तु वर्डसवर्थ अपने जीवन भर के साहित्य में अम्बरीश की भाँति एक रस नहीं है। अम्बरीश की अनेक कृतियाँ हैं। सभी में उनके भावुक हृदय की अमिट छाप है। बेजोड़ बीरा का बीजारोपण बराली, चलणस्यूँ गढ़वाल में अम्बरीश के हृदय में संभवतः श्री चक्रधर बहुगुणा के सहयोग में हुआ। लिखी वह, शान्तिकुंज (धोधर गाड) पैडुलस्यूँ गढ़वाल में गई।

अंबरीश का जन्म भवानीदत्त जी चन्दोला के घर में २६ अगस्त १६०० ई०=१७ भाद्रपद संवत १६५७ वि० को हुआ था। निधन उन का २४ अगस्त १६३७ ई०=१३ भाद्रपद १६६४ विक्रमीय को हुआ। दोनों ही दिन कृष्णाजन्माष्टमी थी। कवि की शिक्षा-दीक्षा, काशी और लखनऊ में हुई। १६२०-२१ तथा ३०-३१ के स्वदेश आन्दोलन में अपने जीवन को होम से देदे वाले इस कवि की रचनाएँ हिमवन्त-हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

बेजोड़-बीरा

प्रकृति गोद का सरल मोद-सा जीवन, पला हुआ तरु वल्लरियों की छाँह में,
भेड़-बकरी-गाय भैंसों का सरल संग, सुबह-साँझ उन से जीवन तत्री तांत्रत;
महलों की दीवालों में जीवन बंदी नहीं था, नक्षत्रों से भरा गगन-छत्र;
प्रकृति हृदय से वहती जो जीवन-धार, कलरवकारी निर्झरों का जल पेय था;
हीरा हार में, मोती मालाओं में, जीवन-लता, जीवन-गीत, स्नेह-लतिका,
स्नेह-गीता का हुआ नहीं विक्रय था न जीवन-जड़ित न जड़ाऊ जीवन-राग;
कोमल किसलय-श्यामा से मंजुल विपिन एकान्त झरने का कूल अनंत गीत
सुमन सुरभित पवन जल-कण मिलित शीतल, द्रुम-दल झिलमिल
प्रकृति झाँकी पतित पावन; विरंगी फूलों की पाँति कली लड़ियाँ
निमग्न नयनों से प्रेम बरसाती, हार बीनती, हरी दूब की मृदु नथ पहिन,

फूल जड़ी रत्नों का मन-मान हरती; मृगों को सिखाती छौनों से सीखकर,
स्मर सीखते फूलों से गोल गाल पर पल भर मौन भर चितवन कोर डोल कर,
मन भर मोद देती गोद में मन खोल कर;
विरंगे बनों की प्रेम-प्रसूतिका-सी, कुसुम के कर्ण-फूल स्नेह का झूलना,
कली लड़ियों से कुसुमों से सजी माँग बन रानी नृप-रानियों का दर्प दलती;
चोखी थी, अनोखी थी, मानथी न थी सरलता को सरलान सखी तान थी
मद-भरी न मदन-वल्लरी मदमाती न मदन की अनुहार-सी मंगल तान थी;
अछूती-रागिनी-प्रकृति छूती शान थी कृत्रिमता की प्रकृति स्नेह की तान थी
कलानिधि कलिका सरल सुषमा सान थी मोहिनो मन निर्मोहन की बान थी;
गड़रिये का जीवन वह बाला अजान, माता के कठिन-व्रतों का वरदा गान,
उस के रूप से रूप हुआ रूपवान, अबोध थी किन्तु बोध न पाया ज्ञान;
चाँदनी-कला कुंज व्योम में छहरी, द्वादशी-त्रयोदशी की कलाएँ उगीं,
पूनो का भ्रम था पर कण-कण जान कर मन भ्रमने मेंही पा गया निर्वाण था
कुटुज-सी थी वह शिशु केलि कलियों मध्य
गुंथी थी अन्तस्तल में कुसुम सो रहा,
स्वप्न बोल-सी गंध कभी निकल जाती राग-रसिक भ्रमर भीड़ को जुड़ाती थी;
वय-वसन्त आया गर्भ में बीरा के छाया थी पड़ गई बाल-व्यापार में,
विश्व-पथिक कौन गले लगा लतिका को
गृहस्थ कुंज में जीवन आश्रित करेगा !

दूसरा पर्व

दूसरे छोर बन में दूसरा रहता एक गड़रिया था, उस का था एक लाल,
बुढ़ापे की लाठी, जवानी का मन था माता की कोख का लाल था,
लाठी के घोड़े दौड़ाने वह लगा, निरंकुश आशाओं के मत्त मातंग बन,
मन में दंपति के चिंघाड़ने लगे, अष्टमी का चाँद, पूनो का पर ज्वार;
भेड़ों से खेलता वह प्यारा सपूत, मेढ़ों को मारता, दंपति का वह माल,
माल कहलाने लगा, नहीं पड़ोस में जोड़ बच्चा 'बेजोड़' की आन बज गई;

माँ के साथ झरने से पानी लाता खेलता था ताल की मछलियों से वह,
पत्थरों को मारता उन पर, हिलाता ताल को, तरंगी वृत्तों से मोद पाता !
डौंरू बजा कर गीत गाता, नाचता, भीम आता, माटी खोद-खोद खाता,
केशरी का मान भरता हुँकार से, कँपाती, शत्रु को वह वज्र आघात-सी,
ग्वाल बालों का था जंगली अखाड़ा,
हरी-भरी दूब मखमलों का मान थी हरती;
विषम विपिन मन माना तरु जाल, नरेशी उपवन निगम बन से जोड़ क्या ?
देखो, राम-लीला का समा बंध गया, कपास की दाढ़ियों से मुनि बन गये,
आसुरी कुकृत्य होने लग गया वहाँ, डालियाँ झट तोड़ कर, बानर बन गये;
ताल बेताला जगली बजने लगा, बिना राग. राग की तान तनने लगी,
पेट का विचित्र तबला तमकने लगा, हुँकार-किलकार मारू बजने लगा;
हनूमान प्रचंड बलवान वरिबंड की, पवनपूत की आँधी अंधेर छाई,
बेजड़ धाया, खेत खाली हो गया, युद्ध की माटी उड़ी पौन भँवरों में;
रण घनघोर घमंडी दानव मिट गये, बन-भूमि में विजयी राम की छा गई-
मोद-दा, कान्ति-दा, शरद-प्रभा, मनोहर था त्रेता नायक का दर्शन !

तीसरा पर्व

गर्भ कान्ति-सी अरुणी लालिमा अपार, नभ के प्राची छोर में,
जलद कोर में छा गई हेम के हरे भरे कोष में
जलद अन्तस्तल में स्वर्ण-कली ऊषा; प्रकृति ने कृतियाँ बदलीं,
सिधाई ऊषा, पावन-यान, जागृति पताका, कर-माला,
निशि-श्री पलोटती ऊषा-पद; कलेवर बलवती मौत का त्याग देती है-श्री;
विष से वेहोश पशु ज्यों मुख से उस के फेन बहता है; सँभालने का न होश,
ऐसे भी प्रभात का चाँद, औंधे मुख फेन-सी चाँदनी जिस से टपकती है;
कौमुदी हो निशानाथ के गले लगी, नींद बनकर नैनों को जो लग गई ;
स्वप्न-प्रिया हो के जो अलख जग गई,
स्वप्न-केशी निशा अन्त, ऊषा आ गई !

पूर्णिमा-पद-तल ज्यों जलधि-ज्वार-माला केलि करती,
त्यों ही ललाम ऊषा के सुवर्ण पदों पर है अपार कोलाहल
सु-विशाल विश्व का खेलता लोट-लोट;
निर्झर निकूजित निकुंज खग कूजित थे,
कुटीर गोवत्स की ध्वनि से प्रति ध्वनित,
बीरा की पर्ण-कुटी की छत से उतर, सुम-बीरा छवि पर ऊषा स्वप्न बनी;
मनोरथ में प्राप्ति सुमन में शान्ति इष्ट रसिकता काव्य की जागृति ज्यों सुहावै,
बीरा के सोने पर ऊषा उन्मेष सुहाता है, मृत्यु में अमरत्व मानों;
जाग उठी बीरा, माता ने बुलाया, मैं दूध दूहती हूँ, बछड़ा थाम लो;
चपल बछड़ा थाम लिया धरि-धरि मन में आई आज गो चराने चलूँ !
माँ ने मुदित मन बीरा को सजा दिया,
चादर उढ़ा दी, लाठी लिवा ली ललित,
चली बीरा ग्वालिन प्रफुल्ल मन हो कर,
स्वास ज्यों बाँसुरी में बजने के लिए;
किशोर बसन्त लतिकाएँ फूली हुईं प्यारे कुसुम कुंज नीको धूप-छाँह थी,
सौरभीली समीरण नवोन्मेषिता कलियाँ,
बीरा, रितु-ठाठों में नव-रागिनी-सी !

चौथा पर्व

चरती श्यामा निर्झर तीर कुंज बीच चादर बिछा कर भरती थी सुमन,
चुन-चुन कर कन रंगे कुसुम लेकर, बीरा, मालिकाएँ मनोहर बीनती;
बीनी मालिका, पुचकारा श्यामा को, मेली मालाएँ सींगों पर गले में,
निष्काम ग्रंथियों बीच गुँथी विपिन-श्री सौरभीली झूलती सुरभी अंग में;
पूँछ गुच्छा जटित फूल के गुच्छों से कटि माला मेलित, गात प्रमुदित
कम्पन अंग-अंग श्यामा के भ्रांत भीत भ्रमर,
उगहती विपिन बीच, बन-श्री वर सुरभी;
हरी दूब की कुसुमीलीं मनोहर नथ जूड़े में बन फूलों का सुहाग फूल,

जाई-चमेली सुमना से सजा भाल, रंग-भरा फुन्दना, फूलों का गुच्छा;
दूब की चूड़ियाँ कुसुम से जड़ी हुई, कंज कर की कलई में झलकती मृदुल,
कनिष्ठ पर मुद्रिका बन मालिका की सुहावनी सोहती थी मंजुल कोमल;
कल-कंठ-सोहता कठा कोपलों का, कसुम-कलियाँ से रची बालियाँ नूपुर,
प्रियांगुलियों में मुद्रित लता श्री ललित विशद बन-माला झूलती थी
हृदय पर; बन बन बनदेवी मुदित गाय चराती,
संगिनी स्वीय अंग विरचित कुसुम कुंज, मादक मदन-मथन करता
जहाँ प्रिय मन जगाता था रमणीक यौवन स्वप्न को;

पाँचवाँ पर्व

दुपहरी सिधाई श्यामा झरने तीर जल क्रीड़ा-रत ग्वालों का वहाँ विनोद,
तैर-तैर नहाना, अंजुलि बरसाना तृत गाय, बीरा प्रथम कौतुक प्यासी;
सहसा दलबंदी, एक, घेरा सब ने, जल अंजुलियाँ बरसाते सभी उस पर,
अट्टहासों से गूँजा निर्मल नाला, देखती थी बीरा अचंचल चाव से;
एक का हाथ पकड़ा; दूसरे का पाँव, तीसरे की गरदन गही बेजोड़ ने,
गहरी जल-राशि में ढकेला, डुबाया, हाथ जोड़े सभी ने छुटकारा मिला;
घर को तैयार बेजोड़, भैंसे पर चढ़े, यम-दूत ज्यों भीति हरने के लिए,
कहा बेजोड़ ने फूल तोड़ो भाई, पूजा बालरण देवता की है घर-पर;
घर लौटे वे. माताओं के प्रिय लाल, गुणावली-गूँजें, बेजोड़ की घर-घर,
चूम माँ ने दिये मंजु मानस-मोती, उल्लसित आँसू, आशीश की रागिनी;
बेटा ! दूध दही छाँछ खीर स्वादु घी, बुलावो साथियों को बालरण पूजने,
बिन्दा भैंस ब्याहने का सरस उत्सव मनाओ
कि न दाग लगै, दूध भी बढ़ै;
चले ग्वाल बाल बट तले बालरण पास 'मान मेरे देवता, मलाई खा ले,
गाय-भैंस पियावैं, दूध खूब देवैं, उत्सव होवैं, हम-तुम खावैं-खिलावैं;
परोसे पकवान देवता के आगे, 'जय बालरण की !' कह के प्रिय फूल डाले;
प्रेम से खाने लगा ग्वाल-बाल यूथ, नित गाय-भैंस बियावैं बालरण पूजै;

उधर सुहाग-स्वप्नों से सजी सिधाई,
बीरा कुसुमाकर कुसुमों की रति प्रिया,
अनृत नैनो से निहारी माँ ने छवि, विनोद भीनी लाड़ली भव्य-रागिनी !
"माँ ! देखा मैं ने ग्वालों का खेलना,
एक बड़ा बलवान सब मिल हारे उसे,
सुडौल सुन्दर ग्वालों का वह सरदार, माँ चाहती हूँ तू देख लेती उसे !"
"बेटी ! फूलों का बोझा लाद लाई ?"
"बाबा ! बन में खिले हैं इन से सुन्दर !
श्यामा चरती, चूनती थी इन को, इन से गहने बनाये मैं ने देखो !"
कुंज-कुटीरों में जहाँ कान्त विपिन में प्रति पल
सुरभि सुमन उल्लसित समाई,
प्रकृति प्रेरक पवन ध्यान, निर्झर गायक,
कुंज निर्झर बीच सुहाग-स्वप्न-चित्रण !

छठा पर्व

ग्वालों की सरल गोष्ठी गहन विपिन में,
लोहित किरणें किरण-माली की प्यारी,
पुलकित पवन प्यारी बासन्ती गान को
चन्द्रांगना-स्वागत-सजी शिखर-माला,
'भाई अँयार पूजा कल को करेंगे' कहा बेजोड़ ने कैसी राय भैय्या ?'
'समुचित, सुन्दर !' कह के नाचते ग्वाले,
'कल हम सब बन में बनावेंगे खिचड़ी',
गाय-भैंस भेड़-बकरी ले के ग्वाले, चन्द्रादित्य योगिनी संध्या के गले,
पहिराते विनोद भीनी सरस माला, मातृ-नैन-तारे गमन निज गेह को;
प्रति आँगन गो वत्सों का प्रेमोल्लास,
लालों की पाँति मातृ-हृदय की वीणा;
पतियों ने अर्पण किए दूध मुँहे बाल, गोद ले ले माताएँ स्तन पिलाती;

नव वधुओं का सरस नवार्णव, उत्सुक पति नैन मीन जप रत,
नूपुर नाद नीराजित हृदय, नाज़ कल्लोलित रूप-मानस;
रूप-रेखाओं पर गुँथी थी भव्य वर्ण-माला शिशुओं की,
शैशवी के अन्तस्तल में कविता खेलती काव्य-रस से,
दिशा-दिशाओं के जीवन को धरने प्रसवने जो बेलियाँ
लगाई-कुमार-मानसों में जीवन-कुसुम-प्रसू विलोकने;
लहराती कुसुम लताएँ नव जोवन ज्योति नीराजने,
जीवन-प्रयोगों के पुण्य-फल, सफल स्वीय सुकृत विलोकन;
शिशु सुरभि सकुल गृहस्थ कुंज, सुवासित वधाई विरुदावली,
गाते बजाते औजी मधुर, ध्वनित सफल मनोरथ दिशाएँ;
चिर-सेवक सेवा के मेवा माँगते मनोरथ सेव्य मान,
भव्य भावी जाग्रत दिशा से मातृ-मंदिर पालक से सफल;

सातवाँ पर्व

सरल ढालू तरु-लताधर शैल-माला,
वक्ष स्थल पर कल-कल कलरव कार निर्झर
पद-पद लाई को फूली क्यारियाँ विविध लतिका दारु वेष्टित नीका गाँव;
ज्योत्स्ना जाई-जात समीरण केलियाँ छिछोरी केली किशोर बेटी-बेटे !

हिमवन्त-पुत्रों की असीम-सौन्दर्य सृष्टि, चन्द्रकुँवर और अंवरीश की रचनाओं में ही समाप्त नहीं हो जाती। उस स्वर्ग भूमि ने अनेक तपस्वी प्रकृत कवियों को उत्पन्न किया है। उन सब के साहित्य के दर्शन तभी संभव हो सकते हैं जब कि हिन्दी-संसार अपनी अहमन्यता, कुटिलता तथा 'तेरा कवि' मेरा कवि' की सकीर्णता को छोड़, महत्वाकांक्षाओं के विषैले सर्पों से छुटकारा पा, सत्य निष्ठा के साथ, साहित्य की खोज में लगे और प्रयत्न शीलों के द्वारा प्रस्तुत किये गए साहित्य को उन्मुक्त हृदय से अपनावे।

५ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

आधुनिक युग के हिन्दी कवियों में सूर्य और चन्द्र की भाँति चमकने वाली प्रतिभा यदि किसी के जीवन से साहित्य में शिव शक्ति की सत्य सुन्दरता बनी है तो वे दो दिव्य विभूतियाँ हैं निराला और चन्द्र कुँवर। हिन्दी संसार ने इन्हीं की सब से अधिक उपेक्षा की है। इन दोनों का कुछ समय तक साहचर्य भी रहा है। १६३६-४२ के बीच निराला जी और चन्द्र कुँवर, लखनऊ में एक दूसरे के घने संपर्क में रहे। उस के पश्चात् परिस्थितियों ने बिछुड़ा दिया। अस्वस्थ होने के कारण चन्द्रकुँवर, हिमवन्त की ओर चले गये। निराला जी भी उन दिनों अस्वस्थ थे। यातनाओं के बीच उन का जीवन चल रहा था। एक दिन चन्द्रँकुवर ने उन्हें पत्र रूप में मृत्युञ्जय कविता भेजी जो उन के अपने जीवन और निराला जी के जीवन काव्य की उच्चतम व्याख्या है।

मृत्युंजय

सहो अमर कवि! अत्याचार सहो जीवन के,
सहो धरा के कंटक, निष्ठुर वज्र गगन के!
कुपित देवता हैं तुम पर हे कवि, गा-गा कर
क्यों कि अमर करते तुम दुख-सुख मर्त्य भुवन के;
कुपित दास हैं तुम पर, क्यों कि न तुम ने अपना-
शीश झुकाया, तुम ने राग मुक्ति का गाया;
छंदों और प्रथाओं के निर्बल बंधन में,
किसी भाँति भी बँध न सकी ऊँचे शैलों से
गरज-गरज आती हुई तुम्हारे निर्मल

और स्वच्छ गीतों की वज्र-हास-सी काया !
निर्धनता को सहो, तुम्हारी यह निर्धनता
एक मात्र निधि होगी, कभी देश-जीवन की !
अश्रु बहाओ, छिपी तुम्हारे अश्रु कणों में,
एक अमर वह शक्ति, न जिस को मंद करेगी,
मलिन पतन से भरी रात सुनसान मरण की !
अंजलियाँ भर-भर सहर्ष पीवो जीवन का
तीक्ष्ण हलाहल, और न भूलो सुधा सात्विकी,
पीने में विष-सी लगती है, किन्तु पान कर
मृत्युंजय कर देती है मानव जीवन को !

श्री सुमित्रानन्दन पंत और श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी ने भी निराला विषयक कविताएँ प्रकाशित करवाईं। पंत जी को तो निराला जी ने अपने एक पत्र में स्पष्ट लिख दिया था—मेरे विषय में कुछ न लिखा करें। पता नहीं दिसम्बर १६३५ के 'नया साहित्य' में छपी माखनलाल जी की 'निराला' शीर्षक कविता का प्रभाव निराला जी पर क्या पड़ा ! चन्द्रकुँवर को उन्हों ने बिहार से लौटने पर जो उत्तर भेजा था वह उन के विराट हृदय की प्रतिमा है।

भूसामंडी, हाथीखाना, लखनऊ,
३०—३—४२

प्रिय श्री चन्द्रकुँवर जी,

मैं बिहार गया था, अस्वस्थ लौटा। आप के प्रिय पत्र का समय पर उत्तर नहीं जा सका। मेरे लिये चिन्ता न करें। मैं इसी तरह मज़े में रहता हूँ। आप जल्द स्वस्थ हो जायँ यही हमारे स्वास्थ्य का मुख्य कारण होगा। अपने समाचार अवश्य दें आर्थिक अधिक असुविधा हो तो सूचित करने से संकोच न करें। मेरी दो पुस्तिकाएँ छप रहीं हैं। निकल जाने पर आप के पास भेजूँगा। आप की आकांक्षाएँ अवश्य

पूर्ण होंगे। चित्त शान्ति रखें। मेरे सौकर्य का आप के साथ पूरा सहयोग है। यहाँ इस समय अन्न की महगी बढ़ी है। समय अच्छा है। आकाश साफ रहता है, सर्दी गर्मी दुखदायक नहीं, लिखने पढ़ने के अनकूल हैं। कागज-कलम वाला व्यवसाय बहुत मंद है। लोग एक भयानक परिवर्तन की ओर जैसे, त्रास से देख रहे हों। आशा है, आप के समाचार जल्द मिलेंगे।

सस्नेह

सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला।

चन्द्र कुँवर को आश्वासन १९३६ से १९५० के बीच के देने वाले निराला ने स्वयं भी जीवन का कटु गरल पिया है; उन के गीत इस के साथी हैं:—

१ स्नेह-निर्झर बह गया है रेत ज्यों तन रह गया है!
आम की यह डाल जो सूखी दिखी कह रहीहै अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते पंक्ति मैं हूँ वह लिखी, नहीं जिस का अर्थ, जीवन ढह गया है,
दिये हैं मैंने जगत को फूल फल किया है अपनी प्रभा से चकित चल,
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल, ठाट जीवनका वही जो ढह गया है
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा, श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा,
बह रही है हृदय पर केवल अमा, मैं अलक्षित हूँ यही कवि कहगया है!
२ गहन है यह अंध कारा; स्वार्थ के अवगुंठनों से हुआ है लुंठन हमारा,
खड़ी है दीवार जड़ की घेर कर, बोलते हैं लोग ज्यो मुँह फेर कर,
इस गगन में नहीं दिनकर, नहीं शशधर नहीं तारा!
कल्पना का ही अपार समुद्र यह, गरजता है घेर कर तनु रुद्र यह,
कुछ नहीं आता समझ में, कहाँ है श्यामल किनारा!
प्रिय मुझे वह चेतना दो देह की याद जिस से रहे बंचित गेह की,
खोजता फिरता न पाता हुआ, मेरा हृदय-हारा!
३ मरण को जिस ने बरा है, उसी ने जीवन भरा है,

धरा भी उस की, उसी के अंक सत्य यशोधरा है;
सुकृत के जल से विसिंचित, कल्प किंचित विश्व उपवन
उसी की निस्तन्द्र चितवन चयन करने को हरा है;
गिरि पताका उपत्यका पर, हरित तृण से घिरी तन्वी;
जो खड़ी है वह उसी की पुण्य-भरणा अप्सरा है;
जब हुआ वंचित जगत में, स्नेह से आमर्ष के क्षण,
स्पर्श देती है किरण जो, उसी की कोमल करा है।
४ मैं अकेला, देखता हूँ; आ रही है मेरे दिवस की सांध्य बेला,
पके आधे बाल मेरे, हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती आ रही, हट रहा मेला,
जानता हूँ, नदी झरने, जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख, कोई नहीं भेला !
५ नूपुर के सुर मंद रहे चरण जब न स्वच्छन्द रहे,
उतरी नभ से निर्मल राका, तुम ने जब पहले हँस ताका,
बहु विधि-प्राणों को झंकृत कर बजे छंद जो बंद रहे,
नयनों के ही साथ फिरे वे मेरे घेरे नहीं घिरे वे,
तुम से चल तुम में ही पहुँचे, जितने रस आनंद रहे !
६ भाव जो छलके पदों पर, न हों हलके, न हों नश्वर,
चित्त चिर निर्मल करे वह, देह मन शीतल करे वह,
ताप सब मेरे हरे वह, नहा आई जो सरोवर,
गंध वह हे धूप मेरी, हो तुम्हारी प्रिय चितेरी,
आरती की सहज फेरी, रवि, न कम कर दे कहीं कर !
७ प्राण-धन को स्मरण करते, नयन झरते, नयन झरते,
स्नेह ओत प्रोत, सिन्धु दूर, शशि प्रभा दृग
अश्रु ज्योत्स्ना-स्रोत, मेघ-माला सजल नयना,
सुहृद उपवन पर उतरते; दुख योग, धरा—

विकल होती जब दिवस-वश, हीन ताप करा,
गगन-नयनों से शिशिर भर, प्रेयसी के अधर भरते !
८ दुरित दूर करो नाथ, अशरण हूँ गहो हाथ,
हार गया जीवन-रण छोड़ गये साथी जन,
एकाकी नैश-क्षण कंटक-पथ विगत पाथ;
देखा है, प्रात किरण, फूटी है मनो रमण,
कहा, तुम्ही हो अशरण-शरण, एक तुम्ही साथ;
जब तक शत मोह जाल, घेरे रहे हैं कराल,
जीवन के विपुल व्याल, मुक्त करो विश्व नाथ !
९ लगी लगन, जगे नयन; हटे दोष, छुटा अयन;
दुर्मिल जो कुछ उर्मिल, मिल-मिल कर हुआ अखिल,
धुल-धुल कर कुल पंकिल, घुला एक रस अशयन।
छूटे सभी विषय बन्ध, विषमय वासना-अन्ध;
संशय की गई गंध, शय-निश्चय किया चयन,
कामना विलीन हुई, सभी अर्थ क्षीण हुई
उद्धत शिति दीन हुई, दिखा नवल विश्व-वयन !

गहन शोक-सागरों के तिमिर तल में डूबे निराला जी के हृदय में हँसते इन उज्ज्वल मोतियों का कुछ साम्य है तो तिमिर-ज्योति-कमल चन्द्र कुँवर के शुभ्र हिम से उज्ज्वल शोक गीतों से—

विस्मरण

चिन्ता-विहीन गिरि-शिखरों पर स्वर्ग के स्वप्न आँखों में भर,
ओ विहग ! आज अपना गाना, मैं भूल गया हूँ भूल गया !
आनन्द नहीं, उल्लास नहीं, प्राणों में मंद सुवास नहीं,
प्रिय सुमन, शिशु सदृश मुस्काना, मैं भूल गया हूँ भूल गया !
उर में माया ममता न रही, आशा की डोरी टूट गई,
अब दूर देश से घर आना, मैं भूल गया हूँ भूल गया !

एक स्वर

मैं ने चाहा जब पुलकित हो यौवन के गीतों को गाना,
तब कहा एक स्वर ने—"यौवन खो चुके, तुम्हें पर लाज नहीं !"
सौन्दर्य देख, मैं ने हँस कर जब चाहा उस को अपनाना,
तब कहा उसी स्वर ने, "मिलता पापी को सुख का साज नहीं !"
"जो जीवित हैं वे पियें सुधा," यह सुन मैं भी जब चला हाय !
तब कहा उसी स्वर ने, "तुम तो जीवित भी आज नहीं।"

चिन्ता-निद्रा

जब जल उठती प्राणों में चिन्ता की ज्वाला,
उड़ जाती आँखों से तब निद्रा की चिड़िया,
होता भस्म मांस, हो जातीं भस्म हड्डियाँ,
और रात्रि भर चलती रहती है यही क्रिया,
आ-आ कर विचित्र छाँहें उर के भीतर से,
क्षीण प्रभा में करने लगती भीषण नर्तन,
स्तब्ध हृदय बन जाता, विस्फारित हो आँखें,
एक दृष्ट हो देखा करतीं यह परिवर्तन ;
और नींद जो अपने पंखों की छाया से,
कर सकती उपशमित ज्वलित चिन्ता की लौ को,
वह न पास आती, चुपचाप देखती रहती,
हाय-हाय करते दिल को अनजान सदृश हो !
कभी बैठती पलकों पर, पर पलकें ज्यों ही,
उसे मूँद लेने की चेष्टा करने लगतीं,
उड़ जाती वह, सारी रात बीतती यों ही;
और सुबह आँखें कटते आँसू ले जगतीं !

बहुत है

एक पल दुख भूल सुख से हँस दिये,

बहुत है हे नाथ ! इतना ही बहुत है !
एक दिन दुख भूल सुख से जी लिये,
बहुत है हे नाथ ! इतना ही बहुत है !
दूसरों को हँसाओ, पुलकित करो,
दूसरों को सुयश से, सुख से भरो,
दूसरों को स्थान दो निज हृदय पर,
मुझे पद पर धरो, इतना ही बहुत है !

मालिक

मालिक ! मुझे खुश रख हमेशा, चैन से रख, सदा खुश रख,
मुझे अपनी छाँह से निश्शङ्क, हे पावन पावन पुरुष रख,
कर मुक्त चिर दुर्भाग्य से संयुक्त कर सौभाग्य से,
देह मेरी निरुज रख तू, हृदय मेरा निष्कलुष रख
जो भी कभी संकट घिरें, वे बरस जल्दी बीत जाएँ,
शुभ सभी क्षण हों, न कोई शोक का संदेश लाएँ,
रहूँ मैं सुख से सदा, आवे निकट मेरे न बिपदा,
बुद्धि दे ऐसी कि जिस से दुख, सुखों की तरह भाएँ !
मैं तुझे भूलूं न चाहे शोक जितना गाढ़ तर हो,
मैं न छोड़ूँ आश कटु नैराश्य कितना ही प्रखर हो,
और लेटूं मृत्यु पथ पर जब कि मैं ले प्राण जर्जर,
तब, प्रभो ! मस्तिष्क पर मेरे, तुम्हारा सुखद कर हो !

मैं हार गया

मैं हार गया, जीवन की बाजी में अपना सर्वस्व लगा कर हार गया,
झोली को फैला माँग रहा हूँ, आज विश्व के पास दया !
मेरी अभिलाषें, आशाएँ, सब शुष्क धूल में बिखर गईं,
क्या कोई उनको दे सकता, फिर से जीवन का रूप नया ?
मैं खोज रहा हूँ वह झरना, जो अपना हँसना भूल गया,

मैं खोज रहा हूँ वह सुख जो मिट कर प्राणों का शूल हुआ !
मैं खोज रहा हूँ उस छवि को जो हुई तिरोहित आँखों से,
मैं खोज रहा हूँ वह विधि जो दक्षिण हो चिर प्रतिकूल हुआ,
आती है नींद मुझे, पर अब जग में सोने को स्थान नहीं,
निश्चिन्त नहीं यह हृदय हाय ! ओठों में सुख का गान नहीं
क्यों दोष विश्व को दूं यदि वह करता है तिरस्कार मेरा,
मेरी ही आँखों में मेरे प्राणों का कुछ सम्मान नहीं !

गुंजन ला

तेरा मन मेरा हो जाए. मेरा मन तेरा हो जाए,
मैं तेरे मन की बात सुनूँ, तू मेरे मन की सुन पाये,
खो जायँ दुखों के अंधड़ में जब हम विपरीत दिशाओं में,
मैं तुझे ढूँढता लौटूँ तब, तू मुझे ढूँढती फिर आए !
मेरी अपूर्णता का तेरी मंगलमय शोभा पूर्ण करे,
मेरे जीवन का घट तेरी आँखों की निर्मल कान्ति भरे,
मेरी चाहों के सागर पर, तू मौन चाँदनी बन फैले,
मेरी आशा के हिमगिरि पर तू सूर्य्य किरण बन बिखरे !
मैं राह देखता हूँ तेरी, मुझ को शुचि आ कर तू कर जा,
जीवन की सूनी डाली को, तू नूतन शोभा से भर जा !
कोंपल ला ! हरी पत्तियाँ ला, कोमल कोमल पाँखों को ला,
गुंजन ला, मेरे जीवन में, ओ सुरभित साँसों वाली आ !

इस देश में प्रतिभा का ऐसा ही अन्त है क्योंकि यह भारत है पृथ्वी का सतरहवाँ नरक । पन्द्रहवें और सोलहवें नरकों में हिन्दी-साहित्य और हिन्दू-समाज की गिनती होती है । अनेक साहित्यिकों की भाँति ही चन्दकुँवर और निराला की व्यथा इन तोन नरकों में जन्म लेने से हो बढ़ी है, हँसी और रोई है ।

निराला जी की ये कविताएँ उन के जीवन की पर्याप्त व्याख्या हैं । ये

ही समुचित रूप से महादेवी जी वर्मा की अपरा विजयक 'अपनी बात' की सत्यता की गवाही दे रही हैं।

अपनी बात

"कवि श्री निराला उस छाया युग के कृती हैं। जिस ने जीवन में उमड़ते हुए विद्रोही को संगीत का स्वर और भाव का मुक्त-सूक्ष्म आकाश दिया वे ऐसे युग का भी प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जो उस विद्रोह का परिचय कठोर धरती पर विषम कंठ में ही चाहता है।

उन की आत्मा नई दिशा खोजने के लिए सदा से विकल रही है और यह खोज तीन दशक पार कर चुकी है। अतः यदि उन की रचनाओं में रंग-रेखाओं का समविषम मेला मिले तो आश्चर्य नहीं। एक ओर उन का दर्शन उन रहस्यमय सूक्ष्म तत्वों का साथ नहीं छोड़ना चाहता जो युग-युगों के अर्जित अनुभूति वैभव हैं और दूसरी ओर उन की पार्थिवता धरती के उस गुरुत्व से बँधी हुई है जो आज की पहली आवश्यकता है। एक ओर उन की सांस्कृतिक दृष्टि पुरातन की प्रत्येक रेखा में उजले रंग भरती है और दूसरी ओर उन की आधुनिकता व्यंग की ज्वाला में तपा-तपा कर सब रंग उड़ाती रहती है। कोमल मधुर गीतों की वंशी से ओज के शंख तक उन की स्वर साधना का उतार चढ़ाव है।

उन का अनुकरण किसी के लिये सुकर नहीं रहा इसी से उन के स्वर को अनेक प्रतिध्वनियों का जाल नहीं घेर सका। उन का व्यक्तित्व अव्यवस्था में दुर्बोध है इसी से आलोचक अपने अनुमानों के विरामों से उसे नहीं बाँध सके। वे अकेले और उन का स्वर अकेला है। जैसे आँधी बिना दिशा का नाम बताए ही हमें अपने साथ उड़ा ले चलती है। भूकम्प बिना कारण का परिचय दिए हुए ही हमारे पैरों को कंपित कर देता है। वैसे ही उनका परिचित काव्य भी एक अपरिचित उद्दाम वेग से हमें स्पर्श करता है। चिर परिचित पर सधे हुए हमारे पैरों को क्षण भर से अपनी उग्र गति से घेर लेना फिर निश्चित लक्ष्य पर जमी हमारी

दृष्टि को पल भर के लिए अपनी दिशा में फेर लेना ही उस का हम से परिचय है, और काव्य का जीवन से यही परिचय अपेक्षित भी है।

उन्हों ने अनेक आघात सहे हैं जो उन के संवेदन शील व्यक्तित्व पर अमिट चिन्ह छोड़ गये हैं। यदि इन चिन्हों को हम उनके संघर्ष का प्रमाण मानें तो उन की आत्मा के सहजात संस्कार समझ लेना तथा उन के काव्य की भाव-भूमि और उस की मूल गत प्रेरणा तक पहुँच जाना सहज हो जायगा।

आज का युग साहित्यकार के लिये दो धारा वाली असि बन गया है—यदि वह विषम परिस्थितियों से समझौता कर के जीवन की सुविधायें प्राप्त कर लेता है तो उस का साहित्य मर जाता है और यदि वह ऐसी संधि को स्वीकृति नहीं देता तो उस का जीवन कठिन हो जाता है। कवि निराला ने अपने अदम्य विद्रोह की छाया में एक को बना लिया है, दूसरे को सुरक्षित रखने का प्रश्न उन से अधिक उनके सहयोगियों से संबंध रखता है।"

चन्द्रकुँवर तथा निराला जी के कवि जीवन के अनुभव तथा पत्र भी आज के युग की दुधारी तलवार की मार से घायल हुए इन कवियों के शिवत्व को सम्मुख लाते हैं।

हिन्दी-भाषा और जीवन-दर्शन, दोनों में ही निराला (जन्म माघ ११ शुक्ल १९५३ वि= १८९६ ई०) की प्रखर ओजस्विता के सम्मुख निर्वीर्य पन्त का स्त्रैण्य काव्य कुम्हला जाता है। पतझड़ की आँधी में 'पल्लव' झर ही जाते हैं। किसी पतझड़ की प्रभात-वेला में निराला और पन्त, एक साथ लखनऊ की ए० पी० सेन रोड पर टहलते हुए निकल जाते हैं; सामने पतझड़ के विशीर्ण वृक्ष पर एक पक्षी का घोसला, उदय होते हुए रवि की किरणों में भीगी ओस से चमकता नज़र आता है। पन्त, क्षण भर स्तब्ध रह कह उठते हैं, 'निराला जी कितना सुंदर दृश्य है!' निराला उत्तर देते हैं, "हाँ अब ही तो मालूम पड़ता है किस

चिड़िया ने कहाँ घोंसला बनाया है।" जीवन-दर्शन का यह अन्तर, पन्त और निराला के काव्य का अन्तर है।

लखनऊ कांग्रेस (१९३६ ई०) में कवि सम्मेलन के उद्घाटन में भाषण देते समय गाँधी जी कह बैठते हैं —"हिन्दी के कवियों और लेखकों को दरबारी हिन्दी छोड़ देनी चाहिये।" अवसर मिलने पर निराला जी पूछते हैं—'हिंदी तो तपस्वियों, साधु-सन्यासियों की भाषा रही है। उसे राज्य का आश्रय मिला ही कब जो आप उसे दरबारी कहते हैं ?' गाँधी कुछ गम्भीर रूप में पूछते हैं, "आप चाहते क्या हैं ? सार्टीफिकेट ?" निराला का अदम्य आत्म अभिमान गरज उठता है--'कहिये तो मैं ही न आप को राजनीति का सर्टिफिकेट दे दूं ?" परीक्षा में खरे उतरे निराला को देख गाँधी मंद मुस्कान में कहते है—'नहीं नहीं वैसे तो मैं भी अपने को हिंदी का एक छोटा-सा कवि समझता हूँ।" निराला भी रुद्र से शिव मुद्रा में आ शान्त भाव से अभिनन्दन करते हैं–' यही तो आप भूल करते हैं, आप कवि नहीं स्वयं कविता हैं।"

हेवेट रोड पर निराला, चन्द्रकुंवर और शम्भु प्रसाद बहुगुणा चले जा रहे हैं। कोई सरकारी अफसर जो दूर खड़े हुए किसी से बातें कर रहे थे निराला जी को पुकारते हुए, कहते हैं निराला जी जरा इधर तो आइये।' निराला उधर देखते हैं और फिर अपनी ही दिशा में आगे बढ़ने लगते हैं। वे साहब कुछ भारी शासन स्वर में फिर बुलाते हैं—निराला अब की भो शेर की सो अग्नि वर्षक दृष्टि से उधर देखते हैं और फिर अपनी ही दिशा में बढ़ते हुए पूछते हैं—'कुछ समझे ?' 'जी कुछ न कुछ तो समझे ही हैं।' निराला बोलने लगे ! "कोई प्रेम से बुलावे तो निराला सर के बल जावेगा। इनके स्वर में साहबियत की बू थी। निराला ऐसे न झुकेगा।" और देखा वे साहब स्वयं ही चले आ रहे हैं।

कान्यकुब्ज कौलेज लखनऊ में तुलसी जयन्ती के अवसर पर निराला

जी बतलाते थे 'सीता ही कुंडलिनी शक्ति हैं।' सभा के सभापति राव राजा श्यामबिहारी मिश्र कह पड़े—'निराला जी हम तो मूसल को मूसल और ओखली को ओखली ही कहेंगे!' निराला जी ने तपाक से उत्तर दिया 'हम भी यही कहते हैं साहब मूसल को मूसल कहिये और ओखली को ओखली।' राव राजा बिगड़ पड़े, 'निराला जी, हमने भी साहित्य-सेवा की है, धूप में ही बाल नहीं सुखाये हैं। निराला ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं साहब आप ने बी०ए० किया, एम०ए० किया, डिप्टी गिरी की, दीवान हुये, राव हुये, राजा हुये और साहित्य-सेवा भी की! राव राजा के पास कोई उत्तर न था। अदम्य निराला, जीवन और साहित्य में निराले ही ढंग से विरोधों के बीच भी आगे ही बढ़ते रहे हैं। इस दिशा में चन्द्रकुँवर और निराला में पर्याप्त साम्य रहा है।

यौवन का उन्मेष कलाकार के समर्थ हाथों का बल पा कर सुघड़ रूप में ढलता है, कवि की साधना में स्वच्छन्द प्रवाह, मुक्त गीति के स्वच्छंद छंद में बहता है। अथाह शक्तियों में भावनाओं के बवंडर उठते हैं सपूर्ण सृष्टि तिमिरालोकित-सी हो जाती है। कल्पनाओं के सजल मेघों में प्रतिभा की बिजुलियाँ चमकती हैं। विचारों के शैल-शिखरों से हृदयाकाश के ये मेघ टकराते हैं और पृथ्वी पर आनन्द की अटूट धारायें टूट पड़ती हैं। चन्द्रकुँवर और निराला इन आनंद धाराओं के इन्द्र-कुबेर हैं। पयस्विनी, चन्द्रकुँवर की अलका है। परिमल, निराला का नन्दन-कानन। 'नंदनी' इस अलका के यौवन के आँसू हैं। गीतिका, इस नन्दन-कानन की यौवन मूर्च्छना। विषयों का व्यापक विस्तार शैलियों की विविधता के साथ पयस्विनी और परिमल में एक रस मिलता है। करुणा और सुन्दरता, माधुर्य और ओज, त्याग और संयम, नियम और स्वच्छन्दता का पुंजी भूत प्रवाह, चन्द्रकुँवर और निराला का साहित्य है। हिन्दी के इस बौने युग में निराला, चन्द्रकुँवर, और प्रसाद ये तीन ही त्रिविक्रमी विराट् कवि हैं।

यद्यपि, किसी भी व्यक्ति का संपूर्ण-साहित्य उस के जीवन का दर्शन है किन्तु किसी रचना में उस का स्वरूप अन्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक गहरे उज्ज्वल चटकीले रूप में अङ्कित हो जाता है। यही रचना उसकी प्रतिनिधि रचना कहलाने लगती है। चन्द्रकुँवर की प्रतिनिधि रचना चाहे जो हो निराला की प्रतिनिधि रचना परिमल ही है।

निराला जी का परिमल पहले पहल सन् १६२६ ई० में प्रकाशित हुआ, किंतु उस में संकलित कविताओं का समय १६१६ ई० से १६२६ ई० तक फैला है। परिमल में भी निराला जी के व्यापक विषय क्षेत्र को समेटने की दृष्टि के दर्शन होने लगते हैं। परिमल में केवल प्रेम संबंधी ही कविताएँ नहीं हैं, वीरोल्लास पूर्ण तथा उच्च दार्शनिक भूमियों की कविताएँ भी हैं। निराला के प्रेम में भीरुता, कायरता और रुदन के लिए अधिक स्थान नहीं है। वह एक शक्ति-सम्पन्न क्रियाशील व्यक्ति का प्रेम है, वह वेग-वती उस पर्वतीय नदी की भाँति है जो गरज-गरज कर हिम-शैलों से आती है और अपने मार्ग में पड़ने वाली सब तुच्छ विघ्न-बाधाओं को पार करती आगे बढ़ जाती है। जुही की कली निःसन्देह निराला जी की सुंदरतम गीतियों में से एक है जो उन्हों ने सन् १६१२ ई० में सोलह वर्ष की अवस्था में लिखी थी।

परिमल में केवल सौन्दर्य गीत भर महत्व के हों ऐसी बात नहीं। उस में अन्य भी एक से एक सुंदर कविताएँ हैं। पंचवटी प्रसंग तथा यमुना के प्रति महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। महाराज शिवा जी का पत्र उस फारसी मूल काव्य मय पत्र का पद्यानुवाद है जो पहली बार जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' द्वारा प्रकाश में लाया गया था। वह पत्र, मूल फारसी तथा हिन्दी अनुवाद सहित नागरी प्रचारिणी पत्रिका आठवें भाग (१६७६ वि० १६२२ ई०) में प्रकाशित हुआ था। निराला जी का अनुवाद मूल पत्र की आत्मा की पूरी रक्षा करते हुए भी सरस-सुंदर हुआ है खड़ी बोली में इस पत्र का दूसरा सफल पद्यानुवाद श्री शिव रत्न शुक्ल 'सिरस'

द्वारा हुआ है। पंजाब से प्रकाशित छत्रपत्रि शिवा जी में भी एक पद्यानुवाद मूल सहित छपा है निराला का अनुवाद इस दिशा में पहला होने से यह भी सूचना देता है कि हिन्दी के अन्य कवियों की तरह उन की दुनिया सीमित नहीं। वे साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का भी अध्ययन करते है। वरन् शोध पूर्ण ऐतिहासिक पत्रों का भी पारायण कर अपने साहित्य का सृजन प्रसार, और चन्द्रकुँवर की ही भति करते रहे। निराला जी ने विवेकानंद के कुछ ग्रंथों का भी खड़ी बोली के पद्य में अनुवाद किया है। खड़ी बोली पद्य में तुलसी के संपूर्ण रामचरित मानस का भी अनुवाद निराला जी ने क्यिा है। काशी से इस के कुछ अंश छप भी चुके हैं। परिमल में दार्शनिक निराला का प्रतिनिधित्व करनेवाली कविता तुम तुंग हिमालय शृंग से आरंभ होनेवाली 'तुम और मैं' है।

परिमल में भिन्न-भिन्न प्रकार की कविताएँ हैं। किन्तु 'तुम और मैं' निराला का प्रतिनिधित्व सब से अधिक करती है उस में निराला की सारी विशेषताएँ अपनी संपूर्ण दुर्बलताओं सहित विद्यमान हैं। कवि के जीवन में वेदान्त का जो कुछ भी प्रभाव रहा है वह एक प्रकार से उस कविता में व्यक्त हो गया है।

परिमल और गीतिका में निराला की मनोवृत्ति अंतर्मुखी भावों की स्वच्छन्द कोमल अभिव्यक्ति की ओर अधिक झुकी है किन्तु बेला और 'नये पत्ते' में उन का स्वरूप बहिर्मुखी कटु व्यंगों का हो गया है। बेला के 'आवेदन' में और 'नये पत्ते' की 'प्रस्तावना' में उन्हों ने अपनी इन रचनाओं के विषय के विचार भी प्रकट कर दिये हैं। 'आवेदन' में वे लिखते हैं—

'बेला' मेरे नये गीतो का संग्रह है। प्रायः सभी तरह के गेय गीत इस में हैं। भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं। देश भक्ति के गीत भी हैं। 'बढ़ कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की ग़ज़लें भी हैं जिन में फ़ारसी के छंद शास्त्र का निर्वाह

किया गया है। काव्य की कसौटी भी है'। पाठकों की हिन्दी मार्जित हो जायगी अगर उन्हों ने आधे गीत भी कंठाग्र कर लिए; यों आज भी ब्रज-भाषा के प्रभाव के कारण अधिकांश जन तुतलाते हैं, खड़ी बोली के गीत खुल कर नहीं गाते। प्रायः सभी दृष्टियों से उन को फ़ायदा पहुँचाने का विचार रक्खा गया है। पढ़ने पर वे आप समझेंगे।

१५ जनवरी १९४३ निराला

'प्रस्तावना' में उन्हों ने तीन वर्ष बाद अंकित किया—

"नये पत्ते" इधर के पद्यों का संग्रह है। सभी तरह के आधुनिक पद्य हैं, छन्द कई, मात्रिक, सम और असम, हास्य की भी प्रचुरता, भाषा अधिकांश में बोलचाल वाली। पढ़ने पर काव्य की कुंजों के अलावा ऊँचे नीचे फ़ारस के जैसे टीले भी। अधिक मनोरंजन और बोधन की निगाह रक्खी गई है कि पाठकों का श्रम साथक हो और ज्ञान बढ़े। वे अपनी भाषा की रूप-रेखाएँ देखें। इति

प्रयाग ७-३-१९४६ सविनय

निराला

निरालाजी जीवन में विष-पान कर, अमृत हमें देते चले आये हैं। परिमल (१९२९), अलका (१९३३ ई०), गीतिका (१९३६), तुलसीदास (१९३९ ई०), अणिमा (१९४३ ई०), बेला (१९४३-४६), प्रभावती (१९४५), नये पत्ते (१९४६ ई०), अपरा (१९४६ ई०), खड़ी बोली के कवि और कविता (अगस्त १९२९ ई०), अनामिका, कुकुरमुत्ता, वर्षा—गीत, अप्सरा, निरुपमा, चमेली, हाथों लिया, चोटी की पकड़, काले कारनामे, लिली, सखी, सुकुल की बीबी, चतुरीचमार, समाज, शकुन्तला, उषा – अनिरुद्ध कुलीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा, रवीन्द्र कविता—कानन भारतीय काव्य—दृष्टि, हिन्दी-बंगला-शिक्षा, रस-अलंकार, प्रबन्ध-पद्म प्रबन्ध-प्रतिमा, प्रबन्ध—परिचय, चाबुक, श्री राम कृष्ण—वचनामृत, विवेकानंद व्याख्यानमाला, देवी चौधरानी, परिव्राजक, कपालकुंडला,

महाभारत, राणा प्रताप, भीष्म, प्रह्लाद, ध्रुव, तुलसीकृत रामायण में अद्वैत, भारत में श्री रामकृष्णावतार, मानस-टीका, राजसिंह, राजयोग, मानस-खड़ी-बोली पद्यानुवाद, गोविन्ददास-पदावली, वात्सायन-कामसूत्र, राधारानी. युगाँगुलीय, विष-वृक्ष, कृष्णकान्त का बिल, दुर्गेश नंदिनी रजनी, चन्द्रशेखर, आनंदमठ आदि उन की विविध प्रकार की कृतियाँ हैं।

'नभ' शब्द का प्रयोग निराला दार्शनिक 'निर्विकार' के अर्थ में करते हैं। उनकी सब कविताओं में इस शब्द का यही अर्थ है। यमुना के प्रति उन की स्वच्छन्द प्रेम भावना की अभिव्यक्ति है। उनकी धारणा है यमुना प्रेम की वह धारा है जो मानव हृदयों में स्वच्छन्द रूप से श्री कृष्ण के समय में बह रही थी। उसी यमुना के प्रति कवि ने अपनी भाव-सुमनाञ्जलि अर्पित की है। कवि की भाव-प्रवण कल्पना जाग्रत स्वप्न बन उस यमुना को आँखों की शोभा में ले आती है। चन्द्रकुँवर ने भी यमुना का प्रयोग अपनी नंदनी में प्रम की गम्भीर गोदावरी की आँखों में छाई तरल-कान्ति के लिये किया है, 'मुझे डूबने दो यमुना में प्रिय नयनों की मुझ को बहने दो गंगा में प्रिय वचनों की।'

निराला जी के दार्शनिक विचारों को उन के लेखों में विस्तार के साथ पढ़ा जा सकता है। तुलसीकृत रामायण में अद्वैत (समन्वय, भाग १, संख्या ६, पृ० ३६८–४०७), भारत में श्रीराम कृष्ण अवतार (समन्वय, भाग १, सख्या ५, पृ० २१६–२२४) भारतीय काव्य दृष्टि, आदि लेख इस विषय में अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।

'खड़ी बोली के कवि और कविता' (माधुरी, अगस्त १६२६ ई० वर्ष ८, खंड १, संख्या १, पृष्ठ ३७६-३८६) लेख उन के काव्य-भाषा-आलोचना विषयक विचारों को समझने के लिए अधिक से अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। उस लेख से ही कुछ उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

"खड़ी बोली के घट को साहित्य के विस्तृत प्रांगण में स्थापित कर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मंत्र-पाठ द्वारा देश के नव युवक

समुदाय को एक अत्यंत शुभ मुहूर्त में आमंत्रित किया और उस घट में कविता की प्राण प्रतिष्ठा की···इस देश में उन दिनों उर्दू की जैसी अवस्था थी, शिक्षित लोग जिस प्रकार उसकी ओर खिंचे हुये थे, जिस तरह वह हिन्दुस्तान की प्रचलित अजीब भाषा समझी जाती थी···उस के एक समय राजभाषा होने के कारण––तमाम पश्चिमोत्तर भारत के शिक्षित समुदाय की ज़बान पर फिरती हुई शिक्षा तथा नाज़ो-अन्दाज़ की मूर्ति हो रहने के कारण यह निश्चय था कि आज हिंदी की अपेक्षा उर्दू को ही लोग राष्ट्र-भाषा के मयूरासन पर बैठने के लिये अधिकतर योग्य समझते, जब कि इधर के तमाम शिक्षित समुदाय की प्यारी भाषा उर्दू ही हो रही थी और मुसलमानों की भाषा का एक प्रश्न भी राष्ट्र-मैत्री के सामने आ जाता था, निसंदेह हिंदी की खिचड़ी शैली ने इस सवाल को हल कर दिया है और उसी तरह खड़ी बोली की कविता ने शिक्षित समूह के हृदय में अपनी तरफ का एक प्रेम जन्म आकर्षण भी पैदा कर दिया है–शिक्षित लोग भी हिंदी लिखने और पढ़ने लगे हैं··· कविता हृदय की सृष्टि है, जहाँ मातृ जाति का स्थान है······

खड़ी बोली के गद्य में कर्म जीवन के चिन्ह और पद्य में हृदय की सुकुमार भावनाएँ व्यक्त कर हिन्दी के इस काल के प्राचीन स्तंभ, साहित्यिकों ने अपूर्व दूरदर्शिता दिखलाई है। मृतप्राय मनुष्य के रुकते हुए शोणित-प्रवाह को गति शील करने के लिए वह ज़हर उस के खून से मिलाया जाता है, जो उस की स्वाभाविक अवस्था के बिल्कुल प्रतिकूल होता है, भाषा के लिए भी यही दवा है। ··· आज खड़ी बोली में जो कुछ भी कठिन है, शुष्क तथा रूढ़ दिखलाई पड़ रहा है, वह केवल भाषा को अधिक काल तक स्थायी रखने के लिए है। ··· यह खड़ी बोली की कठोरता ही अब आगे चल कर सरस कवियों की काव्य साधना का कारण होगी। भाषा की गति के साथ ही हमारी मातृ शक्ति का पुनरुत्थान होगा, और उन के मुखों से सुन-सुन कर खड़ी बोली के

बालक क्रमशः अपनी भाषा, समाज और राष्ट्र का कल्याण करेंगे।...

खड़ी बोली की कविता में प्राण-प्रतिष्ठा सौभाग्यवान आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने की है। इन के प्रोत्साहन तथा स्नेह ने खड़ी बोली की कविता के प्रथम तथा दूसरे काल के कितने ही सुकवि साहित्य सेवक उत्पन्न किये। ...

आज कल अपने प्रकाश में चमकते हुए उस समय के कितने ही कवियों की प्रतिभा की किरणें द्विवेदी जी के हृदय के सूर्य से मिली हुई निकली हैं। वे कविगण द्विवेदी जी की इस अपार कृपा के लिए सर्वांतःकरण से उन के कृतज्ञ हैं। बाबू मैथिली शरण गुप्त जी, श्री सनेही जी, पं० रूपनारायण जी पाँडेय, पं० रामचरित उपाध्याय, पंडित लोचन प्रसाद पाँडेय, ठाकुर गोपाल शरण सिंह जी, बाबू सियाराम शरण जी गुप्त आदि सुकवियों की रचनाओं को द्विवेदी जी ने काफ़ी प्रोत्साहन दिया और ये सब उस काल की 'सरस्वती' ही की स्टाइल के सुकवि हैं।

पं० रामचन्द्र जी (शुक्ल) ने खड़ी बोली और ब्रजभाषा, दोनों में काव्य-रचना की है। कोई कोई कहते हैं, इन की कविता में करुणा का परिपाक मिलता है। इन की कविता में दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न जरूर है, पर मेरे विचार से यह जैसे बहु पठित विद्वान हैं, वैसे कवि नहीं। इन की कविता में करुणा का परिपाक मिलता है। इन की कविता में दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न जरूर है, पर मेरें विचार से यह जैसे बहु पठित विद्वान हैं, वैसे कवि नहीं।...... शब्दों की तोल इन्हें मालूम नहीं न अलकार का निर्वाह आता है। दार्शनिक कविताओं में जहाँ कहीं बीरबल की तरह इन्हों ने अपने पढ़े हुए सिद्धान्त की खिचड़ी पकाई है इन की विद्वता के वंश-दंड पर भावना की हंडी में पड़े हुए इन के अपने ही ढाई चावल ज्यों के त्यों टँगे हुए रह जाते हैं, इन की प्रतिभा के पानी तक कविता की आँच पहुँचती ही नहीं। कवित्त-छंद में यह चूक ही जाते हैं, यही इन की विशेषता है! केवल १६-१५ की

गिनती से कवित्त छंद पूरा कर देते हैं। 'गहरे पड़े गोपद के चिन्हों से अंकि जो' जब इस लड़ी में हम आठ-आठ अक्षरों को अलग कर लेते हैं, तब 'दोय विषमनि बीच सम पद राखिए न !!' की शुक्ल जी द्वारा अच्छी मरम्मत देख पड़ती है, 'गहरे' और 'गोपद' के बीच में 'पड़े' हुए शुक्ल जी निकलते ही नहीं, और हम लोग 'गोपद तट पर खड़े हुए देखते ही रह जाते हैं।

अंकित नीलाभ रक्त और श्वेत सुमनों से,
मटर के फैले हुए घने हरे जाल में,
करती हैं कलियाँ संकेत जहाँ मुड़ते हैं
और अधिकार का न ज्ञान उस काल में;
बैठते हैं प्रीति-भोज-हेतु आस पास सब,
पक्षियों के साथ इस भरी हुई थाल में,
हाँक पर एक साथ पंखों ने सराटे भरे
हम पेड़ पार हुए एक ही उछाल में।

पहले, तीसरे बंद का ज़रा मुलाहज़ा फरमाइए। 'बैठते हैं' क्रिया का आधार 'थाल में' है, जिस से 'थाल में' सातवीं विभक्ति, अधिकरण कारक आया है, असंगति ज़ाहिर है, प्रीति-भोज के हेतु कोई थाल में नहीं बैठते। यदि 'थाल में या थाल पर बैठना' इसे कोई मुहावरा मान, अर्थ 'भोजन करना' किया जाय तो यह अर्थ लगता नहीं, कारण वहाँ मुहावरा-प्रयोग तो है नहीं 'थाल' का अलंकारिक प्रयोग आया है। 'थाल' के आगे का 'इस' जाहिर कर देता है कि यह प्रकृति का थाल है, जिस में प्रीत-भोज हेतु पक्षियों के साथ सब बैठते हैं। अवश्य थाल में बठने की पक्षियों की स्वाभाविक वृत्ति है, पर वह नादानी ही है। प्रीति-भोज करा के उन के कुटुंबों को भी, याने समुदाय-के-सुमुदाय को थाल में बैठाना आखिर उन की नादानी का ही डंका पीटना ठहरा, न कि कविता करना। इधर जब कविता में प्रीति भोज का कोई मनोहर चित्र आँखों में

गुज़रता है उस समय कोई थाल में बैठा हुआ नहीं मिलता। मज़ा तो यह कि उधर पत्ती थाल में बैठें, और आपने हाँक चढ़ाई पश्चात् क्या हुआ? पंखों ने सर्राटे भरे !!—चिड़ियाँ गायब !? ज़ान पड़ता है, दस-बीस पंख मँडला रहे हैं !!! कविता में पंक्षियों के पंख आपने खूब नोचे !!! और अगर यही नेचर को परसोनीफाइ करने का आप का तरीका है, ता निसंदेह यहाँ वर्डसवर्थ भी मात है। यह सब इतना अत्याचार कर के भी आप एक ही उछाल में मेड़ पार कर जाते हैं। मेड़ जैसे कोई खाई हो ; हम लोग तो चढ़ कर ही पेड़ पार करते हैं पर शुक्ल जी 'एक ही उछाल में'। ऐसे हैं शुक्ल जी हिन्दी के कवि ! 'शक्ति-सिन्धु के बीच भुवन को खेने वाले' में इन का शक्ति-सिन्धु कौन सा है, पता नहीं, हम तो अब तक यही जानते थे कि भुवन के साथ शक्ति का अविच्छेद्य सबंध जैसे आग और उस की गरमी। ऐसी मौलिक उद्-भावना-शक्ति शुक्ल जी में बहुत ज्या है'.........

खड़ी बोली की कविता का सेहरा यदि किसी एक ही कवि को पहनाया जाय, ता अब तक इस के अधिकारी केवल बाबू मैथिली शरण जी ठहरते हैं। खड़ी बोली के कविता के उत्कर्ष के लिए इन की सेवा अमूल्य है।.......इन का भाषा वैभव ही इन का विशेषता है। हिन्दी में शुद्ध साहित्य की सृष्टि करनेवालों में गुप्त जी का महत्व पूर्ण स्थान है।............ सूर्य कान्त त्रिपाठी।"

इस प्रकार हम देखते हैं निराला न केवल व्यापक शक्ति के उदात्त कवि ही हैं वरन् एक उच्च कोटि के आलोचक और प्रखर-सूर्य सदृश प्रतिभा के निराले कांत दार्शनिक भी हैं।

---

६ जटिल-गंगा

"विश्व के ईश्वर वही हैं जो सभी की
वेदना में हृदय से हैं रुदन करते,
जो सभी की वेदना को हैं समझते
कवि वही जिन के स्वरों में भरी रहती
है हृदय की हार, उर की वेदना !"
(पयस्विनी पृ० १५२)

एकान्तिक भावुक व्यक्ति की वह अभिव्यक्ति जिसे हम कविता कहते है, मानव-समाज के अन्तस को दिव्य मणि से प्रतिविम्बित जीवन-व्याख्या है; जीवन-व्याख्या का एक ढंग अभिनय भी है। अभिनय प्रधान जीवन-व्याख्या का नाम नाटक है। कविता नाटकों का अंश बन कर रंग-मंच पर जब आती है तब उस का क्षेत्र अधिक आसानी से व्यापक-विस्तृत होजाता है। कविता-हीन नाटक निष्प्राण से हो जाते हैं। भावनाओं की उर्वरा हृदय भूमि में कविता जन्मती है, मानव हृदय के क्रिया व्यापारों के चित्रण से अधिक सुन्दर दूसरा कोई विषय कविता ने आज तक नहीं पाया है। दर्शन उसी से सुन्दर बनता है। हृदय-सरोवर में खिले कविता के कमल को मकरंद का सब से सुंदर गंध-वाही नाटक का माध्यम है। नाटक में क्रिया व्यापार, कथोपकथन और भाव-भंगियों तथा अन्य साधनों की सुविधा रहती है। इस सुविधा को पा कर कविता, दर्शन, मानव-समाज के सम्मुख सजीव रूप में आती है। अन्तरंग की अभिव्यक्ति कविता में अधिक तीव्र रूप में व्यंजना शक्तियों के कुशल प्रयोग से होती है। जो व्यक्ति अन्तरद्वन्द को जितना ही अधिक ध्वनित कर सकता है उस

की रचना अपनी भाषा की विलक्षण सुन्दरता से उतनी ही उच्चकोटि की साहित्यिक कृति बन जाती है।

जयशंकर प्रसाद अपनी कृतियों में इसीलिये सुन्दरता भर सके हैं कि उन्हों ने हृदय की आन्तरिक प्रवृत्तियों और मानसिक क्रिया व्यापारों को अधिक महत्त्व की दृष्टि से अपनाया है आन्तरिक द्वन्द को बाहरी द्वन्द का प्रेरक बनाया है। जहाँ कहीं ऐसा नहीं हो पाया है वहाँ रचना प्राणहीन हो जाती है, चाहे जितने भी उच्च आदर्श उस में भरे हों। 'अजात शत्रु' की मल्लिका बाह्य परिस्थितियों के अनुरूप अन्तरद्वन्द को न प्रस्तुत कर सकने के कारण यदि सामान्य श्रेणी की मानवी से ऊपर उठ जाती है तो वही ऊपर उठना उसे निर्जीव पाषाणी भी बना देता है।

शेक्सपियर के नाटकों में अन्तरद्वन्द जो है वह बाहरी द्वन्द के मेल में है बाहरी द्वन्द का प्रेरक है। शेक्सपियर के नाटकों का प्रभाव प्रत्यक्ष और गौण दोनों ही रूपों से प्रसाद पर भी पड़ा है। प्रसाद ने द्विजेन्द्रलालराय, कालिदास, विशाखदत्त, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा लक्ष्मणसिंह आदि का गहन अध्ययन कर युग के अनुकूल उन में प्रकाश पाया है। महाशक्ति का प्रखर प्रभाव उन्मुक्त सौंदर्य-प्रेम, नवीन-व्यंजनाओं का प्रयोग, आदर्शों और समस्या विचारों का समावेश उन्हों ने अपने नाटकों में किया है। इतिहास के प्रति आवश्यकता से अधिक मोह प्रसाद को रहा है इस ने उन के नाटकों को जटिल गंगा बना दिया है।

जयशंकर प्रसाद भावुक व्यक्ति थे। मनन चिंतन शील कवि होने से प्राचीन भारतीय इतिहास का उपयोग उन्हों ने आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए किया। इस युग की चेतना उन की सभी रचनाओं में विद्यमान हैं। उन की नाटकों में जो भावपूर्ण स्थल हैं वे दार्शनिक दृष्टिकोण और नवीन व्यंजनाओं से पूर्ण होने से छायावादी कही जाने वाली कविताओं की प्रायः सभी विशेषताओं से युक्त हैं, जिस से वे हृदय को स्पर्श कर जाते हैं और मस्तिष्क को क्रियाशील कर देते हैं,

उन के आधिक्य से विक्षुब्ध हुआ पाठक कह देता है प्रसाद के नाटक रंग मच पर छायावादी कविताओं के अभिनय मात्र हैं।

वास्तव में, हिंदी में नाटकों का अभाव है। प्रसाद के नाटक इस कमी को किसी सीमा तक भरते हैं, इस से उन का इतना महत्त्व है अन्यथा नाट्य-कला की दृष्टि से वे इतिहास के तथ्यों को वर्तमान के रंगों से भरने के इच्छुक कवि के असफल प्रयास हैं। नाटक, अभिनय की आकांक्षा प्रमुख रूप से रखता है। नाटकों में अभिनय से अधिक श्रव्य काव्य की आकांक्षा लेकर प्रसाद चले हैं। उन में नाटककार बनने की सबल आकांक्षा कार्य करती हुई दिखलाई नहीं देती है। फिर भी उन्हों ने नाटककार बनने के लिये सतत प्रयत्न किया है। और इस प्रयत्न में वे जो कुछ कर पाये हैं वह ध्रुव स्वामिनी' के रूप में हमें दे गये हैं। और ध्रुव स्वामिनी भी प्रसाद के अन्य नाटकों की तरह आधुनिक समस्याओं का कवि जनोचित समाधान है। यह दूसरी बात है कि छोटे कथानक को वे अधिक सफलता से संभाल सके हैं और अब तक उनकी शैली कुछ मंज भी चुकी थी। कहा जा सकता है प्रसाद के नाटकों के लिये नवीन नाट्य सिद्धांतों की कसौटी निर्धारित की जानी चाहिये, ठीक है, किन्तु उस दशा में इस बात का भी मोह छोड़ देना पड़ेगा कि प्रसाद, रस वादी थे।

भाषा की अभिव्यंजना प्रणाली, इतिहास के उलझे हुए कथानकों और विविध समस्याओं के हल करने के कारण, प्रसाद के नाटकों में कठिनाई विशेष रूप से आती है। इसलिये वे पाठ्य रूप में भी लोगों को सुंदर लगने पर भी कठिन प्रतीत होते हैं।

इतिहास का अच्छा अध्ययन, पाठक कर ले और साथ ही प्रसाद के समय का भी ध्यान रखकर उन के नाटकों का अध्ययन करे तो उस की कठिनाई आधा से अधिक हल हो जाती है। कथानक के तारतम्य को समझने का प्रयत्न उस की कठिनाई को तीन चौथाई हल कर देता है,

और नवीन व्यंजना शैलियों का ज्ञान उन्हें बिलकुल ही हल कर देता है, प्रसाद साहित्य का विद्यार्थी जब तक इन बातों के लिये तैयार नहीं, तब तक प्रसाद के नाटक उसे कठिन ही लगेंगे और नाटकों की भावपूर्ण कविताएँ चाहे वे पद्य में हों अथवा गद्य में कठिन, बेठिकाने, ऊपर से जोड़ी हुई सी लगेंगी। किन्तु अपने अध्ययन की कमी का दोष प्रसाद के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। प्रसाद के नाटकों में ऐसे स्थल, परिस्थिति के अनुकूल और घटनाओं से घने रूप में संबंधित रहते हैं। इन के अलग कर देने से प्रसाद के नाटकों की सरसता ही जाती रहती है। अजात शत्रु में आए जटिल स्थलों से यह बात भली भाँति समझी जा सकती है। अजात शत्रु में सात जटिल स्थल हैं—

१ "आह, जीवन की क्षण भंगुरता देख कर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों में लिखे हुए इष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है, और जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होकर अकांड-तांडव करता है। फिर भी प्रकृति उसे अंधकार की गुफा में ले जाकर उस का शान्तिमय, रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है। किंतु वह कब मानता है? मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है अपनी नीची, किंतु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे सन्तोष नहीं होता, नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे तो भी क्या!

२ "तो मागंधी, कुछ गाओ। अब मुझे अपने मुखचन्द्र को निर्निमेष देखने दो कि मैं एक अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्रमालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा लाँघ जाऊँ, और तुम्हारा सुरभि निश्वास मेरी कल्पना का आलिंगन करने लगे"

३ "घोर अपमान! अनादर की पराकाष्ठा और तिरस्कार का भैरव नाद!! यह असहनीय है। धिक्कारपूर्ण कोशल-देश की सीमा कभी की मेरी आँखों से दूर हो जाती, किन्तु, मेरे जीवन का विकास-सूत्र एक बड़े

कोमल कुसुम के साथ बँध गया है। हृदय नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है। जीवन के प्रभात का वह मनोहर स्वप्न, विश्व भर की मदिरा बन कर मेरे उन्माद की सहकारिणी कोमल कल्पनाओं का भंडार हो गया। मल्लिका! तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्धरात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्रलोक से हीरक कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमलकण्ठ की रसीली तानें पुकार बन कर तुम्हारा अभिनंदन करने, तुम्हें सम्हाल कर उतारने के लिए, नक्षत्रलोक को गईं थीं। शिशिरकणों से सिक्त पवन तुम्हारे उतरने की सीढ़ी बना था, उषा ने स्वागत किया, चाटुकार मलयानिल परिमल की इच्छा से परिचारक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृन्त का आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा। उस ने खेलते-खेलते तुम्हें उस आसन से भी उठाया और गिराया। तुम्हारे धरणी पर आते ही जटिल जगत की कुटिल गृहस्थी के आलबाल में आश्चर्यपूर्ण सौंदर्यमयी रमणी के रूप में तुम्हें सब ने देखा। यह कैसा इंद्रजाल था—प्रभात का वह मनोहर स्वप्न था—सेनापति बन्धुल एक हृदयहीन क्रूर सैनिक ने तुम्हें अपने उष्णीष का फूल बनाया। और, हम तुम्हें अपने घेरे में रखने के लिये कँटीली झाड़ी बन कर पड़े ही रहे। कोशल के आज भी हम कंटक स्वरूप हैं........।"

४ "निर्जन गोधूली प्रान्तर में खोले पर्ण कुटी के द्वार,
दीप जलाये, बैठे थे तुम किये प्रतीक्षा पर अधिकार!
बटमारों से ठगे हुए की ठुकराये की लाखों से,
किसी पथिक की राह देखते अलस अकंपित आँखों से-
पलकें झुकी यमनिका-सी थीं अन्तस्तल के अभिनय में,
इधर वेदना श्रम-सीकर, आँसू की बूँदें परिचय में,
फिर भी परिचय पूछ रहे हो, विपुल विश्व में किस को दूं ?
चिनगारी श्वासों में उड़ती, रो लूं, ठहरो दम ले लूँ!

निर्जन कर दो क्षण भर कोने में, उस शीतल कोने में,
यह विश्राम सम्हल जायेगा सहज व्यथा के सोने में,
बीती बेला, नील गगन, तम, छिन्न विपंची, भूला प्यार
क्षपा-सदृश छिपना है फिर तो परिचय देंगे आँसू हार !!"
५ "अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब,
सुखी सो रहे थे इतने दिन, कैसे हे नीरद निकुरम्ब !
बरस रहे क्यों आज अचानक सरसिज कानन का संकोच,
अरे जलद में भी ज्वाला ! झुके हुए क्यों किस का सोच ?
किस निष्ठुर ठंढे हृत्तल में जमे रहे तुम बर्फ समान ?
पिघल रहे हो किस गर्मी से ! हे करुणा के जीवन-प्राण !
चपला की व्याकुलता लेकर चातक का ले करुण विलाप,
तारा-आँसू पोंछ गगन के, रोते हो किस दुख से आप ?
किस मानस-निधि में न बुझा था, बड़वानल जिस से बन भाप,
प्रणय-प्रभाकर- कर से चढ़ कर इस अनन्त का करते माप,
क्यों जुगनू का दीप जला, है पथ में पुष्प और आलोक !
किस समाधि पर बरसें आँसू किस का है यह शीतल शोक ?
थके प्रवासी वनजारों से लौटे हो मंथर गति से,
किस अतीत की प्रणय पिपासा, जगती चपला-सी स्मृति से ?"
६ "चल वसन्त बाला अंचल से किस घातक सौरभ में मस्त,
आतीं मलयानिल की लहरें जब दिनकर का होता अस्त,
मधुकर से कर संधि, विचर कर उषा नदी के तट उस पार,
चूसा रस पत्तों-पत्तों से फूलों का दे लोभ अपार !
लगे रहे जो अभी डाल से, बने आवरण फूलों के !
अवयव थे शृंगार रहे जो बन बाला के भूलों के !
आशा दे कर गले लगाना रुके न वे फिर रोके से,
उन्हें हिलाया बहकाया भी किधर उठाया झोंके से,

कुम्हलाये, सूखे, ऐंठे फिर गिरे अलग हो वृन्तों से,
वे निरीह मर्म्माहत होकर कुसुमाकर के कुन्तों से !
नव पल्लव का सृजन ! तुच्छ है किया बात से बँध जब कूर,
कौन फूल-सा हँसना देखे ? वे अतीत से भी जब दूर !
लिखा हुआ उनकी नस-नस में निर्दयता का इतिहास,
तू अब आह बनी घूमेगी उनके अवशेषों के पास !"

७ "यदि मैं सम्राट न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन की किसी लहर को सुरभित कर के धीरे से उस थाले में चू पड़ता — तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता । उस अस्तित्व को अनस्तित्व के साथ मिला कर कितना सुखी होता । भगवान, असंख्य ठोकरें खाकर लुढ़कते हुये गृहपिंडों से भी तो उस चैतन्य मानव की बुरी गत है । धक्के पर धक्के खाकर भी यह निर्लज्ज, सभा से नहीं निकलना चाहता । कैसी विचित्रता है ।"

✓अजात शत्रु में सब से पहले जो जटिल स्थल आता है वह विश्व के सब से महान आश्चर्यजनक प्रश्न की व्याख्या है । महाभारत की अमर प्रश्नावली में एक प्रश्न यह भी है—मनुष्य मरते देखता है, हर समय देखता है फिर भी मौत उसे नजर नहीं आती इस कारण वह ऐसा रूप दिखलाता है जो अशान्ति बढ़ाने वाला होता है । इस प्रश्न पर भारतीय मनीषियों ने अनेक प्रकार से विचार किया है । कबीर ने इसे एक साखी में इस प्रकार कहा है—

काँची काया मन अथिर, थिर थिर काज करंत ।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत, त्यों त्यों काल हसंत ॥

प्रसाद जी के विम्बसार का कहना है—

जीवन स्थिर नहीं है, पल भर में नष्ट हो जा सकता है । इस बात का अनुभव मनुष्य को नित्य हुआ करता है, फिर भी अपने जीवन में

वह ऐसे आयोजन करता रहता है, मानो उसे अनंत काल तक यहीं रहना है। उस के भाग्य में जब तक सुख के दिन हैं तब तक तो वह निश्चिन्त पड़ा रहता है, किन्तु ज्यों ही सुख के दिन बीतने लगते हैं और उसे आपदाएँ आ घेरती हैं, तब वह समझता है कि जागने का समय आ गया है, कुछ काम करना चाहिये। और वह बड़े-बड़े आयोजनों में लग जाता है और नृशंसता के काम करने में भी आगा पीछा नहीं सोचता।

भाग्य को यहाँ पर लेखक ने आकाश माना है और उस की लिपि को उज्ज्वल नक्षत्र। आकाश को निर्मलता और नक्षत्रों की उज्ज्वलता सुख को सूचना देते हैं।

इससे यह पता चलता है कि ऐसे अवसर पर मनुष्य यह समझता है कि मेरा भाग्य मेरे हाथ में है और यदि मैं जोर शोर से काम करूँ तो अपने भाग्य की लिपि को अपने अनुकूल बना सकता हूँ। परन्तु प्रकृति बराबर प्रयत्न करती रहती है कि मनुष्य को यह बात ज्ञात हो जाय कि भाग्य लिपि पर उस का कोई वश नहीं है। यदि उस का भाग्य उसके हाथ में होता तो वह जान सकता कि मेरे भाग्य में क्या लिखा है किन्तु वस्तुतः भाग्य में क्या है, आगे क्या होने वाला है, इसे कोई जानता नहीं है प्रकृति ने उस को मनुष्य से छिपा रक्खा है, मानो उस के संबंध में व्यक्ति अन्धकार की गुफा में रहता है जहाँ कुछ दिखाई नहीं देता। भाग्य हमारे हाथ में नहीं है यह जानकर मनुष्य अकरणीय कार्यों को करना छोड़ कर शांति ग्रहण करनी चाहिये, यही व्यंजित करने के लिये लेखक ने भाग्य के चिट्ठे को रहस्यपूर्ण के साथ-साथ शान्तिमय भी कहा है। किन्तु मनुष्य, प्रकृति के उपदेश को नहीं मानता, और ऊँचे उठने की इच्छा के कारण, जो पूरी नहीं होती, उछल-कूद और छीना माटी में पच मरता है। जिस नीची अवस्था में यह है, उस से उसे संतोष नहीं होता। यह जानते हुये भी कि ऊँचे उठना सर्वथा मेरे हाथ की बात नहीं है, वह उस के लिये प्रयत्न करता ही जाता है। इस की उसे

चिंता नहीं होती कि ऐसा न हो कि कहीं ऐसा करने से जहाँ अब हूँ वहाँ से भी नीचे गिर जाऊँ।

दूसरा कठिन स्थल पहला अंक पाँचवाँ दृश्य है उदयन को उस भावुक कल्पना को अभिव्यक्ति का जिस में वह मागंधी के रूप की प्रशंसा करता हुआ कहता है: अब मुझे अपन मुखचन्द्र को निर्निमेष देखने दो, कि मैं एक अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्र मालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा को लाँघ जाऊँ और तुम्हारा सुरभि निश्वास मेरी कल्पना का आलिंगन करने लगे।

मागंधी के प्रेम मग्न उदयन, उस के मुख को एक टक देखना चाहता है। उस की प्रेम में जगी हुई भावना दृष्टि में उस मागंधी का मुख अत्यत सुन्दर जान पड़ता है। उसे वह इस जगत की नहीं जान पड़ती है, जो इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है। ऐसे जगत के शरच्चन्द्र से ही वह मागंधी के मुख की तुलना कर सकता है। प्रेम के राज्य में एक तान भावना में मग्न हो कर वह बहुत कुछ ऐसी भाषा का प्रयोग करने लगता है जिस का प्रयोग बहुधा का आध्यात्मिकता के क्षेत्र में होता है। इसलिये वह उस अनुभूति के लिये भावना की सीमा को लांघना आवश्यक समझता है और अतीन्द्रिय जगत की कल्पना करना चाहता है। इसी भाव मग्न दृष्टि में उसे यह जान पड़ता है कि उसकी कल्पना में यह भी तभी आ सकेगा कि मागधी की सुगंधित साँस कितनी आल्हाद-दायिनी है जब वह इस प्रकार भावना की सीमा को लाँघ जाय।

इसके उपरान्त भावुक प्रेम और सौन्दर्य के चित्र कई हैं किन्तु उन की विचार धाराएँ और भावनामय रंगीन कल्पनाएँ स्फटिक की तरह उज्ज्वल क्रांतिदर्शिता लिये हैं। अस्तु उनका वर्णन न कर तीसरे और चौथे कठिन स्थलों पर पहुँचते हैं। वास्तविक रूप में ये ही सच्चे कठिन स्थल अजात शत्रु में हैं, जिन के कारण प्रसाद के इस नाटक को भी रग मच पर छायावादी कविता का अभिनय कहा जाता है। ये स्थल परि-

स्थित के अनुकूल अतद्वन्द की भावनाओं की अभिव्यक्ति को कविता में लिये हैं। पहला स्थल है दूसरे अङ्क के आठवें दृश्य में श्यामा के गीत का निर्जन गोधूली प्रांतर आदि और दूसरा है पहले अङ्क के आठवें दृश्य में विरुद्धक का मल्लिका के सौन्दर्य का वर्णन करने का। इनके अलावा) तीसरे अङ्क के तीसरे दृश्य में विरुद्धक के गीत अलका की किस विकल विरहिणी आदि तथा नव दृश्य में चलवसंत बाला के अञ्चल और यदि मैं सम्राट न होकर आदि ऐसे स्थल हैं।

हृदय, नीरव अभिलाषाओं का नीड़......कंटक" है। इस अनुच्छेद को आते ही ध्यान माघ के शिशुपाल बध की ओर चला जाता है। माघ ने स्वर्ग से, नारद, के उतरने के प्रसंग में प्रथम सर्ग के दस श्लोकों में इसी प्रकार की कल्पना की है। विरुद्धक ने अपने यौवन के आरंभ में मल्लिका के अपूर्व सौंदर्य के दर्शन किये थे। वह उसके हृदय में घर कर गई। उस की कल्पनाएँ, सौंदर्य के अब उपकरणों से निर्मित मूर्ति को भी मल्लिका के सम्मुख फीकी देखती है और समझने लगती है, पृथ्वी में जो कुछ भी संदर है ......फूल, उषा, सुरभि, समीर, संगीत आदि......वह अब सुंदर इसलिये है कि मल्लिका की छाया इन पर पड़ी है। उन सब में सजीवता इसलिये है कि मल्लिका, नक्षत्र लोक से उतर कर पृथ्वी पर मानवी रूप में आ गई है। पर दूसरे लोग उस के मानवी रूप को ही देख पाते हैं उसके दिव्य देवी रूप पर उनकी नजर जाती ही नहीं जावे भी कैसे उनके हृदय को प्रेम की आँखें नहीं मिली हैं। पृथ्वी में ऐसा सौंदर्य देखा नहीं जाता जैसा मल्लिका में है। ऐसी मल्लिका क्या भला क्रूर युद्ध जीवी बंधुल के योग्य थी? किन्तु फिर भी मल्लिका का अञ्चल उस से बाँध दिया गया। मेरे हृदय में प्रेम में पला हुआ उसका सौंदर्य अत्यंत स्पष्ट हो कर मुझे कोशल में ही बाँध रहा है। परिस्थिति ने जो अपमान मुझे दिया है वह असह्य होने से कौशल छोड़ने को मुझे अग्रसर करता

है। मल्लिका को मैंने दिव्य तारे की भाँति देखा जो हीरे की भाँति चमकता है, किन्तु जिसमें हीरे की कठोरता की जगह सिरीष सुमन की कोमलता है। पृथ्वो के संगीत में सुरीली मोहकता है शायद इसलिये कि नक्षत्र लोक वासिनी मल्लिका देवी उस से प्रसन्न हो कर पृथ्वी पर सुख से रह सके। मदिरा से मादकता है किन्तु मल्लिका के रूप और वाणी के प्रभाव से जो मादकता इन प्राणों में आ गई है वह सारे संसार को मदिरा को एक बार ही पी सकने वाले व्यक्ति में भी नहीं आ सकती। पवन में शीतलता और सुगंधि है। मल्लिका के शरीर अङ्गों के स्पर्श सुख की कल्पना से ये विशेषतायें पवन में आ गई हैं। चमेली का पुष्प इस मंद मंद पवन के झोंकों में झूमता है खिलता है और अंत में लता वृन्त से झर कर थाले में चू झर पड़ता है। यह सब कुछ नहीं नक्षत्र लोक से पृथ्वी पर मानवी रूप में आने की क्रिया से मध्य की अवस्था है। मल्लिका पुष्प के रूप में नक्षत्र लोक की कोमल हीरक कुसुम मल्लिका ही खिली थी। इसी से उसके स्पर्श के पवन सुरक्षित हुआ था। इस दूसरी अवस्था में भी किस दूसरे ने चमेली पुष्प में नक्षत्र लोक की हीरक कुसुम कोमल उस मल्लिका को देखा जो आज पृथ्वी पर मानवी के रूप में विद्यमान है: किस दूसरे ने रात जग जग कर तारे गिनते, कल्पना रूप में डूबे काँटी, किस दूसरे ने उसी जागरण के बाद प्रातः काल भी जब चमेली खिलती है झपकी नहीं ली, उसी ध्यान में मन रमाया। और फिर दिन में भी उसी के रूप में जीवन की चेतना एक कर दा किसी दूसरे ने मल्लिका के लिये इस प्रकार के दिन नहीं बिताये और फिर भी उस सुमन को कोई और चुन ले गया। उसे ऐसे व्यक्ति ने अपने माथे लगाया जो प्रकृति से क्रूर है, जिसके हृदय ने प्रेम को नहीं पाया है, जो युद्धजीवी है मल्लिका की क्या दशा होगी। उसको प्यार करने वाले व्यक्ति को यदि वह प्राप्त होती तो उस का जीवन भी सुखमय होता और प्यार करने वाले व्यक्ति का भी। किन्तु अब प्यार

करने वाले व्यक्ति का हृदय तो तोड़ ही दिया है, मल्लिका का जीवन भी सुख-मय नहीं रह सकता। मेरे हृदय की सारी शोभा मल्लिका थी, इस हृदय में वह सुमन ही खिल रहा था। अब जब सुमन किसी दूसरे ने लिया तब मेरे हृदय में रह क्या गया है केवल काँटे भर। फूल के चुन लिये जाने पर कटीली झाड़ी भर जैसे रह जाती है वैसे ही आज मेरे हृदय में शूल भर रह गये हैं। मल्लिका चली गई और इस टूटे हुए रूप में भी कोशल नरेश प्रसेनजित की आँखों में मैं खटकता हूँ। कोशल नरेश ने मल्लिका का विवाह मुझ से न हो सके इसी से उस को बंधुल को व्याह दिया। उन की कामना पूरी हो गई फिर भी वे मुझ को नहीं सह सकते, मेरा यहाँ रहना भी उन को खलता है। यहाँ रह कर मैं, मल्लिका को पराई हुई देख कर भी केवल इतने से सुखी रह सकता कि उसे देखने का सौभाग्य मिल रहा है जिसे कभी हृदय के मंदिर में आराधा था, किन्तु मेरा इतना सुख भी कोशल नहीं देख सकता। इसलिये मैं कोशल से भी अब कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा।

श्यामा शैलेन्द्र के लिए एक पहेली हो गई है। उस की समझ में नही आता किस प्रकार इस रमणी ने अपने प्रेम पाश में उसे बाँध लिया है। इसलिये वह उसका परिचय पूछने लगता है। श्यामा, शैलेन्द्र के प्रश्न—तुम कौन हो रमणी को सुन कर व्यथित हो जाती है। उस का हृदय आशंकित हो उठता है। जिस के लिये उस ने अपना सर्वस्व त्याग किया, सब सुखों को त्याग कर दर-दर की खाक छानी, वही आज उस से परिचय पूछ रहा है। इसी से वह अपनी व्यथा में कहती है—

अपने प्रेम-जीवन की संध्या में अपने हृदय के उस निर्जन कुटी के द्वार खोले, जिसमें अब न गौतम हैं न उदयन हैं प्रेम का दीप जलाए तुम्हारी शैलेन्द्र की हो प्रतीक्षा कर रही थी। तुम केवल मात्र तुम मेरी प्रतीक्षा में जल से डबडबाने से काँप रहे थे। अन्तस्थल में भावनाओं का द्वन्द चल रहा था। अतीत में छलियों द्वारा छली गई थी। लाखों

द्वारा ठुकराई गई थी, तुम भी मल्लिका द्वारा छले गये, प्रसेनजित द्वारा ठुकराये गये। तुम ठुकराये गये पथिक हो, कहीं तुम भी मुझे न ठुकरा दो, तुम्हारे द्वारा भी मैं न छली जाऊँ। मैं नहीं चाहती थी कि मेरे हृदय के इस द्वन्द के, मन की इस पीड़ा को कोई दूसरा जाने। इसी से मैं अपने पलकों को झुका कर, उन से पर्दे का काम ले रही थी। परन्तु पसीने की बूंदों और उमड़ते हुए आँसुओं ने मेरी सारी व्यथा कह ही डाली। और फिर भी तुम मेरा परिचय पूछ रहे हो। क्या तुम्हीं ऐसे रह गये थे जो मुझ से यह प्रश्न पूछता। और अगर कुछ न समझ कर, तुम प्रश्न का उत्तर चाहते ही हो तो तनिक निश्वास और आँसू में मेरी व्यथा को विश्राम लेने दो, मुझे जी हलका कर लेने दो। तुम जिसे चाहो प्यार करो, मुझे इस से तनिक भी दु:ख न होगा। मैं तो इस भावना को ले कर भी शान्ति से मर सकती हूँ, यदि मुझे विश्वास हो जाय कि एक ही क्षण के लिए चाहे क्यों न हो तुम्हें, मेरी एकान्तिक याद आ गई थी। मैं बीती हुई बेला हूँ, मेरा समय चला गया है। वीणा का टूटा हुआ तार हूँ, मेरे जीवन की सरसता के स्वर टूट चुके हैं। और उस व्यक्ति की तरह निरीह हूँ जिस को एक समय प्यार कर के फिर भुला दिया जाता है। काशी में शैलेन्द्र के और वत्स में उदयन के व्यवहार से श्यामा-मागंधी समझती थी शायद शैलेन्द्र उसे प्यार करता है, उदयन चाहता है। मैं बीती हुई बेला, टूटे हुए तार और भुलाए हुये प्यार की तरह निरीह होने पर भी तुम्हारी भावना के लिए सुख से मर सकूंगी। तुम्हें प्यार कर इस स्थल पर एक दिन मैंने आँसू बहाए थे, मेरे मरने के बाद यह बात एक कहानी मात्र रह जायगी।

विरुद्धक, कौशल छोड़ कर काशी चला गया। वहाँ, शैलेन्द्र बन गया। श्यामा से उसका संबंध जुड़ा, पर मल्लिका को वह भूल न सका। काशी से श्रावस्ती चला आया। प्रसाद ने वर्षा की रितु में शैलेन्द्र को श्रावस्ती पहुँचाया है। कोशल में विरुद्धक के रूप में उसे ग्रीष्म की रातों

मल्लिका के ध्यान में तारे गिनते दिखला चुके। प्रेम के सो जाने पर बाह्य संघर्ष जो उसने काशी में दिखलाया उस में श्यामा के प्रति उस का आकर्षण दबा हुई प्रेम भावना का ठंढा पड़ कर जमा हुआ रूप है उस में हृदय की सरलता नहीं क्रूर कर्मों की बर्फीली जड़ता है। श्रावस्ती लौटने पर वातावरण उस की मल्लिका विषयक स्मृतियों को जागरित करने का कारण बनता है। हिंसक क्रूरता की भावनाओं से हृदय पर पड़ी हुई जड़ता की भावना वर्फ की तरह पिघलने लगती है। धीरे-धीरे वर्षा की रितु उस के हृदय में पूर्व स्मृतियों को अत्यंत तीव्र कर उसकी वेदना की असीम धाराओं में टूट बरसने वाली मेघ-झड़ियों की दशा को पहुँचा देती है। प्रकृति में वर्षा रितु है किन्तु उसी तरह की वर्षा रितु उस विरह विधुर के हृदय में भी आ गई है।

प्रसाद ने अनुभव किया ग्रीष्म में मेघ कहीं नजर नहीं आते बरसात में चारों ओर से उमड़ घुमड़ कर आकाश को छा देते हैं, बिजली चमकाते ये काले घन, घोर शोर कर बरसने लगते हैं। तारे कभी दिखलाई देते हैं, कभी छिप जाते हैं। जुगनू अन्धकार में दीपों की तरह टिमटिमाते हैं। ऐसे समय में प्रेमी का अधीर हृदय विकल हो उठता है। स्मृतियाँ और भी रुदन करने लगती हैं। वर्षा को लक्ष्य कर विरुद्धक और विरुद्धक के रूप में प्रसाद अपने हृदय की भावनाओं को व्यक्त कर रहे हैं।

"हे बादलों के समूह! इतने दिनों तक क्या तुम मेघदूत की अलका की किसी विरहिणी की पलकों में सुख पूर्वक सो रहे थे। जिस समय कोई विकल विरहिणी रोती है उस समय उसकी आँखों से इतने आँसू गिरते हैं, मानों वर्षा रितु आ गई हो। इसलिए, संभवतः हे मेघ! तुम उस विरहिणी की आँखों को बरसने का काम सौंप कर चैन की नींद सो रहे थे। तुम्हें क्या आज कमल बन (आँख हाथ, पाँव)के भस्म हो जाने का ख्याल आया है तुम्हें क्या यह संकोच हुआ है कि कमल-वन, ताप से मुरझा जायँगे, आँखें विरह-ताप से भस्म हो जावेंगी, तुम में इतनी

सहृदयता (गर्मी) कहाँ से आ गई ? कमलों का मुरझाना तुम नहीं देख सकते। जल देने वाले में गर्मी न होनी चाहिये थी ! तुम जो इस प्रकार आकाश में झुके हुए हो क्या वह किसी के शोक में हो, शोक में मनुष्य का सिर झुक सा जाता है, वह चिन्ता-ग्रस्त हो जाता है। अब तक नहीं बरसे क्या किसी निर्दयी के ठंढे हृदय की शीतलता पा कर तुम जम कर बर्फ हो गये थे। हे करुणा के सर्वस्व, आकाश के तारा आँसू पोंछ कर छिपे ताराओं को प्रकट कर विजली के व्याकुलता और पपीहे से करुण पुकार ले कर किसलिये रो रहे हो। तुम में हृदय की विजली जैसी तड़फन और पिय की पपीहे जैसी रटन कहाँ से आ गई, तुम में न व्याकुलता ही थी, न तुम्हें रोना ही आता था और न तुम्हारे पास आँसू थे, दूसरों से इन चीजों को छीन कर तुम किस के वियोग में तड़फ कर अपनी व्याकुलता बरसा रहे हो ? जान पड़ता है किसी के मानस निधि में बड़वानल छिपा था। प्रणय प्रभाकर से बल पा कर वह बड़वानल प्रबल हुआ और इसी के फलस्वरूप तुम आकाश मस्तक में एक छोर से दूसरे छोर तक छा गये। निराशा के इस घोर अन्धकार में स्मृतियों के ये जुगनू दीपक जल रहे हैं। कब्रों पर दिये बाले जाते हैं, फूल चढ़ाये जाते हैं। वे फूल, प्रेमी की स्मृतियों के प्रति व्यक्त हुई भावना के प्रतीक हैं। प्रसाद उन से प्रभावित हुए हैं। फारसी साहित्य का यह प्रभाव है। संस्कृत का प्रभाव 'अलका की किस विकल विरहिणी' में और अङ्गरेजी का प्रभाव 'किस'·'कौन' आदि प्रश्नों तथा 'बर्फ समान जमे रहे' आदि में है। इसी प्रकार बंगला शैली का भी अनुकरण इस कविता में प्रसाद ने किया है। इन सभी शैलियों के कारण उन की कविता में तथा निराला, पंत, महादेवी आदि की शैलियों में वह वक्रता आई है जिस से परिचित न होने के कारण, इन कवियों की कविता छायावादी कहलाई और स्वयं ये कवि छायावादी के नाम से पुकारे गये। मार्ग में तथा कब्र पर फूल बिछे हैं। किस की आशाओं की समाधि पर ये फूल चढ़ाये

गये हैं, ये जुगनू दीपक बाले गये हैं तुम विदेश गये व्यापारी की भाँति थके माँदे से मंथर गति से घर लौट रहे हो। तुम्हें क्या किसी से प्रेम था जो आज रह रह कर स्मृति की तड़फा देने वाली बिजली तुम में कौंध जाती है ?

इतने दिनों तक मल्लिका के प्रति जो प्रेम, विरुद्धक के हृदय में, परिस्थितियों के कारण दब गया था, ठंडा पड़ गया था, सो गया था, वह आज अनुकूल वातावरण में पुनः जागरित हो कर उसे रुला रहा है। इस से उसे प्रकृति भी किसी के वियोग में अपनी ही तरह रोती नज़र आ रही है।

चल वसंत बाला के अंचल ....अवशेषों के पास। विम्बिसार ने देखा विरुद्धक और अजात, सम्राट् हुए हैं, पर, प्रसेनजित और विम्बिसार को मिटा कर। आज के उल्लास आनंद का वह अपने मिट जाने के कारण पूरा आनंद नहीं उठा सकता। अपनी भावना के अनुकूल ही गीत उसे नेपथ्य से सुनाई देता है।

पुराने पत्तों को शिशिर का पवन वृक्षों से गिरा देता है। बसंत के आने पर नये फूल, नये पत्तों से वृक्षों की शाखाएँ भर जाती हैं पर पुराने पत्ते उन की शोभा को देखने को नहीं रह जाते। पत्तों पर पाँव धर कर जब कोई चलता है तब पत्ते अपनी व्यथा से मानो कराहते हैं। उनको छू कर चलने वाली लू में एक आह होती है। उन की सूखी नसों से निर्दयता का इतिहास व्यक्त होता है। शीत में प्रकट हुई इन भावनाओं में विम्बिसार अपनी जीवन गाथा को ही सुन रहा है ....

सूय के अस्त हो जाने पर बसंत बाला के अंचल से चल कर न जाने किस घातक सुरभि से मत्त हो कर मलयानिल की लहरें आतीं, झोंके आते हैं। बसंत में सूर्यास्त के पश्चात् सुगंधित पवन चलने लगता है। यह पवन भौरों के साथ संधि कर लेता है। इस ने सायंकाल की लालिमा में उसा नदी के उस पार, दूसरे तट पर विचरण कर पत्तों को,

नये फूलों के खिल जाने का लोभ दिया। वे पत्ते बहकावे में आ गये। पर इस पवन ने उन का रस चूस लिया। बिम्बिसार ने गौतम के कहने से किन्तु अनिच्छा के साथ अजातशत्रु को राज्य दिया था किन्तु अजात के राजा होने के उद्योग में अनेक यातनाएँ बिम्बिसार को भोगनी पड़ी जो पत्ते अभी कुछ समय पहले डाल से लगे थे, उस की शोभा बढ़ा रहे थे, बन-बाला का शृङ्गार कर रहे थे, वन:देवी जिस पर भूल रही थी, उन्हीं पत्तों को आशा दिला कर, इस पवन ने अपने गले लगाया। वे पत्ते रोकने से भी नहीं रुके जीवक ने बिम्बिसार को राज्य छोड़ने की सलाह दी थी। इस पवन ने उन्हें हिलाया, बहकाया और अपने झोंकों से उन्हें न जाने किधर को उड़ा लिया वे कुम्हलाए, सूख गये और मुरझा कर वृन्त (टेंपुली) से अलग हो गए। बसंत के डालों फूलों, झोंकों से घायल होकर वे गिर पड़े। हे क्रूर बसंत व पवन के द्वारा पुराने पत्तों को सुखा तू जब मार डालता है तब नये पत्तों की फूलों भरी शोभा हँसी को देखने वाला कौन रह गया। जिनके लिए तूने फूलों को हँसाया विकसित किया, खिलाया वे पत्ते अब एक कहानी भर रह गये हैं। अतीत से भी दूर की चीज हो गये हैं। उन पत्तों की एक एक नस में तुम्हारी निर्दयता का इतिहास छिपा है। हे पवन ! अब तू उन सूखे पत्तों के मृत शरीरों के चारों ओर इस प्रकार घूमेगा जैसे स्वयं उन की गर्म आह घूम रही हो।

बिम्बिसार के लिये वसंत ऋतु अब उतनी मन मोहक नहीं हो पाती जितनी वह औरों के लिये है। उस के साथ जो क्रूर व्यवहार किया गया उसे वह भूल कैसे सकता है ! हृदय में ही जब शान्ति नहीं, उल्लास नहीं तब प्रकृति का सारा सौंदर्य भी क्या कर लेगा। वह हृदय की कोकिल को नहीं लौटा सकता जीवन की आर्थिक दार्शनिकता का संकेत भी यह कविता दे रही है। साथ ही शिशिर और बसंत का भी वर्णन इस में है

अजात शत्रु में एक प्रकार से हेमन्त की प्रत्यक्ष छाया को छोड़ कर बाकी सभी रितुओं का वर्णन अथवा समावेश कर दिया गया है। इस से भी बड़ी बात यह है कि वृक्ष में अपना, पत्तों फूलों के झड़ने में अपनी आशा, अभिलाषाओं के टूट जाने का और वसंत बाला के रूप में अपनी प्रेयसी का तथा बसंत वायु के रूप में प्रेम की आँधी और समय के फेर का संकेत प्रसाद ने दिया है। बसंत नये पत्ते नये फूल लावेगा पर टूटी आशाएँ फिर न जुड़ेंगी। प्रसाद क्षीण होते हुए निराशा प्रेमी थे,।

✓सम्राट् होना लोग बहुत बड़ी बात समझते हैं। उस पद को पाने के लिये ईर्ष्या द्वेष से भर कर मनुष्य षड़यंत्र करते हैं। हत्यायें करते हैं और स्वयं भी दूसरों की ईर्ष्या के पात्र बनते हैं सम्राट् का पद, दिखलाई देने में गंधर्व नगर के प्रकाश की तरह मन मोहक है किन्तु वास्तविकता में काँटों भरा स्थान है, जिस की विषैली वायु में रह कर कोई कभी सुखी नहीं हो सकता। मानसिक शान्ति किसी को वहाँ रहकर मिल नहीं सकती। बिम्बिसार अपने जीवन में इन बातों को देख चुका है। अशान्त होकर सोच रहा है।

राजा होने से साधारण मनुष्य होना अच्छा है। राजा के जीवन में पग पग पर काँटे बिछे हैं वह सुख से नहीं रह सकता। साधारण मनुष्य जिस के पास कुछ छीन जाने को नहीं है, चिन्ता करने को नहीं है चैन की नींद तो सो सकता है। साधारण मनुष्य भी दूसरे के लिये अपना उत्सर्ग अनजाने अनपहिचाने रह कर भी कर सकता है। बन में किसी लता में नये पत्तों के बीच दूसरों की नजरों से बचा रह कर फूल धीरे-धीरे खिलता है चारों ओर अपनी सुरभि विकीर्ण करता है। समीप आने वालों के हृदयों को प्रसन्न करता है। और फिर एकान्त में वही थाले में चू कर अपने अस्तित्व को ही मिटा देता है। मुझे कोई नहीं जानता, पर वह सुख-शान्ति से सामान्य जीवन बिताता हुआ भी लोगों को सुख

दे कर शान्त होता है। फूल की तरह आकर वह सुरभि की तरह चला जाता है उसके लिये लोग लड़ते झगड़ते नहीं। क्योंकि लोगों की नजर उधर जाती ही नहीं वह उन की नजरों से बचा रह कर शान्ति से जीवन बिता सकता है।

परन्तु, मनुष्य तो समाज में रमता है जहाँ तरह तरह के झगड़े हैं। सम्राट बनने से वे झगड़े और भी अधिक बढ़ जाते हैं। तब क्या सम्राट होने से बन का फूल होना अच्छा नहीं झगड़ों के जीवन से सुख शान्ति का सरल जीवन कहीं अच्छा है। फूल होता तो अवश्य है पर वह उत्पात नहीं मचाता, सुख देता है और मिट जाता है। शान्तिमय जीवन उस का बीतता है। पर क्या संसार में रहने वाले सम्राट भी इस सा शान्ति को पाते हैं। वे युद्ध संहार और अशान्ति को बढ़ाने वाले धूमकेतु अवश्य हैं, किन्त जीवन में सुख शान्ति ला देने वाले सुरभित सुमन नहीं। भीषण संघर्षों के उत्पातों को बढ़ा देने वाले सम्राट पद को सुशोभित करने की अपेक्षा अनजाने अनपहिचाने रूप से लोक-हित में लीन रहने वाला सामान्य मानव का जीवन अथवा एकान्त वनों में शान्तिमय जीवन यापन करके लोक कल्याण करने वाले तपस्वियों का जीवन बिताना श्रेयस्कर है। ऐसा ही जीवन अपना भी होता तो यह सब उत्पात क्यों होता अहं भाव के मिट जाने पर सारे जीवन का सुख स्वतः मिल जाता।

बिम्बिसार की ये भावनाएँ अंग्रेज कवि की पंक्ति को याद दिला देती हैं।—

Let me live unseen, unknown,
unlamented, let me die,

और याद आ जाती हैं ग्रे की ये पंक्तियाँ—

Full many a gem of purest ray serene,
The dark unfathomed caves of ocean bear:

Full many a flower is born to blush unseen
And waste its sweetness in the deseıt air.

प्रसाद के नाटकों के सभी भाव पूर्ण स्थल, जीवन की व्याख्या होने के साथ ही साथ घटनाओं के अनकूल तथा परिस्थितियों के परिणाम भी हैं । अजातशत्रु में ऐसी भी कविताएँ हैं जो पहिले संस्करण में नहीं थीं किन्तु फिर भी वे ऊपर से जोड़ी गई नहीं हैं । अजातशत्रु के रचयिता को उन की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उस ने उन का सृजन किया । उन्हें नाटक के बीच उचित स्थान प्रदान किया । वे गीत, वे कविताएँ उस नाटक के प्राणांश हैं ।

इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे ऊपर के जोड़े हुए और अनावश्यक हैं, उन के लघुत्व विस्तार का अलग ही, प्रश्न है । किन्तु इस प्रश्न में भी इतना ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रसाद पाठ्य नाटक लिख रहे थे अभिनेय नाटक रचना करने को उन्हों ने अपना लक्ष्य इसलिये भी प्रधान रूप से नहीं बनाया कि उस के लिये उपयुक्त वातावरण नहीं था । किन्तु कभी रंग मंच विकसित हो सकता है । जनता विकसित साहित्यिक प्रवृति की हो सकती है । इसलिए प्रसाद ने चवन्नी के टिकट वालों के लिये अपने नाटक नहीं रचे वल्कि साहित्यिक तालुकदारों के लिये उन की रचना की है । और शायद इसलिये पहिले संस्करण के वक्तव्य मे कृष्णदास जी ने लिखा था प्रसाद के नाटक आगामी कल को चीज है । कृष्णदास जी का अभिप्राय उस कल से नही था जो कभी नहीं आता । उस कल से-था जो इसी जीवन में आज बन कर कभी अतीत भी बन जा सकता है । और इस अर्थ में वे वर्तमान युग के लिये ही लिखे गये हैं, किन्तु लिखे गये हैं केवल उन लोगो के लिये जो साहित्यिक प्रकृति के सहृदय हैं ।

यद्यपि अभिनय की दृष्टि से प्रमुख रूप से प्रसाद ने अपने नाटकों

को परिस्थितियों को देखते हुए नहीं लिखा है किन्तु फिर भी उन के नाटक ऐसे नहीं हैं जो रंग मंच पर खेले नहीं जा सके। वे खेले गये हैं और स्वयं प्रसाद के तथा अन्य विशेषज्ञों के निरीक्षण में खेल गये काशी, कानपुर, लखनऊ में, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और अजातशत्रु कई बार खेले गये। कई विद्यालयों ने ध्रुवस्वामिनी का भी अभिनय कई वार किया है।

कहा जा सकता है वे खेले तो जाते हैं पर उन्हें देखने उतनी जनता नहीं आती जितनी द्विजेन्द्रलालराय, या राधेश्याम अथवा हसरत के नाटकों को देखने। और फिर जो आते हैं उन की भी समझ में सब चीजे नहीं आतीं और साथ ही खेलने के लिये काटछाट करनी पड़ती है; नाटकों को छोटा ही नहीं करना पड़ता बल्कि कई जगह भाषा भी बदलनी पड़ती है।

बिलकुल ठीक है काट छाँट चाहे वह लम्बाई की हो चाहे भाषा की दर्शकों और समय की सुविधा के अनुसार ही की जाती है मनोरंजन के लिये रात का ही समय सुविधा जनक होता है यदि दर्शकों के पास समय कम है तो नाटकों को सुविधा के अनुसार छोटा करने में कोई बुराई नहीं है। रही, भाषा की जटिलता, प्रयोजन को देखते हुए वह बदली जा सकती है, उसके बदलने में भी विशेष आपत्ति नहीं की जानी चाहिये। अब रहा दर्शकों की संख्या का सवाल है। व्यापार के लिये, सस्ती भावुकता के लिये, चवन्नी वालों के लिये प्रसाद नहीं लिख रहे थे, बल्कि पारसी कम्पनियों की वणिक वृत्ति से फैलने वाली सस्ती भावुकता को रोक कर परिष्कृत रुचि उत्पन्न करने के लिये लिख रहे थे। इसलिये भी उन्हों ने अपनी भाषा को ज़ान बूझ कर भी साहित्यिक बनाया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। भाषा को उन्हों ने ऐतिहासिक कथानकों के अनुकूल यथा संभव रखने की कोशिश की है ऐसा करने से वे युग के जीवन को सशरीर अपने नाटकों में ला सकने

में बहुत कुछ हद तक सफल हुए हैं। किन्तु उन की भाषा पर सब से बड़ा आक्षेप यह लगाया जाता है कि वह एकाएक समझ में न आ सकने वाली है। इस के उत्तर में सब से पहिले पूछा जावेगा किस की समझ में नहीं आती ? सामान्य पढ़े लिखे लोगों की समझ में, या अपढ़ लोगों की समझ में, अथवा परिष्कृत साहित्यिक रुचि के उन लोगों की समझ से जो युग के साथ चलते हैं, युग की भाषा शक्तियों से परिचित रहते हैं, और उन का उपयोग भी करते हैं; पहले दो वर्गों के लिये प्रसाद की भाषा अवश्य दुरूह हो सकती है पर तीसरे वर्ग के लोगों के लिये कदापि नहीं।

समझ में न आ सकने के ही कारण पहले दो वर्गों के लोगों ने ही प्रसाद की भाषा तथा वृतियों को उलजलूल तथा छायावादी कहा है। तीसरे वर्ग के लोगों के लिये प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी का साहित्य न तब रहस्यवादी-छायावादी था और न आज ही है। वे इन लोगों को तब भी यथार्थवादी, अथवा मानव वासनाओं के कवि के रूप में पहिचानते थे अब भी उन्हे इसी रूप में जानते हैं। इन कवियों के अभिव्यंजनाओं में विभिन्न शैलियों के मिश्रण हैं। इन की जटिलता अनुभूति अभिव्यक्ति की जटिलता है, भावनाओं तथा सामग्री की नहीं।

—:*:—

७ 'आँसू'-वेदना

अनुभूति और अभिव्यक्ति की जटिलता ने प्रसाद की कृतियों को जटिल बनाया है 'आँसू' भी इस बात का अपवाद नहीं, कालिदास के मेघदूत के जिस प्रभाव को अजातशत्रु में देखते हैं वह जीवन की परिस्थितियों के कारण 'आँसू' की वेदना में भी लहरा रहा है। अपने जीवन के प्रखर मध्यान्ह में प्रसाद ने जिस सौंदर्य-श्यामा के दर्शन किये उसे सहचरी के रूप में न प्राप्त कर सकने के कारण प्रसाद के हृदय पर जो कुछ बीती उसी की एक टूटी फूटी गाथा आँसू है।

दुःख की भावना ने हृदय को सौंदर्य प्रदान किया। उस हृदय में करुण भाव उठने लगे। करुणा का जन्म क्यों हुआ इस का उत्तर दुखी हृदय प्रसाद के पास नहीं है, किन्नर कवि कालिदास के पास है—'भाव स्थिराणि जननान्तर सौहृदानी'। प्रसाद इतना ही कह सकते हैं दुखी हृदय में वेदना है, सागर की विक्षुब्ध खारी लहरों का-सा क्रन्दन गर्जन है। मन जो कि मानस की भाँति शोभन था उस में कड़ुवाहट भर गई है, सागर वह बन गया है, भावनाओं से भर गया है। शोक से हृदय विकल हो रहा है, किन्तु बीती बातों का स्मरण, दुख में भी आनन्द ला रहा है। शेक्सपियर के हृदय ने भी स्मृति के समय अनुभव किया था, 'मेरा हृदय बार-बार स्मृतियों के जगने से ऐसा रोता हैं जैसे मानो पहिले कभी रोया ही न हो।' हृदय में अभाव है, जिस के प्रति भाव है, उसे अपने प्रति भाव नहीं। शून्य में इस अभाव को लीन हो जाना पड़ता है, कोई व्यथा समझने वाला होता तो उत्तर देता। हृदय की अभाव भावना शून्य से लौट आती है, आश्रय

न पाने से पगली-सी दर-दर ठोकर खाती बिलखती रहती है। व्यथा की आकाश-गंगा में, जिस के दोनों किनारे इतने फैल गये हैं कि दिखलाई नहीं देते--दुखी हृदय की चेतना नदी हिलोरें लेती है। आकाश-गंगा तक पहुँच नहीं। वह आनन्द नहीं देती, वेदना बढ़ाती है।

हृदय में बेदना पहले थी, स्मृतियों की बस्ती अब बस गई है। आकाश के तारों की भाँति ये स्मृतियाँ भी आशा दिलाने वाली हैं दुख के दिन कट ही जावेंगे कभी न कभी तो सुख का मंगलमय प्रभात होगा। हृदय में जो व्यथित भावना है उस से जो चिनगारियाँ उठ रहीं हैं वे ही ये स्मृतियाँ ये तारे हैं जो कि जलते हृदय के अंगारे हैं। कभी प्रिय से मिलन हुआ था उसी के अवशेष चिन्ह ये हैं। गालिब ने भी एक दिन लिखा था 'इश्क से तबियत ने ज़ीस्त का मजा पायो। दर्द की दवा पाई, दर्द बे-दवा पाया।'

समय के अन्तर से विरह के ज्वालामुखी का वेग ऊपर से शान्त हुआ जान पड़ता है अन्दर आग जलती ही रहती है। बाहर से घाव भरा हुआ लगता है अन्दर वह भरता ही नहीं। उन्माद नहीं; पागलपन नहीं, बाहर का वेग शीतल पड़ गया है पर अन्दर ज्वाला जल ही रही है। साधारण ज्वाला से भिन्न यह आग है। यह न जलने वाली वस्तु आँसुओं को जलाती है। श्वास से बुझने के बजाय और भी तीव्र हो जाती है जीवन भार स्वर प्रतीत होने लगता है। प्रणय-सिन्धु के तल में प्रेम की अग्नि बड़वानल की भाँत सोती थी। प्रेमाग्नि बाहर नहीं दिखलाई दे रही थी वेदना गुप्त थी। प्रिय के रूप में डूबी, प्यासी मछली के समान आँखें विकल रूप से चल रही थीं। मन को उस रूप ने मोहित कर लिया। प्रणय-सागर के बुलबुले फूट गये, जितनी आशाएँ थीं वे नष्ट हो गईं, प्रेम के सफल होने की कोई उम्मीद न रही। रूप साहचर्य से नक्षत्र प्रणय सिन्धु के बुलबुलों की मालिका बनी, सौभग्य चमका, धरणी के आभरण नक्षत्र थे। नव यौवना धरणी-बाला के नभ

केशों पर यह नक्षत्रमालिका मोती पिरोये थी। दिन फिरे भाग्य में कमी हुई नभ मुक्त कुन्तला धरणी लुट गई। छालों को फोड़ने से घाव और बढ़ जाता है। प्रेम के छालों को बहुत वेदना दी। प्रिया ने अपने चरणों से छालों को फोड़ा तो आँसू बह रहे हैं। इन आँसुओं में कोरा पानी नहीं, प्रेम के फूटे हुए छालों का पानी है निर्दयता करने वाले वे चरण कोमल थे।

कौन व्यक्ति है जो, सुख को निकाल कर इस विकल वेदना को रखना चाहता है? वेदना उस मनुष्य का अस्त्र है जिस ने सुख को ललकारा है। वह ललकारने वाले हमारे हृदय का चेतन है जो इस समय विरह-वेदना के कारण अबोध, बेसुध, अज्ञानमय, अकिंचन हो रहा है। भाव उस समय किस रूप में होते हैं? प्रिय ही दिखाई दिये। स्मृति हुई तो हृदय में अभिलाषा जागती है। जागते समय मनुष्य इधर-उधर करवट लेता है। अभिलाषा जागने के लिये करवट लेती है, ज्यों ही करवट वह लेती है भूली हुई बातें याद आ जाती हैं। सुख वास्तविक न रह कर स्वप्न हो गया तो दुख हुआ, परिणाम में आँसू बहे और भार हलका हो जाने से व्यक्ति को नींद की गोद में विश्राम मिल जाता है। हठीला बालक अभिलषित वस्तु को न पाने से रोते-रोते सो जाता है। आँखों में लगातार पानी की वर्षात है। घनानन्द के जीवन में ऐसा समय आया तो उन्हों ने कहा था, 'बदरा बरसे रितु में घिरि के अँखियाँ नित ही उघरी बरसें' प्रसाद के आँसू की इन पंक्तियों की अँगुली पकड़ कर मैथिलीशरण की उर्मिला, बालक को ज्योत्स्ना का धवल बसन ओढ़ाती है।

हृदय कमल को प्रिय की अलि अलकों (भौंरों जैसी घुँघराली लटों) की उलझन ने घेरा है। मकरनन्द भरे कमल के चारों ओर भौंरे मँडला-मँडला कर रस-पान कर रहे हैं। मकरन्द कम्पन से गिर भी जाता है वायु में मिल जाता। हृदय का (आनन्द रस) सौंदर्य, प्रिय

की घुँघराली लटों की स्मृति से अथिर हो कर आँसू के रूप में मकरंद बिखर रहा है। प्रिया के अभाव से उत्पन्न हुआ ताप इन आँसुओं को वस्त्रों पर गिरने से पहिले ही श्वास-पवन द्वारा भाप बना कर उड़ा देता है। ताप के आधिक्य में दुख का आधिक्य प्रदर्शित किया है। प्रिया के दर्शन से मन बहला रहता था। पर अब वह, मधुर प्रेम की स्मृति हृदय को पिला देती है। सुख आहत है, घायल पड़ा है। उमंगें शान्त हैं, लहरों की भाँति चंचल होकर नहीं उठ रही है। नैराश्य की अवस्था है। साँस लेना बेगार ढोना हो रहा है, जीवन, भार प्रतीत होता है। हृदय पुरानी आशाओं की समाधि बन गया है। आशाओं के मरने से करुणा रोती है, अश्रु निपात होता है। योगी, ब्रह्मलीन होता है तो समाधि रत होता है। वह कभी मरता नहीं है, वह काल को वंचना (धोखा) देता है। उस का शरीर जलाया नहीं जाता है। जो भाव समाधि (अन्तर) में अमर हो गये हैं वे कभी मरते नहीं हैं। हृदय के भाव कभी भूले जाने वाले नहीं हैं।

विरह में प्रेमी की जो दशा हो रही है उसी का वर्णन वह कर रहा है—'मेरी कथा करुणा (दुःख) से गीली है आँसुओं से भीगी है। लम्बी नहीं छोटी सी कहानी है, सिर्फ इतनी ही कि प्रिय से मिलन नहीं हो रहा है। चातक अपने पिय की पुकार मचाता है। वर्ष भर उसकी पुकार पूरी नही होती। प्रिय उस की ओर देखता तक नहीं किन्तु चातक इस की कब परवाह करता है। वह निरंतर रट लगाये ही रहता है। स्वाति नक्षत्र में जल बरसता है, चातक चकित हो कर फिर भी पुकार करता ही जाता है। मेरी याद चातक को चकित पुकारों की तरह है जो प्रिय की पुकारों से कभी विरत नहीं होती है पर यह मीठी है इस में कुटिलता नहीं है। कोयल की ध्वनि की-सी मिठास इस में है। जो सुखी हैं, अपने सुख में जिन्हें याद भी नहीं कि जीवन में कभी दुख भी आ सकता है जिन का दुःख इस समय सोया हुआ है वे मेरी

करुण व्यथाओं को क्यों सुनेंगे, उन्हें फुर्सत ही कब है ? घनानन्द ने अपने दुख की दशा में 'आरतिवंत पपीहन को घन आनन्द जू पहिचानौ कहा तुम' का उपालम्भ देते हुए कहा था—

'ले ही रहे हो सदा मन और को, दैबौं न जानत जान दुलारे।
देख्यो न है सपनेहुँ कहूँ, दुख त्यागे सकोच औ सोच सुखारे॥
कैसो सजोग वियोग धौं आहि, फिरो घन आँनद है मतवारे।
मो गति बूझि परै तबहीं, जब होहु घरीकहुँ आप ते प्यारे॥

वर्षा जब आई तब उन के स्वर थे—

घन आनंद जीवन मूल सुजान की, कौंधनि हूँ न कहीं दरसै।
सुन जानिये धौं किटै छाय रहे दग चातक प्रान तपे तरसैं॥
बिन पावस तो इन्हें थ्यावस हो न सु क्यों करिये अब सो परसैं।
बदरा बरसे रितु में घिरि कै, नित ही अखियाँ ऊघरी बरसैं॥

विरही जयशंकर अपनी जीवन कथा कह रहे हैं—जीवन की जटिल समस्या जटा की भाँति उलझी हुई है, सुलझती ही नहीं। योगी, जीवन की समस्या सुलझाता है पर जटा नहीं। जोगी के समान मेरा हृदय सुलझा नहीं है। मानस-सागर में जल नहीं है। नीरस हो गया है, वह प्रेम नहीं रहा। उस में धूल उड़ रही है। योगियों की भी ऐसी विभूति कहाँ है कि प्रेम पीड़ितों की है। प्रेम में तड़फना ही वैभव है।

जब तक पीड़ा सारे शरीर में फैली होती है दुख अधिक नहीं होता किन्तु जब सिमिट कर मस्तक में आ जाती है। जीवन पर तब उस का गहरा प्रभाव पड़ता है। सागर के जल को सूर्य ने वाष्प रूप में उठाया फिर वर्षा हुई। इसी प्रकार हृदय की भावना (पीड़ा , भाप , स्मृति) के रूप में मस्तक में छा गई। हृदय में जिसकी अनुभूति करता था, मस्तक में वह स्मृति के रूप में आई। दुर्दिन वर्षा का दिन था। वर्षा बरसती है प्रिय नहीं मिलते। मस्तक में छनी हुई पीड़ा आँसुओं के रूप में बरसने लगती है।

तुम पसीजते नहीं हो; मैं रो रहा हूँ, तम को इस में आनंद आता है। मेरे क्रन्दन में कोई राग है क्या ? क्रन्दन का अंत नहीं, तुम नहीं पसीजते। इन आँसुओं के धागों में तुम इस करुणा रूपी वस्त्र को बुन रहे हो। मेरा विरह, आँसुओं के धागों से बन रहा है। प्रिय (सुन्दरता) इस वस्त्र को बुन रही है। मैं रो-रो कर, सिसक-सिसक कर अपनी करुण कहानी कहता हूँ, पर तुम्हें दया कहाँ आती है ? तुम तो क्रूर कर्म ही करते जाते हो, सुमन को नोंचते रहते हो, जानते हुए भी मेरी बात को नहीं जानना चाहते हो। मैं बेसुध था, अंतर के तार खिंचे थे, तो भी स्वर नहीं निकलते थे। अंतर की विरह से भरी तान तीखी थी। हृदय में प्रिय का निवास था। हृदय में प्रिय जब तक थे समय व्यतीत करता था पर जब वह हट गई तो हृदय शून्य हो गया, आपत्तियों ने हृदय में बसेरा डाल दिया है। प्रिया होती तो ऐसा नहीं होता, ये विपदाएं नहीं आती, प्रेम की भावना नहीं है तो दुख की भावना ने डेरा डाल दिया है चन्द्रकुँवर ने छोटे गीत में कहा है—

क्या सहा और क्या नहीं सहा ! क्या कहा विश्व ने क्या न कहा !
जब तक तुम थे उर के भीतर, आशा थी, सुख था पृथ्वी पर
अब तुम न रहे कुछ भी न रहा।

घनानंद ने भी कुछ इसी प्रकार की बातें कहीं थीं।

प्रलय के बादलों की तरह आँसू गिर रहे हैं, निराशा की अंधकार मय धूल चारों ओर बरस रही है। हृदय में आशा का प्रकाश नहीं रहा, निराशा का अंधकार पूर्ण रूप से छा गया। प्रलय काल में बिजली सहसा चमक जाती है आशा की मुस्कान उसी बिजली की तरह क्षणिक थी। उस मुस्कान ने चंचलता को रोक दिया, विश्वास होने लगा कोई था जो रस बूँद बरसा रहा था वह कोई कौन है कह नहीं सकता ! 'छोटे गीत' में चन्द्र कुँवर ने भी कहा है---

बिजली-सी क्षण भर वह आई, स्वर्ग की कौंध दृग में लाई,

देखे मैं ने गिरि-ग्राम-नगर, देखा तम का प्रदीप्त अन्तर !
सब ओर अँधेरी फिर छाई ?

विरही के लिए यह संसार झूठा है । उस को यदि इस झूठे जग में कोई सत्य दिखलाई देता है तो वह चिर सुन्दर है जो रस की बूँद बरसा देता था उस के लिए जीवन में और कोई साथी नहीं । रात जब निर्जन थी, दीपकों के स्थान पर तारे जल रहे थे उस समय आकाश-गंगा की धारा में जो बड़े-बड़े तारे दिखाई दिए वे ही उपहार से हैं-उज्ज्वल रत्न हैं । प्रिय से ऐसे समय में भेंट हुई थी । आज स्मृति मात्र रह गई है ।

यह तुम्हरा गौरव था कि मुझ से मिलने के लिए उतर आए । उस गौरव को देखकर मैं भी गौरवान्वित हो गया और मैं इठला उठा जैसे कोई सुबह से स्वप्न देख रहा हो, सुबह का स्वप्न मानो वास्तविकता का रूप धारण कर आया हो । सुबह के स्वप्न सच्चे नहीं होते । प्रियतम का मिलन भी नहीं होता, पर वे स्वप्न वास्तविकता लिए थे । 'अजात शत्रु' के विरुद्धक ने मल्लिका के प्रेम-सौंदर्य के जो स्मृति स्वप्न देखे थे वे आँसू में भी दिखलाई देते हैं और स्कन्दगुप्त के मातृगुप्त की मालिनी विषयक स्मृतियों में भी ।

मीठी पूर्णिमा की रात में मैं ने तुम्हें पहिले पहल देखा था तो सुख-शान्ति थी । उस समय तुम्हें देख कर यह जान पड़ा कि तुम अनंत काल से मेरे परिचित हो । उस समय मेरे सुख के दिन थे । यह मानो पहली दृष्टि में प्रेम हो जाना था । मालूम होता था कि मानों दोनों हृदय एक दूसरे के लिए बनाए हुए हैं । पूर्णिमा की रात्रि में सागर से ज्वार के रूप में पानी उठता है । उधर चन्द्रमा की किरणें नीचे आती हैं । लहरों से मिलती हैं । इस मिलन को एक टक हो कर देखा करता था । कवि की सूझ के द्वारा मैं उस छवि का दान सुकवि को कर देता था जिससे वह सुन्दर कविता बनावे । और इस प्रकार से कवि प्रतिभा की डाली भर लाता था जिस से अपनी कविता में गूँथ कर सुन्दर कर

ले। माधवी-कुंज की छाया में झरना जैसे बहता है उसी प्रकार मेरी चेतना मंत्रमुग्ध हो कर उस चेतना को धारा में बही जा रही थी उस का मुझे सुख हो रहा था। विरह के समय पतझड़ था अब सुख के दिनों का बसन्त है। विरह की आकुलता के बीतने पर वह अवस्था आती है जिस में प्रेमी से मिलन होता है 'नंदिनी' के कवि चन्द्र कुँवर ने इस अवस्था को शरद-ज्योत्स्ना की सुन्दरता के रूप में चित्रित किया है---

बीत गई वर्षा, अब स्वच्छ विमुक्त गगन है,
सिर के ऊपर अब न वज्र करता गर्जन है,
छोड़ दिया अब घिरी दिशाओं ने नित रोना,
उज्ज्वल खिलता, धुली हुई पृथ्वी का कोना,
बीत गया अब, उमड़ी सरिता का यौवन है,
सिर के ऊपर अब न वज्र करता गर्जन है!
लौट शरद की रितु आई, फिर इस जीवन में,
हँसे-चन्द्र तारे, मेघों से मुक्त गगन में,
स्वच्छ हुए जल सरिताओं के, स्वच्छ सरोवर,
भरी मोतियों से दूर्वा की पलकें सुन्दर,
फैल गई नभ की स्मिति, पृथ्वी के कण-कन में,
लौट शरद की रितु आई, फिर इस जीवन में!

प्रिय के मिलन के विषय में आँसू का कवि कहता है तुम, कब आए? कैसे आए? जीवन की गोधूली में कौतूहल से, अप्रत्याशित से, अव्यक्त से आए, तुम इस तरह आए जैसे कोई नव-वधू, चन्द्र मुख पर घूँघट डाले आती है। रात्रि में एक स्थान से दूसरे स्थान जाते समय, दीपक, आँचल की ओट कर लिया जाता है। दीप-शिखा, (प्रिया, माया-आँचल), कुतूहल, अप्रत्याशित अवस्था में परिचित का सहसा आना है। बाल्यावस्था, युवावस्था में जीवन के संघर्ष से छुट्टी नहीं रहती। वृद्धावस्था की संध्या, निराशा की काली चादर तान कर मृत्यु रात्रि की सूचना देने जब आती

है तब कहां मनुष्य का परमात्मा की ओर ध्यान जाता है। वह सोचने लगता है कि अब तक बेकार ही समय व्यतीत किया। इस दशा में परमात्मा की ज्योति को जो कि छिपी होती है जान ने की इच्छा होती है। विरही जब यह भूल जाता है कि किस के विरह में हम दुखी हैं, प्रिया के आ जाने से उसे तब ऐसा कुतूहल होता है जैसा अपरिचित व्यक्ति को सामने देखने से होता है। जिस के आने की आशा नहीं थी वह सहसा आया इसलिए कुतूहल हुआ। मुख देखा नहीं है फिर भी शशि-सा अनुमान किया है। बादल में बिजली होती है। बिजली में चमक। आँखों में काली पुतली है। पुतली में झलक व्याप्त है। तुम्हारे आने से पूर्व मैं प्रतिमा-सा था। तुम्हारे आने पर मुझ में प्राण से आए। आँखों में सजीवता, हृदय में एक प्रभाव (लकीर), स्मृति (याद) थी जो सब से अपूर्व थी, ऊपर थी। और भी कई बातों के प्रभाव थे, पर तुम्हारी स्मृति का प्रभाव सब से ऊपर था. वह कभी भुलाई नहीं जाती थी। अतुलित रूप की सीमा बड़ी सुन्दर होती है पर उस के लिए गर्व नहीं करना चाहिए। यौवन काल में रूप जब और भी बढ़ गया था तब मेरे मन रूपी निस्सीम आकाश में इस रूप सीमा के पंख समा गये थे। उस अतुलित सौन्दर्य को उड़ने का स्थान न था। रूप जो चला जायगा उस के पंख या उड़ जाने की शक्ति भी नहीं। जिस समय उस के पर थे उस समय इस की उड़ान मेरे मन में समा गई थी। अब चाहे तुम में रूप है नहीं पर मेरे मन में वह रूप समा गया है जो श्रेष्टतम था। मुझपर वह, प्रभाव डाल गया है मैं उसी को देखता हूँ। उस समय रूप लावण्य का पर्वत भी उस के सामने राई के समान था। तब उस कमनीय कला-सौन्दर्य की सुषमा ही प्यारी थी।

रूप के प्रभाव की आत्मानुभूति के साथ ही साथ रूप का भी वर्णन है-चन्द्रमुख है और बाल गिर रहे हैं। चन्द्रमा, काली जंजीरों से मानो बाँध दिया गया है। वेणी सर्प के समान है उस में मणि है।

दाँतों की पंक्ति को हीरा कहा है। साँप के मुख में हीरे जड़े हैं यह एक अनिश्चितता को दूसरी से दबाने के लिए कहा गया है। आँखों में गुण तीन होते हैं--'अमी हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार' (रसलीन)। यहाँ वस्तु का रूप सामने आता है और एक प्रकार की भावना भर जाती है। आँखें सजल हैं। यह जल अतृप्ति का जलधि-सा है इस में नीलम की नाव आँखें तैर रही हैं। अंजन की काली रेखा कूल है जिस में काला पानी भरा (निर्वासन स्थान) है। इस काले पानी की चमक में अतृप्ति-सी भरी है। वह हमें अनंत के निर्वासन के लिए ले जा रही है। हमें काला पानी हो गया है। क्षितिज की चित्रपटी पर जो लालिमा दिखाई देती है वह मानो तेरी रूप कूची बरौनी ने मनुष्यों के घायल हृदयों का चित्र खींचा है। इन बरौनियों से न जाने कितने हृदय घायल हो चुके हैं। मनुष्य जब मुसकाता है अधरों के पास ही रेखा तब पड़ जाती है। वह रेखा सीधी-सादी होती है किन्तु, लोगों के हृदय को आकृष्ट कर के वह, कुटिल हो जाती है। श्वेत और रतनार (मूँगे के समान लाल) कोये किस उद्देश्य से ये दोनों रक्खे हैं ? आँखों के संबंध में नासा, तोता है। यहाँ हंस नहीं तो मोती क्यों रक्खे गये हैं ? नासा, तोते के समान है, आँसू मोती के समान। इन आँसुओं का बहना व्यर्थ हो जाता प्रेमी यदि इन आँसुओं को पहले देखता तो विकल हो जाता। ओट में रहने वाले इन मुक्ताओं (भावों) से छक जाता। फूले हुए वैभव के अंचल में प्रभात के समय खिले कमलों के वैभव का भी उपहास हो जाता है। प्रभात काल में खिले हुए कमलों की शोभा, प्रिया की हर्ष उल्लास की हँसी के सामने कुछ नहीं है ! प्रेमी प्रेम के कारण प्रिया को क्रूर समझ रहा है। मुख-कमल के समीप दो कान दो नये कोमल कमल पत्रों के समान शोभा दे रहे थे। साथ ही कमल पत्रों की विशेषता भी उन में थी। जिस तरह जलविन्दु' कमल-किसलयों पर नहीं ठहरते, उसी भाँति उन कानों में दुख के कण

भी नहीं ठहरते। अलबेली बाहुलता उसी प्रकार सुन्दर थी जिस प्रकार कामदेव के धनु की दुहरी शिथिल प्रत्यञ्चा, (बाहु पाश का ध्यान कवि को हो रहा है) अथवा शरीर शोभा के सरोवर की अलग अलग हुई दुहरी नवीन लहरी। रूप का वस्तुरूप में वर्णन है। गीत-माधवी और नंदिनी का कवि इस प्रकार के वर्णन में हिन्दी के सभी आधुनिक कवियों से सर्वोपरि है। आँसू का कवि कहता है, चन्द्र कान्ति के समान शीतलता देने वाली काँचन वर्णा उस शरीर की शोभा थी। आलोक से युक्त वह शोभा ऐसी थी मानो चंचला किसी पर्व पर ज्योत्सना चन्द्रमा (की किरणों) में स्नान कर आई हो वह छलना थी वास्तविकता नहीं थी, तब भी मुझे उन में घना विश्वास था। ऐसा मालूम होता था कि उस माया की अवास्तविकता में भी मुझे विश्वास था कि माया के आवरण में सत्य स्वयं हो। माया के आवरण में वह रहता है जो वर्णन नहीं किया जा सकता, इसलिए 'कुछ' कह कर कहा है। माया के आवरण में कुछ ऐसी वस्तु थी जो सच मालूम होती थी। उसमें लुभाने की ही शक्ति थी। वह आकृष्ट नहीं हुई। उस की ओर झुकाव इस कारण था कि मैं चेतन था। वह प्रभावित नहीं हुई। जान पड़ता था शायद उस में जड़ता की भावना थी। वह रूप ही रूप था। उस में हृदय था ही कहाँ, होता तो क्या उसे दया न आती ?

उन की अलकें बिथरी थीं उन अलकों की उलझन में मेरा मन भी उलझ जाता था। जब तक उन को देखा नहीं था चैन नहीं होता था। मेरे जीवन की उलझन उन की आत्मा को मानो उलझाने वाली थी। जबतक उस रूप को देख रहे थे तब तक यौवन का मद भरा आलस्य उन में छा रहा था, पर ज्यों ही उस रूप को अपने हृदय में स्थान देने लिए पलकें बन्द कीं, हमारी आँखों में रूप-माधुर्य की मस्ती नहीं रह गई, ऐसा जान पड़ा मानो कोई इस बीच उस मदिरा को पी गया। जैसे जैसे ही बंधन बढ़ता जाता था वैसे वैसे ही हृदय-शान्ति, हँसती हुई

आती थी। उन अलकों से बँध जाना ही शान्ति व आनन्द का बढ़ जाना था। उस प्रेम के बंधन में बँध जाने में हमें आनन्द मिलता था, वही हमारा सुख था। पर उस ओर से करुणा प्रतिदान नहीं देती थी, वह रूठी रहती थी। मन प्रेम के बन्धन में बँधने में सुख-शान्ति का अनुभव करता था पर जिस को प्रेम किया जाता था वह रूठती जाती थी।

प्रकृति में प्रिया और प्रिय एक दूसरे से मिलते थे; भाव भरे चुम्बनों से अरुण हुए उन के मुख, खिले फूलों के समान लगते थे और स्वर, भौंरों की गुञ्जन की भाँति। इस प्रकार, भौंरों की निराली तान छिड़ती थी. प्रकृति के जीवन में आनन्द-सा हो रहा था। आनन्द की मुरली बजती थी। सुख के इस प्रभाव से कलियों के अधर हँसते थे और उस समय, प्रकृति में निकली निराली तान कानों में भर जाती थी, पुष्पों के अन्दर के मकरन्द-सी वह तान सुनने में भली लगती थी। प्रकृति का वर्णन यह नहीं है नायिका का वर्णन है जिस में नायक के भावों का चित्रण है। सुख नायिका को प्राप्त होता है। जैसे कोई मद्यप प्रभात-काल में मुहँ धोने के बाद मदिरा मांगता है वैसे ही प्रेमिक आलिंगन-कुम्भ की मदिरा और नायिका के निश्वास से मलय पवन के जो झोंके निकलते थे उन्हें ही चाहता था। प्रिया के मुख-चन्द्र की चाँदनी को पी कर प्रेमिक, प्रेमिका के निश्वास-झोंकों से झकोरे खाता था, प्रिया के मुख-चन्द्र की चाँदनी के सिवाय जगत में कोई वस्तु उसे प्रिय नहीं थी। नायक के लक्षणों का आरोप रजनी में किया है। नायिका के मुख-चन्द्र से लगे रहने से सुख से शिथिलता आ जाती थी पसीने की बूँदों से वस्त्र भींग जाते थे अब वे ही वस्त्र आँसुओं से भीगते हैं वे श्रम-सीकर हृदय में प्रकाश करने वाले थे अस्तु नक्षत्र से दिखाई देते थे, उपमेय को उपमान बनाया है। मिलन कुञ्ज में नायक-नायिका सुख शिथिल प्रणय-चाँदनी उन दिनों जैसी सोती थी वैसी अब नहीं सोयेगी। चाँदनी

कुंज में जब छिटकी होती है तब सुखद क्षण होते हैं। प्रिया मुख के चन्द्र कमल से निकली कान्ति, ज्योत्स्ना ह। जब तक मिलना नहीं है तब तक प्रकाश नहीं है। संयोग के कुञ्ज में चाँदनी अब न सो सकेगी। हृदय की उमंगें मानों अब जल-हीन हो गयी हैं, उन में स्वयं प्यास भरी है। वह पात्र भी जिस में आसव पान कर प्यास बुझाई जाती थी खाली है। फूलों में मकरंद नहीं रह गया, सब रस को पी कर प्याली लुढ़का दी गई है। पात्र जो है वह भरा है, मुँह के निकट है। साँसों के आने से उस में लहरें उठेंगी। साँस जहाँ ज्यादा पड़ेगी वहाँ, भँवर पड़ जावेंगे। तुम ने प्याले को हमारे मुँह तक ले जा कर स्वयं ही पी लिया है और प्याली को लुढ़का दिया है। नायिका के हाथ में नायक का मन प्याला है जो, किसी के हाथ में प्याले के समान है। हमारा प्रेमकमल जो कभी खिला था वह अब मानस-मानसरोवर में सूख गया है उस में जितना मकरन्द था बिखर गया है। पुष्प रेणु में रस नहीं रहा वह सूख कर उड़ रहा है। उन के मुख स आने वाली सुगन्धित श्वास मलयज की मीठी हिलोर थी अपने स्पर्श का आनन्द दे कर न जाने कहाँ छिप गई। विरह न होने स वह पवन तीखी न थी उस के करुण कटाक्ष हमारी ओर घूमे हुए थे, उस की हम पर दया थी, अब दया का भाव नहीं रहा, अब विस्मृति मात्र है और मादकता है। मन में मूर्च्छना भरी है। यह बात अब कल्पना हो गई है कि एक दिन ऐसा भी था जब प्रेम की मादकता के प्रभाव से प्रभावित वह अपने को भूल गई थी। मन की विह्वलता की मूर्च्छना मन में भरी थी स्नेह के एकान्त में अन्तर की अनुराग-मुरली बज रही थी आनन्द के राग बज रहे थे—अब यह सब कल्पना जान पड़ती है। जिस को हम प्यार करते थे उस के लिये जानते थे कि वह शिरीषसुमन के समान कोमल है पर इस विरह को देख कर यही कहते बनता है कि उस ने हमारे हीरे के सदृश हृदय को कुचल डाला। प्रेम ने हृदय को हीरे के प्रकाश की तरह बनाया था पर अब वह

स्नेह जलने लगा है जो पहले हिम के समान शीतल था। इच्छा के विरुद्ध संध्या को भौंरों से आँख बचा कर कमल जब संकुचित हो जाते हैं तब हम धुँधलेपन संध्या, प्रत्याशा का रोना रोते रह जाते हैं। हृदय कोमल है। प्रेम, विरह के रूप में जल रहा है। वह अब जल कर अँधेरे में धुएँ की एक रेखा मात्र बना रहा है।

मुरली अब नीरव है, कलरव भी चुप है भौंरे, कमलों में बंद हैं। इस अन्धकार में हृदय रूपी जो नदी का पाट है इस में प्रणय की गहरी यमुना बहती है। यमुना इस लिये कि प्रेम ने काला रूप धारण कर लिया है वह अब धूम-रेखा की भाँति है, उस ने विरह का रूपधारण कर लिया है।

बसन्त की रात्रि के अन्तिम प्रहर (ब्राह्ममुहूर्त) में जो खिलता है उस शिरीष-सुमन की तरह कोमल मैं अल्प काल ही में धूल में मिल जाता हूँ। कोमल पुष्प जैसे जल्दी झड़ जाता है, उसी प्रकार, कोमल हृदय, उस आनन्द से विहीन हो गया। उस मधु सौरभ से मलयानिल व्याकुल हो कर धीरे-धीरे निश्वास छोड़ जाता है, मीठी सुगन्ध से मलयानिल अब भी व्याकुल है और इस विरह रूपी नदी के किनारे आहें छोड़ जाता है।

पूर्व दिशा के अरुणोदय को मानो, सूर्य की प्रथम किरणों ने चूमा हो। लालिमा केवल थोड़े स्थान में है और चारों ओर पीलापन है। इस प्रकार प्राची दिशा को जिस तरह अपने प्रिय का चुम्बन प्राप्त हुआ उस तरह से मैं अपनी प्रिया को प्रसन्न न कर सका। जिस ने अभी तक नींद नहीं प्राप्त की उस कोरी आँख से रात भर उस की बाट जोहता रहता हूँ, जब उसे नहीं पाता तब, प्रातःकाल सो जाता हूँ।

बादल जब झीना होता है तभी ओस गिरती है। पृथ्वी ने साँवला आँचल धारण किया है। रात में पृथ्वी ओस की बूँदों के आँसुओं के कणों से भर जाती है। मैं इस छूछे बादल साँवले आँचल के समान

ही, प्रेम-प्रभात के गगन में उदित हुआ हूँ—आरम्भ में ही मुझे विरह दशा प्राप्त हुई है। (अब उसे यह जान पड़ रहा है कि) मैं ने पहले पहल प्रेम का जो अनुभव किया वह मानो, विष की प्याली थी। वही विष की प्याली मेरी आँखों में नशा बनी थी, उस पलक रूपी प्याले में हम ने जो सौन्दर्य भरा था, जिस ने उस समय मदिर बनाया था अब उस की स्मृति ही बाकी है, वही प्रेम है और उस के अतिरिक्त कुछ नहीं, वास्तविक अनुभव के रूप प्रेम अब भाग्य में नहीं लिखा है। मेरे हृदय में कामना रूपी सिन्धु लहरा रहा था, प्रिया को प्राप्त करने की इच्छा थी। इस लहराते सिन्धु पर, उस की छवि, पूर्णिमा के समान छाई हुई थी। चाँद की छवि, सिन्धु को ज्वार के रूप में जिस प्रकार खींच लेती है उसी प्रकार उस की छवि, मेरी सब कामनाओं को खींच रही थी। उसी चन्द्रमा की परछाईं रत्नों के रूप में मानों चमक रही है और उसी की तरह मेरे कामना-सिन्धु में मेरी प्रिया के मुख-चन्द्र की परछाईं चमक रही है। मुख को देखना हृदय का आनन्द के रूप में परिणित होना है, यही, रत्नों का चमकना है। छाया-नट जो है उस में छवि के परदे में से तुम को हम पहिचान नहीं पाते। उस में जो तुम ने हम को मूर्च्छित कर दिया वही मानों वेणु है। सन्ध्या रूपी कोयल के अंचल में या कृष्णामावस्या की रात्रि में अपना कौतुक दिखला जाता है। अमावस्या इसलिये कि जितना ही अधिक अन्धकार हो छाया-नाटक उतना ही सफल होता है। व्यक्ति को नशा जब होता है तब उस का ज्ञान चला जाता है। इसी तरह तुम आये तो थे मादकता के समान पर चले गये ज्ञान के समान। (अजात-शत्रु में मागंधी कहती है—फूल की तरह आई हूँ परिमल की तरह चली जाऊँगी) जितनी देर ज्ञान को जाने में मादकता के आने पर लगती है उतनी ही जल्दी तुम चले गये; तुम्हारे नशे के चले जाने पर हम शिथिल हो गये। असीम आकाश के भीतर बिजली की तरह सहसा आए; हमारे जीवन में केवल एक अनुभव छोड़

गये, इतना ही रंगीन इतना ही पकड़ में न आने वाला, जितना इन्द्र-धनुष है। नन्दिनी का कवि कहता है—

मेघों में ज्यों इन्द्र-धनुष की छवि मन मोहन,
इस विषादमय जीवन में ऐसा ही यौवन !
शीत शिशिर में सूरज की सुकुमार तपन-सी
सुख देती हैं किरणें इस मादक यौवन की !
मेघों की लाली-सा यह क्षण भर ही का धन.
इन्द्र-धनुष की छाया-सा है यह नव यौवन !

आँसू के कवि का कहना है—वह अवास्तविक स्मृति जिस के रस से हमारे हृदय-बन की कली मुस्काती है अर्थात् जिस वास्तविक वस्तु ने हमारे जीवन को आनन्दित कर दिया था आज भी वह स्मृति, मकरन्द मेघ-माला की तरह मदमत्त आती है। उस की स्मृति आते ही, हृदय में मादकता आती है और रस की भावना आ जाती है। हे शशि ! हृदय, शिशिर कणों से पूरित है। तुम ने मधु वर्षा की है हृदय को ओस से भरा है। हमारे हृदय (मन) मन्दिर पर मोतियों की ढेर मानों कोई बरसा रहा है। अर्थात् आनन्द रूपी बहुमूल्य अनुभूति की कोई एकता नहीं है। समीर शीतल है, उस में आनन्ददायिनी शक्ति है। हृदय को शीतल करने वाली शीतलता है क्यों कि उस में तुम्हारा स्पर्श है। प्रेम की भावना को व्यंजित करने के 'लिए सिहर उठता हूँ' कहा है, यह काँपना, हृदय का काँपना है। फूलों की लताएँ कोमल तकिए के सहारे सो जाती हैं और व्यर्थ प्रतीक्षा करते हुए मैं आकाश के तारों को गिना करता हूँ; हृदय में विरह की जो भावना है उस का प्रतिदान नहीं होता। तुम नहीं प्राप्त होती हो, मुझे भी आसरा देने वाला कोई होगा ही। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुःख का साथ ता कम से कम अवश्य मिलेगा। सन्ध्या के बाद रात्रि होगी इस का हम को भास नहीं होता क्यों कि आनन्द में हम उसे हेम-जाल पहिनाते हैं, आनन्द मय

दृष्टि से उसे देखते हैं, उस का स्वागत करते हैं विरह की संध्या के अवसर पर हम को आनन्द आता है, मिलन काल सुखद होता है। मिलने में प्रेम का सरोवर क्लान्त नहीं शान्त होता है। संध्या समय रश्मियाँ स्वर्ण रूप धारण कर लेती हैं। शान्त संध्या की मिलन प्रतीक्षा की सुखद चित्रावली चन्द्रकुँवर के शेणी-वीजाणंद में मिलती है। वीजाणंद के दर्शनों की प्रतीक्षा में शेणी बैठी है उस का हृदय रवि को शैल शिखरों से विदा दे कर संध्या का स्वागत करता है—

जाओ रवि, शैलों के शिखरों से जाओ!
अपनी शोभा ले लहरों-लहरों से जाओ!
बड़ी देर तक रहे तुम, पृथ्वी के ऊपर
छायाओं के साथ खेलते, बन के भीतर!!
हँस लहरों के साथ नाचते, पड़ दूर्वा पर
अलस दृगों से गगन देखते रहते दिन भर!
जाओ मेरे रवि! जाओ पृथ्वी से उठ कर,
आने दो संध्या को शशि की किरणें ले कर!
आओ संध्या, शशि को ले, प्रिय को ले आओ!
दूर पथों पर मुरली मधुर बजाती आओ!
विहगों की टोलियाँ, झुंड गौओं के ले कर,
पश्चिम से सोने की धूल उड़ाती आओ!
दीपों में सुकुमार प्रभा ले, सर में शोभा,
नभ में तारों के आलोक जगाती आओ!
मुकुलित कर पुष्पों के मुख, कलरव नीरव कर,
शोभा में विपिनों के छोर डुबाती आओ!

आँसू का कवि कहता है, हृदय उन के प्रेम रंग में ऐसा रँग गया कि प्रयत्न कर ने पर भी रंग नहीं छूटता। आँसू मानों उस रंग को निकालने को निकल रहे हैं पर वह उन से और भी चमक रहा है तुम्हारी

कमनीय मूर्ति जो है वह कामना कला की विकसी हुई मूर्ति है। हमारी वे सब इच्छाएँ ही मानों तुम्हारी सुन्दर मूर्ति के रूप में विकसित हो कर ढल गई हैं। तुम्हारी कमनीय मूर्ति को प्राप्त करने की इच्छा मन में है। हमारे हृदय में वह मूर्ति अभिलाषा बन जाती है। मणियों के दीपक को हवा का झोंका नहीं बुझा सकता। अपने हाथ में मणियों का दीपक लिये उस के द्वारा मार्ग दिखलाने आये। वही मणि-दीप अग्नि का समूह अब हो गया, मानों उस से किरणों की लपटें रही हैं। मणि की किरणें आग की लपटें हैं। किरणें, प्रिया के केश हैं। मणि-दीप उस का मुख मण्डल है। नन्दिनी का कवि कहता है—

मेरे पथ में हँसी किसी की फूल बिछाती,
याद किसी की मुझ को शुचि करने को आती;
उठता जब तूफान गगन में मेघ गरजते—
अन्धकार में चिन्ह न पथ के मुझ को मिलते !
मूर्ति किसी की तब हँस-हँस कर आगे आती,
मेरे पथ में हँसी किसी की फूल बिछाती !

आँसू के कवि का अनुभव है—प्रेम पहिले छिपा हुआ था, अब करुणा की रूठी वीणा और भी ऊँची चढ़ गई है अब तक करुणा का स्वर केवल रुष्ट मालूम होता था अब वह और भी खिंचा हुआ दिखलाई देता है। उस करुणा में अब दीनता नहीं। करुणा उत्पादन करने वाली दैन्य की वह भावना अब दर्प हो गई और अपने हृदय की अनुभूति को वह साहस से कहता है, शोक की भावना हृदय में है वह उस शोक को दूर नहीं कर रही है वह लोगों के हृदय के अन्दर करुणा प्रतिपादन करने को नहीं है। प्रेमिका के प्रति इतनी पीड़ा उस ने सह ली है कि अब उस को कहने में दर्प हो रहा है। यह इस बात को सूचित करता है कि वह ऐसी प्रिया से प्रेम करता है। प्रेम की कामना से आनन्द उठा कर उस से प्रसन्न हो कर तुम्हारी आँखों में

मस्ती आ गई । अपनी आँखों के रस के रूप में तुम ने उसे मुझे दिया है । प्रेम की चरम सीमा हो गई है । दीनता अधिकार के रूप में हो गई है, जिस के प्रेम की मदिरा से इतना छक जाने पर मेरे हृदय की मदिरा तुम्हारे हृदय में आ गई है । वह सरसता तुम्हारी आँखों में आ गई है । मदिरा जितनी अच्छी होती है उतनी ही लाल होती है । मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति जो तीव्र कामना लालसा थी, रस पूर्ण मेरे हृदय की उस मदिरा को जी भर कर पी लिया । अब उस के स्थान पर मुझे क्रोध दिखला रही हो । पहले आँख को लाल बनाया, क्रुद्ध हो गये, और फिर विमुख हो गये । मेरे हृदय की मदिरा तुम्हारी क्रोध दिखाने वाली लाल लाल आँखों में समा गई है ।

कौन सी लहर थी जिस के आधार से तुम इस नौका को खेते-खेते ऐसे स्थान पर ले आये हो ? ऐसे ऊबड़ खाबड़ स्थान पर पहले भी क्या कोई कभी आया था ? तुम मुझे ऐसी अनुभूति में ले आये हो जैसी सम्भवतः किसी को नहीं हुई, जहाँ पर तुम्हारे अतिरिक्त मुझे और कोई दूसरा नहीं है । उस का सम्पूर्ण जीवन उसी को केन्द्र बना कर चल रहा है; प्रिया का प्रेम उसे इतना हो गया है कि उसी प्रेम को ही वह कर्णधार बना कर लाया है, मानो उसी के नेतृत्व को मान कर वह उस का अनुसरण कर रहा है । इस प्रम के तट पर हम अकेले हैं । प्रेमी जो नहीं हैं, वे उस पार को इस पार कहेंगे । तुम मुझे अन्धकार से यहाँ ले आये हो । जहाँ से प्रेम का आरम्भ किया था वहाँ नही जाऊँगा । जीवन का लोभ नहीं है । छल किया वह भी छल दिखाते हुये छल किया । अब, मुझ को वह अनुभूति प्रात हुई है, तुम जो छल कर रही थी वह वास्तव में छल था । प्रेम को कस रहे थे अब इस किनारे ले आये हो । तुम मुझे अन्धकार में ले आये हो, जीवन का लोभ नहीं है, इसी से अन्धकार है । जीना नहीं चाहते क्यों कि वेदना (अनुभूति) प्राप्त हुई है, कि मुझ को जो जल दिखलाई दे रहा था वह वास्तविक

नहीं केवल छल था। क्रूरता दिखलाना वास्तव में छल था वह क्रूरता नहीं थी। नन्दिनी के कवि की अनुभूति कहती है—

विजय नहीं थी वह थी हार बहुत भारी,
स्वर्ग नहीं था वह था नरक महा दुख कारी;
सुख मैं जिसे समझता था वह दारुण दुख था,
निश्छल-सा देखा मैं ने उस छल का मुख था,
प्रकट हो गई अब यथार्थता उस की सारी,
विजय नहीं थी वह थी हार बहुत भारी!
प्रेम नहीं वह प्रेम नहीं वह मेरे दुख का,
वह तो था उपचार भाव था वह तो मुख था,
करुणा थी वह मेरे सिरहाने आ कर के
बहलाया जिस ने था मुझ को दो दिन गा कर के,
भूल हुई मैं सहज दया को ऐसे समझा
प्रेम नहीं वह प्रेम नहीं वह मेरे दुख का!

आँसू के कवि का अनुभव है—हृदय की वेदना का भाव बाहर निकल रहा है। जिस बालू पर पाँव रखते आये उस में पद-चिन्ह से हम लौट जाते, बालू में चिन्ह थे पर आँसू के कारण वे अब विगड़ गये अब कैसे जाऊँ? मेघदूत के यक्ष ने कहा था, धातुराग से शिला पर तुम्हारा चित्र अङ्कित करता हूँ पर आँसू उसे पूरा होने से पहिले ही मिटा देते हैं। प्रसाद आगे कहते हैं, हृदय अब तक केवल मरुस्थल था पर अब वह सरस हो गया है क्यों कि उस में आँसू-नद उमड़ रहा है। हृदय की भावना का वेग निकल रहा है। अब लौट नहीं सकते, क्यों कि लौट जाने का मार्ग नहीं दिखाई देता, क्यों कि, आँसू नद ने उस मरुस्थल को भर दिया है आँसुओं से परिप्लावित प्रेम जलधि में शून्य के अतिरिक्त कुछ नहीं। प्रेम का सागर फैला है वहाँ वह जा नहीं सकता। उस में शक्ति नहीं है। अब मैं केवल भावना की

सत्ता मात्र रह गया हूँ। कोई पदार्थ नहीं रहा, स्वयं प्रेम हो गया हूँ। अब तिरने की आवश्यकता ही नहीं रह गई क्यों कि कूल किनारा ही नहीं है प्रेम जलधि में प्रेम बन कर उस का अङ्ग ही हो गया हैं। तिमिर के सागर में भी यह नौका तैर रही थी सागर में नौका में बैठा मनुष्य चलता है, बेग के कारण किनारा चलता दिखाई देता है। तुम्हारे मुख-चन्द्र की किरणों से खिंच कर मेरी नौका चल रही थी। मुख-चन्द्र की किरणों से खिंच कर धरती समीप आ जाती थी। वेग से नौका चलने से यह पता लगता है कि पृथ्वी निकट आ रही है।

प्रेम, मेरे मन की नय्या को आँसुओं के जल से परिप्लावित हुए हृदय-मरुस्थल के सागर में बिना प्रतिदान की गुण डोरी पाये ही खे चला है। प्रेम न पाने पर भी आँसू बहाते मेरा जीवन बीत रहा है। तृष्णा की बाड़वाग्नि ने हृदय-सागर मथ डाला है। उस का रेतीलापन पिघल गया, उस में सरलता आई, अब वेदना की गर्जन है; इच्छाएँ गरल बनी लहरा रही हैं अभिलाषें फेन बनी हैं। गीत माधवी के कवि चन्द्र कुँवर ने चाहों के सागर के विषय में कहा है—

> **"इच्छाओं का अन्त कहाँ है, कहाँ लोभ की सीमा ?**
> **बहती गर्जन कर तृष्णा की नदी भयंकर भीमा !"**

हिमकर, आकाशगंगा में कमल की भाँति खिला लगता है सामान्य मानवों के बीच पृथ्वी पर स्वर्ग ज्योति प्रेम धारा में जो हिमकर (सौन्दर्यमयी प्रेमिका, रहस्यमयी रमणी) है उसे भी तिमिर में लीन होना है। आकाश-गंगा के कमल की तरह जो इस हृदय-सागर को लहरा कर भी इस से दूर है उसे निराश हृदय के मलय-निश्वास स्पर्श कर आवेंगे। इस हृदय की निराश कल्पना में ही उस का स्पर्श संभव, है वास्तविकता में नहीं; सुरभि निश्वास, शून्य में लीन हो जावेंगे; जीवन के अंधकार के लोक में चले जाने पर शशि की मूर्ति भी दृष्टि पथ से ओझल हो जावेगी। उसे प्राप्त करने के लिए मुझे सब कुछ करना अभीष्ठ है, वह जहाँ कहीं भी

ही मैं उस तक पहुँचूँगा। प्रकाश, सुरभि, ग्रह-नक्षत्र जिस किसी रूप में भी मिल जाने की आवश्यकता है उस रूप में मिलूँगा, मिट कर पंच तत्व में मेरा शरीर मिलजावेगा, किन्तु राख की उन जड़ ढेरियों से भी प्रेम के क्रन्दन स्वर ही निकलेंगे! सांसारिक जीवन, यंत्र वत चला जा रहा था, शरीर अपनी सारी क्रियाओं को करता था किन्तु इसी में प्रेम-चेतना के प्राण थे कुछ ऐसा शक्ति थी कि किसी की ममता, किसी प्रतिमा की प्रणय भावना, दिव्य ज्योति की साकारता बन जाती है, जिस के प्रति प्रेम था वह मानव शरीरिणी करुणा स्मृति में स्वर्गीय सुन्दरता की दिव्य ज्योति बन जाती थी, वह ज्योतिमती चन्द्रिका इस हृदय में बस गई, वह मुख छवि सदैव सामने रहती है, उस की ज्योति किरणों की कान्ति शीतल है। उस कान्ति की शीतलता के सहारे ही मन-चकोर, विरह के अंगारों को (जीवन के दुखों को) सुख से चुगता है, उसे अपने जल जाने की चिन्ता नहीं, वह तो सौंदर्य-सुधा पर अपने को न्योछावर कर चुका है। दीपक बलता है, पतंग जलता है। पतंग की भाँति जलने वाले की दशा दयनीय अवश्य है किन्तु उसे इस में आनंद ही मिलता है उस का मन, फूल की तरह खिलता है। जिस के पास दीप-शिखा की भाँति रूप है, वह उस रूप के बल पर ही फूलता है, पतंगे को जलाता है। इस शरीर में प्रेम-दीप बल रहा है, उस की लौ, मंद नहीं पड़ सकती। शरीर, भस्म हो सकता है, प्रेम-ज्योति नहीं बुझ सकती, संसार में एक से एक प्राणी हैं किन्तु शशि ही लाखों में एक है, उस का वास्तविक स्थान उन सब से ऊँचा है, आकाश में अनंत तारे हैं पर शशि की बात ही न्यारी है! आकाश-गंगा में शशि श्वेत कमल-सा है। अनंत पृथ्वी की सुन्दरताओं में वह पद्मिनी शशि है, गीत माधवी के कवि ने पयस्विनी की हिरण्यगर्भ सुन्दरता में उस की सराहना की है,

जगती में आती कितनी रितुएँ, पर मधु रितु-सी और नहीं
गातीं पुलकित हो विहगीं कितनी पर परभत-सी और नहीं

उसी गगन में पली चाँदनी, जिस में तारे भरे हुए,
हुई मोहनी वह क्यों इतनी, इस रहस्य को कौन कहे !
अजातशत्रु में अतीन्द्रिय जगत की साकार कल्पना और कोमल कुसुम हीरक हार के रूप में उस सुन्दरता को 'आँसू' के प्रसाद ने अपनी प्रतिभा डाली भेंट दी है, स्वर्गंगा में दीप चढ़ाए हैं।

मन के मनोरथों की कलियाँ खिलती हैं इन की सार्थकता आनंद के रसीले फलों में परिणत होने में है; लोग, कलियाँ ही चुन लेते हैं, कीट, फूलों को ही नष्ट कर देते हैं कलियों का मन चुने जाने को नहीं होता, वे विकच सुमनों में परिणित होने की कामना करती हैं, सुमनों के साथ भी निर्दयता की जाती है उन की पखुड़ियाँ ही नोच दी जाती हैं वे अपनी कहानी अपनी मौन भाषा में सुनाती हैं, कोई सुनता ही नहीं, कलियाँ सुमनों में विकसित हो अपनी सुरभि, समीर में विकीर्ण कर मुरझावें तो क्या बुरा है ? हृदय की भावनाओं को पूर्ण तृप्ति प्राप्त हो जाय तो किसी का क्या बिगड़ जाता है जो उस हृदय को पहिले ही तोड़ डालते हैं ? हृदय के मनोरथों की अंजलि उस सौन्दर्य के चरणों में अर्पित की है वह उस में विद्यमान मकरंद कणों को नहीं देखते, उसे कीट कृमि की तरह ना चीज़ समझ कर कुचल देते हैं, हृदय, कुचलने की वस्तु नहीं है; किन्तु उस सौंदर्य के मृदुल चरणों ने इसे कुचल ही दिया इसी में अपनी विजय समझी। इस आह की चिन्ता न की, भाव जो अस्फुट थे उन का भी एक लेखा था वह अधूरा ही रह गया। जीवन के सुख दुखों की रेखाएँ उस लेखे में अंकित हैं किन्तु किसी निर्मोही ने मुझे प्रेम के प्रकाश में पढ़ा नहीं वरन् मोह के अँधेरे पट पर धकेल दिया। अँधेरे पट पर वे रेखाएँ उज्ज्वल अक्षरों की भाँति चमक रही हैं, आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों में भाग्य का जीवन के सुख-दुख का लेखा विचित्र है। दुनिया, दुख-सुख में तैरती उठती डूबती एक दिन अंतरधान हो

जावेगी तब भी कोई कभी इस बात की चिन्ता नहीं करता कि हमारे व्यवहार से किसी का हित हो रहा है अथवा अनहित। जीवन में सुख ही सुख नहीं हो सकता, दुख ही दुख भी नहीं रह सकता, आँख और मन के सामने कभी एक छिपता है दूसरा आता है कभी दूसरा छिपता है एक आता है, विरह है तो मिलन भी होगा ही, मिलन है तो विरह भी अवश्य होगा, गीत-माधवी के कवि का विश्वास चमकता है—

सच है घन तम में खो जाते स्रोत सुनहले दिन के,
पर प्राची से झरने वाली आशा का तो अन्त नहीं !

आन्तरिक चेतना में किसी के विद्यमान रहने से जीवन में असीम सुख था पर अब कोई वहाँ से हट गया है इस लिये सुख भी वहाँ से चला गया। हृदय दुख से भर गया है प्राण अब विकल हो कर रोते ही रहते हैं। नन्दिनी के कवि की व्यथा कहती है—

'उतना सुख जो दे सकता था हा ! उस ने ही,
राह न कोई छोड़ी अब, जीवन रखने की !
मुझे उठाया पहिले बाँहों में, मुसका कर,
मसला फिर पैरों के नीचे, निर्दय बन कर !
आशा, हा ! अब क्या टूटे उर के जुड़ने की,
उतना सुख जो दे सकता था, हा ! उस ने ही !

आँसू बहाते जिस की रातें, दुख में कटीं उसे प्रभात की ऊषा-लाली में अपने दुख का ही अनुराग रंजित हुआ दीख पड़ता है। संध्याएँ प्रतीक्षा में कटती हैं तो मिलन सुख की आशा, रात्रि के सुख को लाती है, किन्तु न रात में मिलन होता है न दिन में दर्शन। जीवन का सुख संध्या में उलझ जाता है, जीवन का दुख, ऊषा में अभिव्यक्ति पाता है। जो ऊषा-सा आया था वह संध्या-सा चला जाता है। रात के आकाश से झरते अन्धकार के तार ही घने अलक हैं जो अब दुख देते हैं।

सुख को आगे बढ़ने नहीं देते, अपने में ही उलझा देते हैं। मालती के कुञ्ज में रंध्रों से छन कर चाँदनी आती है तो उसी के साथ अँधेरी भी छायी रहती है। प्रकाश और अंधकार मिल कर ज्योत्स्ना और अँधेरी की जाली बुनते हैं जीवन के वन में, प्राणों के कुञ्ज रंध्रों में उस ज्योत्स्ना के छन कर आने से सुख-दुख ही इस हृदय की पृथ्वी पर अपना जाल बुन कर एक साथ लिपटे सोते हैं।

जीवन में अवकाश जो मिलता है असीम दुखों से युक्त हो कर प्राणों को वह उसी प्रकार आन्दोलित कर देता है जिस प्रकार वायु तरंगें, शान्त जलराशि को। आकाश में रात्रि चारों ओर अंधकार फैलाए हो तो नक्षत्रों का समाज अन्धकार में से हँसता हुआ-सा दिखलाई देता है। चन्द्रमा को राहु जब ग्रस लेता है उस समय भी तारे चमकते हुए दिखाई देते हैं। नीचे विपुल धरणी है जो, दुख के विपुल भार को ढो रही है। धरणी का विस्तार बहुत बड़ा है। इस को जितने भार ढोने पड़ते हैं वे और भी अधिक हैं। पृथ्वी से जितने आँसू बहे हैं सागर में मानों वे जमा हो गये, इतना दुख पृथ्वी में है कि तीन चौथाई में पानी भरा है। गीत माधवी का कवि इस दुख को चित्रित करता है—

'मेरे सुख की शोभा ले कर डूब गई शशि-वदनी,
मुझे जगा मेरे सपनों से गई गगन से रजनी!
चन्द्र-विम्ब-सा डूब गया मैं अम्बुधि की लहरों में,
समा गया मैं एक राग-सा उठते कण्ठ स्वरों में!
चली गई चुपचाप चाँदनी पृथ्वी का सुख ले कर,
गिरने लगा धरा के ऊपर तम, मेघों-सा झरझर!
मणि-विहीन फणियों-सी व्याकुल हुईं तरंगें सागर की,
रह न सकी जैसी थी वैसी ध्वनि अम्बुधि की लहरों की!
द्वार रुद्ध कर पड़ी दिशाएँ दीप-हीन भवनों में,
झरी सघन तम की धाराएँ पृथ्वी के नयनों में!

डूबे गिरि सूने विषाद में, छोड़ दिया नभ ने हँसना,
छोड़ा धरती ने फिर, निशि में उजले वसन पहिनना !

जितने सुख हैं सब स्वर्ग में हैं जितने दुख हैं पृथ्वी ने वे ले लिए, अपने में से दुख, पृथ्वी को दे दिया, सुख आकाश को, अब मेरे पास कुछ नहीं. सुख-दुख दोनों की अनुभूतियाँ चली गई। अपने को उन को दे कर इस दशा में मैं अब केवल प्रेमिका का मुख देख रहा हूँ। इतना सुख जो जल-थल-अंतरिक्ष में भी नहीं समा सकता वह प्रेमिका की मुट्ठी में वह बंद था। उन के आशा दिलाने से इस आश्वाशन के भरोसे उतना सुख मिल जाता जितना जगत में समाता है। सारा, प्रेम प्रेमिका में केन्द्रित है। दुख तो मुझे अब हो रहा है, तुम को कोई दुख नहीं। घर से रुपय्या ले कर भगोड़े जैसे भाग जाते हैं वैसे ही तुम मेरा सारा सुख ले कर भाग गये। तुम्हें क्या दुख था ? तुम्हारा जाना हमें दुखी करता है। तुम ने पूरी अनुभूति भी तो इस बात की नहीं होने दी कि तुम्हारे संपर्क का सुख क्या है। तुम्हारा संपर्क तो मानों सपने में-सा प्राप्त हुआ। केवल रोम ही जाग रहे हैं, जब तक अनुभव करने वाले हम जागे तब तक तुम भाग गये। जिस के अभाव के कारण मेरे जीवन में दुख था उसी को मैं अपना सुख मान लिया करता था। जीवन में मृत्यु उसी प्रकार बसी है जैसे, बादल में बिजली। बिजली सहसा जिस प्रकार चमकती है मृत्यु भी उसी प्रकार सहसा आ सकती है। जीवन क्षण-भंगुर है। प्रेमिका का अभाव ही दुख था। उस के स्मरण को मैं ने सुख मान लिया। दुख रूपी वृक्ष के पत्तों के हिलने से उन का सुख नाच उठा, इतना दुख है मानो वह कंपित हो रहा है। और मेरा यह दुख का कंप उन के सुख का नृत्य है। हमारे दुख को नचाने से ही उन को सुख होता है। मेरे हृदय में शोक भाव होने से उन का शृङ्गार चमकता है। मेरे आँसू से उन की शोभा बढ़ती है। प्रेमी सोच रहा है कि प्रेमिका इतनी क्रूर है कि मुझे दुख देने में उसे

आनन्द आता है। दुख और सुख दोनों से हम उदासीन हो जायें मेरे-तेरे की भावना छोड़ दें। प्रेमिका और प्रेमी के मिलन को संभव कर दें। प्रमिका अपना मान छोड़े और प्रेमी अपना स्वार्थ त्याग करे।

जगत रूपी आकाश में दुख मानों, सूर्य का ताप है। यह ताप तब न जलाए जब अनन्त गगन पर वेदना रूपी बादल छा जायें। वेदना करुणा की अनुभूति हमारी संपूर्ण चेतना पर छा कर उन दोनों पर छा जायगी। त्रय ताप, सूर्य की किरणें हैं। वेदना को घने बादल छा जायें तो सूर्य्य की जलती-बलती किरणें पहुँचेगी। संपूर्ण चेतना को छा कर हम को अलग कर देंगी। जो कुछ भाग्य में बदा है वह हो रहा है। नियति, नटी के समान नाच रही है। गेंद आकाश को चली गई तो भाग्य अच्छा है, पृथ्वी पर गिरती है तो भाग्य अच्छा नहीं है। विश्व रूपी आँगन में नियति नटी खेल रही है, उस को जब कोई खेलने को नहीं मिला तो प्रेमिक के साथ खेलने लगती है। भाग्य प्रेमिक को अपना गेंद बना कर कभी तो आकाश की ओर फेंकता है और कभी, पृथ्वी पर पटक देता है। खेलने वाले का हृदय व्यथित है इसलिए व्यथित आँगन कहा गया है।

स्त्रियों का हाव विभ्रम कहलाता है, यह वह हड़बड़ी है जो हृदय में प्रेम के उत्पन्न होने के कारण उत्पन्न होती है, और व्यक्ति अस्त व्यस्त हो जाता है। बाहर जो भावना प्रकट होती है वह भीतर की मदिरा को प्रकट करती है। हाव, हृदय के भावों से प्रकट होता है। विभ्रम की मदिरा से उठ कर, जहाँ अंतर में अँधेरा है तुम मेरे उस अंधकारमय अंतर में आओ। तुम मेरे प्रेम से प्रभावित हो कर मेरे हृदय में आओ। तुम यदि आ कर देखो तो तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा क्यों कि मेरे हृदय में तुम नहीं हो। मेरा प्रेम सच्चा है इसीलिए वह शिथिल आहें छोड़ रहा है। इस आह से खिंच कर तुम आए बिना रह नहीं सकते। तुम को अभी अनुभव नहीं कि तुम्हारे कारण मुझे यह व्यथा हो रही है पर फिर

इस प्रकार की व्यथा तुम्हें होने लगेगी। मेरी शिथिलता प्रेम-जन्य शिथिलता है।

संध्या के समय, मिलन की प्रतीक्षा होती है, उस समय वह अपने लिए बड़े-बड़े मनसूबे बाँधती है। रात भर प्रतीक्षा होती है। जब कोई नहीं आता तो आशाएँ चली जाती हैं। प्रभात के समय में अरुणोदय की लाली कह देती है मिलन अब नहीं होगा। कवि कहता है मुझ को प्रेम के आलंबन के अभाव के कारण बड़ी बेदना है, जिस का उपाय चौदहों भुवनों में कहीं नहीं। विश्राम यदि है तो वह प्रेमिका में है जो इस समय प्राप्त नहीं, विश्राम मुझे नहीं है कुछ काम है तो यही कि आहें छोड़ूँ और आँसू बहाऊँ। विश्राम थक गया है और सो रहा है। उच्छ्वास का तथा आँसू का निकलना ही मानो, विश्राम का थक कर सो जाना है। रोई आँखों में नींद सपना हो रही है। नींद नहीं आ रही है। उच्छ्वास और आँसुओं में प्रिय के अभाव जन्य ताप और दुख जब न रहें तभी विश्राम आ जाय पर प्रेमी मिलता नहीं इसलिए उच्छ्वास और आँसू सदा बने रहते हैं इसलिए विश्राम नहीं, हृदय, व्यथा में डूबा हुआ है किन्तु प्रेमी के संबंध की व्यथा है। रात में जब कभी यह व्यथा सो जाती है, जब उन का सपना होता है तो उन के प्रति हमारे हृदय में तल्लीनता आ जाती है। उन के प्रति प्रेम की जो उत्तम सुनहली भावना है वह मानो हम को सुखपूर्ण सहला दे रही है। उन की प्रेम-भरी स्मृति हमें सुखपूर्ण स्पर्श करती है। स्पर्श भी इन्द्रिय अनुभव है पर जो चर नहीं। तुम को हृदय में अनुभव करते हैं वह इन्द्रिय जन्म नहीं तल्लीन जन्म आनंद है। सब से अच्छे प्रेमी, कृष्ण माने जाते हैं। तमाल का वृक्ष हरा-भरा होता है। नंदन-वृक्ष की छाया में तुम-स्पर्श-हीन अनुभव-सी हमें प्राप्त होती हो। प्रेमालिंगन का वर्णन किया है। तमाल वृक्ष के नीचे से लता उगी और वृक्ष पर-छा (लिपट) गई। पेड़ को लता के पत्ते जिस प्रकार छा देते हैं (उन को अपनी सुध-बुध नहीं रह जाती) उसी प्रकार तुम मुझ में

छा जाओ—'मुझ में समा जा इस तरह तन प्राण का ज्यों तौर है; जिस से न फिर कोई कहे, मैं और हूँ तू और है," मैं तुम को संपूर्ण रूप से अनुभव कर सकूँ। वृक्ष का सारा अनुभव लता में मानों केन्द्रित हो गया। तुम्हारा प्रेम ले कर हम ने जो कल्पना बाँधी है समय आने पर वह बिखर जायेगी, कल्पना को सत्य में आने दो। आकाश-गंगा की धारा में तारे जग मगाते रहते हैं उसी प्रकार तुम हमारे जीवन में जग मगाते रहो। सब प्रेमी मिल रहे हैं, आकाश की नीलिमा अपने प्रिय नभ के आँगन में विस्तर पर बैठी है। नीलिमा नायिका है, आकाश प्रिय है. हे प्राण तुम भी अपने अपांग (कृपा-कटाक्ष) रूपी बादलों से हम पर इस प्रकार आनंद की वर्षा करो कि हम वे सुध हो जाय। नील-नलिन-रस (काजल युक्त पुतली के अपांगों के प्रेम भाव) का बरसा जिस से आनंद से विभोर हो जाय। हमारी अपनी अनुभूति कब से दग्ध है। हमारी दुनिया तुम्हारे बिना न जाने कब से जल रही है तब भी यह ताप और प्रकाश दोनों को साथ माँग रही है, तुम्हारे बिना आलोक-हीन हो रही है। चिर दग्ध होने पर आलोक माँगती है इसलिए तुम आ जाओ। अंधकार रूपी ओस की बूँद हमारे ऊपर बरसाओ जिस से यह दग्धता की भावना जाती रहे। इस अनुभूति को तुम विस्मृति दो जिस से कोई दिखलाई न दे, केवल तुम और हम एक हो कर सो जायँ। प्रेमी और प्रेमिका एकाकार हो जायँगे तो उस प्रकार की चेतना की लहर न उठेगी, केवल तल्लीन अवस्था बनी रहेगी। विच्छेद के कारण उस के हृदय में विरह की भावना हुई है, मिलन हो जाने पर विच्छेदमयी सृष्टि का अंत हो जायगा। ऐसा भी समय आवेगा जब कि जीवन-समुद्र स्थिर हो जावेगा। जीवन में इस प्रकार तल्लीनता की भावना हो जायगी कि दोनों एकाकार हो जायँगे। तब जीवन-सागर में चेतना की लहरें न उठेंगी। तब सर्ग और प्रलय का नाश हो जावेगा, इस प्रकार, विच्छेद की अवस्था मिलन की अवस्था हो जायगी।

रात्रि में ओस गिरती है रात मानो रोती है। ओस को आलोक विन्दु कहा है क्यों कि सूर्य किरणों के गिरने से वह चमकती है। नक्षत्रों का अंश मानो वह है। सूर्योदय होने पर पृथ्वी पर बूँदें नहीं रह जातीं, आकाश में नक्षत्र नह रहीं जाते रात्रि मानो उन को पी गई. रात्रि भर जो नक्षत्र चमकते रहे प्रभात के समय वे ही ओस बूंदों में मानो भर गये। सुख की भावना स्मृति रूप में व्यंग हँसी हँस रही हैं। सुख का स्मरण ही याद दिला रहा हैं कि तुम्हारी पहलें की अवस्था अब प्राप्त नहीं हो सकती। रोने का अवकाश नहीं, जो कुछ आता है उसे धैर्य्य से स्वीकार करना है। स्ववश हो कर परिस्थिति को सहना है। आँखों में आँसू जब भरे हों धैर्य्य ही तब काम देगा। दुखी होने का काम नहीं। तारा जब गिरता है तब और भी उज्ज्वल हो कर चमकता है, वही उस का जीवन है। कवि ने एक ही तथ्य की ओर दृष्टि डाली है। गिरते क्षण ही अधिक उज्ज्वलता नक्षत्र में रहती है हमारे पास तक आते उस में उतनी चमक नहीं रहती फिर गिरते हुए नक्षत्र को ही उज्ज्वल समझा है। जहाँ से वह गिर रहा है वहाँ कितना प्रकाश होगा इस का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हमारी दृष्टि वहां तक नहीं पहुँच सकती और यह समझते हैं कि जिस समय वह गिर रहा है उसी समय उस में प्रकाश है। ग्रीष्म के ताप से पत्ते सूख जाते हैं पर बरसात में नये कुडमल निकलते हैं। व्यक्ति जब दुखी होता है तब उसे दुख ही दुख दिखाई देता है। जगत सपूर्ण व्यथाओं से भरा है किन्तु सुख में न दूसरों के सुख न दुख ही दिखाई देते हैं। जीवन बीत जावेगा कहने के लिए व्यक्तियों को रंजन करने वाली कथाएं शेष रह जायेंगी। अभिप्राय है अपने सुख के समय भी जग में दुख को देखो।

नीलिमा भरी रात्रि के अंचल में चाँद जब डूब जाता है और सूर्यास्त होता है, नक्षत्र नहीं दीखते, जब विश्व रुपी मंदिर किरणों से घिरे रहते हैं, तब भी हे विरह ज्वाला ! तुम एकाकार जलती रहती हो

मणि-दीप की भाँति प्रकाश सब समय देती रहती हो। यह किसी के हाथ की बात नहीं कि मणियों से किरणें दिन में न निकलने दें, मेरे हृदय में विरह की ज्वाला जलती रहती है रात-दिन सुबह-शाम उस की किरणें विकीर्ण होती रहतीं है। बादलों की कारा में बिजली बन्द रहती हैं सूर्यास्त होने पर आकाश गंगा की धारा में नक्षत्र डूब से जाते हैं। बिजली बादलों में अवश्य रहती है वह मेघों के बंदीगृह में मानों छिपी है। सूर्य और चन्द्र दोनों नहीं छिपते। हम उस स्थान से हट जाते हैं। ये सब चले जाते हैं। बाड़वाग्नि हर समय जलती रहती है जिस जलधि में उत्ताल लहरें हैं उस में अपना सिर रूपी शिखर उठा कर, ध्वनि कपन हीन निस्तब्ध शान्त गगन के नीचे, छाती में जलन को छिपाये रहते हैं। शैल अपने सिर उठाये उत्ताल लहरों से आलोड़ित जलधि के बीच भी स्थिर हैं। अपने ज्वालामुखियों को निस्तब्ध गगन के नीचे अपने अंतर में छिपाए हैं। सागर में जब तूफान उठता है उस समय भी बाड़वाग्नि उस में छिपी रहती है। दुखों की गहन गुफा में जगत ज्वाला-मुखी विश्व वेदना बाला अपनी लटों को छिटकाए सो रही है। रात्रि का अंधकार उस के लटों के फैलने से हो रहा है। होली जैसे जलाई जाती है उसी प्रकार मैं ने अपनी ज्वाला को जला कर विश्व की ज्वाला बना दिया है, तुम मेरे अंतर की ज्वाला हो, विश्व की ज्वाला हो, हे प्रेम-भरी! तुम दूसरे के दुख के कारण दुखी होना। तुम मानवता के सुख की रोली हो। मानवता के माथे पर रंग लगाना! अपना अनुराग प्रकट करना मानवता होली खेल लेगी। हे अग्नि-बाले! मम बलती रहो मेरे कलुष को भस्म कर प्रचंड होती रहो, जीवन-सागर के कलुषों को बाड़वाग्नि बन कर भस्म कर दो तुम्हारी पावनता मेरे जीवन को भर देगी। जगत में सुख-दुख दोनों का जोड़ा है, हे मेरी ज्वाला तुम सुरभि-मयी जयमाला हो, प्रकाश किरण हो। हृदय-कमल केसर हो हृदय के प्रकाश से सारे संसार को रंग दो। संसार में सब दुख ही दुख है, इस-

लिये दुखी होने की आवश्यकता नहीं। अपने पापों पर खड़े होने वाले को पता लगता है दुख झेल लेने पर जगत का सुख प्राप्त हो जाता है दुख में मनुष्य संसार को अपने हृदय के निकट पाता है सुख में उसे संसार की चिन्ता ही नहीं होती। स्मृतियों की, दुखियों की धुँधली छायाएं परिचित जान पड़ती हैं उनके लिए हम रोते हैं, रो कर हमें सब कुछ मिल जाता है। जो दूसरे के दुख से दुखी होना जानता है वह संसार भर को अपना बना लेता है। जो दूसरे के दुख से दुखी होना नहीं जानते वह निर्मम हैं उसका जगत सुख के अन्धाकार से भरा है करुणा का उजाला उस से नहीं है वेदना तुम्हारा मंगलतम प्रकाश उस के अन्धकार मय हृदय जगत को आलोकित करे; हृदय में यह ज्वाला बहुत समय से जलती आ रही हैं कल्याण कारी है, शीतल है, पर इस की अग्नि कभी भी नहीं गई।

किसी सुन्दर नायक को देख कर नायिका का हृदय पुलकायमान हो जाता है वह उस को स्वीकार न करे तो उसे दुख होता है इस प्रकार मृत्यु, नृत्य करती है। अमरता खड़ी मुसकुराती है। जीवन तुम्हारे सामने खड़ा है तुम उसकी परवाह नहीं करते और वह सिसकी भरता है। मृत्यु तुम को प्रसन्न करना चाहती है अमरता सामने खड़ी होकर स्वागत करती है। पर अमरता की भी चाह नहीं। शिशिर शीर्ण जीवन में मधुर वसन्त आवे यह तभी संभव हो सकता है जब सोया हुआ प्रेम हँसता हुआ जगे। प्रेम के सम्मुख अमरता भी तुच्छ है। रहीम, नरक में भी बसने के लिए तैयार थे यदि वहाँ पिय की गल बाँही मिल जाय। दुख के बाद सुख प्राप्त होता है ? सुख उन के पास होता है जो मुस्कुराते रहते हैं। जो दूसरों के दुख से दुख, सुख मे सुखी होते हैं। सुख, सुस्मित में सोता है सुस्मित में सोने वाले ! मेरी आहों में जागो। दूसरों के दुख से दुखी सुख से सुखी होने वाले सहृदय तुम मेरी आहों में जागो। संसार स्वप्न मय है, इस में सच्ची वस्तु प्रेम है। संसार के ऊपर मंगल की किरणें

डालता है। मानसरोवर में कमल जैसे खिलते हैं आशाओं में तुम वैसे ही खिलो। मेरे हृदय में भौंरों की सी मीठी गुंजार करो जिस से मैं जागूं सुख लाभ करूँ। आशा आकाश के समान शून्य है, यह आशा ही इस जगत में है। शून्य आकाश में भी रंग दिखाई दे रहा है। वास्तविक स्वर्ण सृष्टि तब होगी करुण भावना से आशा जब भरी होगी। प्रेम और करुणा का समन्वय है। पुराना संसार जिसे मैं छोड़ चुका हूँ उसकी पुलकावली फिर से आवे। कोमल कुसुमों के बन में मकरंद पैदा हों। तुम्हारे मकरंद के सामने जगत फीका पड़ गया होगा। सुख दुख का झगड़ा हो रहा है। संसार प्याला मानो रिक्त हो गया। सारा मधु तुम्हारे सौन्दर्य कोषों में आ गया है, मधु की कुछ बूंदों का तुम से पाने का अभिलाषी, संसार अब है। सुख दुख का झगड़ा हो रहा है। तम के ऊपर प्रकाश और प्रकाश के ऊपर तम जागता है। उस समय मंजुल मूर्ति दिखाई देगी, उसी प्रकार तुम्हारा सुख आवेगा, प्रभात काल की अरु-णाई की सुन्दरता में तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब है, अलसाई हुई संध्या में भी वही है। उस प्रम में अलसाई हुई तुम्हारी लालिमा, काले बादलों में दिखाई देगी, वह हमारे लिये सुलझी हुई मधुमय होगी। सौंदर्य नारी की नैसर्गिक सुन्दरता में है, जिसमें कि शिशु के निर्मल भावों की सी सुन्द-रता है। बच्चों के हृदय में जैसे भाव उठते हैं वैसे ही भाव जिस मुख में हैं वह मेरी आँखों में निधि के समान हो। अकाश ही मेरा घूंघट हो इस समय मेरा जो हृदय प्रेम से झुलसाया हुआ है वह उस समय खुल खिलेगा जिस समय ऐसे भोली सुन्दरता के दर्शन होंगे, वह निधि प्रतीक न हो। वह मूर्ति अविचल हो, सोने के कमल के समान हो जो मुरझाता नहीं, किन्तु यौवन का मद उस से झर रहा हो! आँखों के तारों की किरणों के समान, अखिल जीवन की कल्पना, आलोक की प्रतिनिधि बन कर अभिषेक करे मेरी वेदना मधुर हो जाय। हृदय की चेतना को कुचलना निर्दयता है। मेरी सुन्दरि, अनाख्या है वह कोमल

है पर कठोरतामय, इसलिए एक भी प्रतिदान नहीं करती। हम दोनों ही साथ-साथ चलते रहे। एक दूसरे को न जानते हुए भी। (ऐसे ही भाव, वाजिरा के प्रेम डूबे अजात शत्रु के हैं, 'हृदय, नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है इत्यादि) दोनों एक दूसरे को जानते पहिचानते नहीं हैं। प्रेम तब होता है जब एक दूसरे को देख लें फिर भी हम इसी तरह जीवन व्यतीत करते रहें।

तारों को गिनते हुए कितनी ही रातें कटी हैं। चमकनेवाले नक्षत्र वाली रात्रियाँ न जाने कितनी बीत गईं और जान न पड़ा। निर्मोह काल की वे घड़ियाँ बीत गईं पर जानी भी नहीं गईं। मन को वह अनुभूति पुनः प्राप्त न होगी। स्मृति के द्वारा वह एक बार पहुँच जायगी। अपनी स्मृति में वह फिर ताजी हो जायगी। उस समय जो तरगें उठी थीं मन की वे तरल तरंगे पुनः लौट नहीं आवेंगी केवल स्मृति में ही वे नई हो सकती हैं। शिथिलता को दूर करने के लिए नहाना आवश्यक है। आँसुओं में नहा कर हृदय की शिथिलता जाती रहेगी। स्मृतियों में सजीवता आ जावेगी। विरह से धूमिल पड़ी दृष्टि आँसुओं से धुल कर उज्ज्वल हो जावेगी, उज्ज्वल दृष्टि से प्रिय के दिव्य दर्शन हो सकेंगे नयनों के कोने जिस की स्मृति किरणों को छू कर जल भर लाते हैं, नयनों के कोनों में पानी भर आता है उन की कृपा नहीं हुई उन्हें शीतलता नहीं प्राप्त हुई नेत्र दीनता व दया के प्यासे हैं। हृदय में प्रेम का जो मधु नशा, भरा है। हृदय से आहें आती हैं, समुद्र की ऊपर उठती तरंगों के फेन की तरह ये उच्छ्वासें हैं कामनाओं के सिन्धु में भावनाओं की तरगें उठ रही हैं इन्हीं तरंगों का फेन उच्छ्वास है, पलकों की सुख छाया (दया) में न होने के कारण ये उच्छ्वास उठ रहे हैं। हृदय में जो एक प्रकार का प्रेमोन्माद है वह मानों फेन से युक्त तरंगावलि है। हृदय आन्दोलित हो उठता है। वे पुरानी स्मृतियाँ, पलकों की सुख छाया में जो रहती थीं पलकों की छाया (वियोग) न

रहने के कारण विकल हो उठीं, उन की ही विकलता यह उच्छ्वास है।

आँसुओं से दोनों तट भीग जावें। वर्षा से दोनों तट सिंच जावें। आँसुओं की वर्षा हो जाने पर प्रेम-नदी उज्ज्वल हो जाती है उस के तट हरे भरे हो जाते है। शरद की-सी प्रसन्नता उस में आ जाती है। शरद में जल इतना स्वच्छ होता है कि नदी की मिट्टी दिखाई देती है नदी के प्रवाह में भूमि स्वच्छ दिखाई देती है। नदी स्वच्छ है इसलिए भूमि की सब वस्तुएँ दिखाई देती है। भूमि में वर्षा से सिंच कर उत्पन्न हुई हरियाली दूर तक लहलहाती है। व्याकरण की भूल 'दोनो ही कूल हरा हो' में है 'भरा' के आग्रह से रूप 'हरा' है अन्यथा 'कूल हरे हों' प्रयोग उचित होता। सरिता के तट पर जो जहाँ खड़ा रहता है उसे वहीं जल में चन्द्रमा का उज्ज्वल प्रतिविम्ब दिखाई देता है। इसी तरह हमारे हृदय में तुम्हारी स्मृतियों का जागना इन आँसुओं को भी उज्ज्वल बना देता है हृदय के जल में तुम्हारा उज्ज्वल प्रतिविम्ब चमकता है स्मृतियाँ उज्ज्वल हैं इसलिए भी कि (प्रेम) जल स्वच्छ है बाढ़ उस में नहीं शान्ति है और इसलिए भी कि जिसका प्रतिबिम्ब इस जल में विम्बित है वह स्वयं उज्ज्वल है दिव्य चन्द्र है। मोती से पूर्ण बहुमूल्य सीपी सागर में जैसे रहता है वैसे ही, सौदर्य सिन्धु में रहने वाली इन सीपी-सी आँखों में अमूल्य आँसू मोती हैं। आँखों से ये बहते हैं। जैसे कोई लहर के मोतियों की झालर उँडेलता हो,—आँखों से हम प्रेम रूपी धारा के इन अश्रुओं को वैसे ही उँडेल रहे हैं। जब कुछ न दिखाई देता हो, उस समय आकाश-दीप से तुम हमें दिखाई देते हो, एकान्त प्रेम है, रात्रि में जिस प्रकार कुछ नहीं दिखाई देता उसी प्रकार मेरे जीवन के सागर में कुछ दिखाई नहीं देता। सब को अपने हृदय से हटा दूंगा तब तुम्हारे प्रति एकान्त प्रेम होगा। पीड़ाओं को हम देख नहीं सकते। मन की जितनी पीड़ाएँ अभी तक मुँह ढक कर पड़ी हुई हैं वे सब हँसने लगें। तुम्हारी याद पूर्ण रूप से जागरित हो। जो अमूर्त पीड़ाएँ अब तक मुँह ढक कर

तो रही थीं अब उन की कोमल क्रीड़ाएँ होने लगी हैं। पीड़ाओं का जागना जीवन का आरंभ होना है। तरल प्रेम का प्रवाह तुम्हें इस प्रकार से प्रवाहित करता रहे जिस प्रकार से धमनियों का रक्त प्रवाह जीवन की धड़कन को प्रवाहित करता है। वृक्षों के ऊपर अमर वेल जैसे फैलती है वैसे ही तुम्हारे कोमल आलिंगन की एकान्त अनुभूति मेरे जीवन में फैले। तुम मेरे एक ही जीवन के जन्म नहीं हो जन्म जन्म में तुम्हीं मेरे जीवन बने रहोगे। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम जन्म-जन्म रहेगा। मुझे अपनाओ जिस से मुझ में जीवन का प्रभात हो जाय मुझ को आलस्य हो जाय। तुम में विरहानल को जगाने की शक्ति है। इस सांसारिक कलुषता को नष्ट कर दो। पाप ही फिर पुण्य हो जाये। दादू ने कहा विरह अगनि में जल गये मन के मैल विकार। नंदिनी के कवि की आकुलता गीत बनी—

> मेरी बाँहें सरिताओं-सी आकुल हो कर,
> दिशा-दिशा में खोज रही हैं वह प्रिय सागर,
> जिसे हृदय पर धर कर मिलती शान्ति चिरन्तन,
> जिस की छवि में खो जाता युग-युग को जीवन,
> जिसे देख कर कुछ न दीखता फिर पृथ्वी पर,
> मेरी बाँहें खोज रही हैं वह प्रिय सागर!
> जन्म-जन्म से खोज रहा है उस को जीवन,
> जिसे देख कर काँप उठे नयनों में रोदन!
> जिसे देख कर खिले बसन्त हृदय में मेरे,
> जिस के दीप जलें इस शून्य निलय में मेरे,
> जिसे लुभाने को आया है मुझ में यौवन
> जन्म-जन्म से खोज रहा है उस को जीवन।

उस चिर रुद्र हिरण्यगर्भ की आकुलता नंदिनी के कवि की गीत माधवी में मुखरित हुई है—

अब छाया में गुंजन होगा, बन में फूल खिलेंगे,
दिशा-दिशा से अब सौरभ के धूमिल मेघ उठेंगे !
अब रसाल की मंजरियों पर पिक के गीत झरेंगे,
अब नवीन किसलय मारुत में मर्मर मधुर करेंगे !
जीवित होंगे बन निद्रा से, निद्रित शैल जगेंगे,
अब तरुओं में मधु से भीगे कोमल पंख उगेंगे,
पद-तल पर फैली दूर्वा पर हरियाली जागेगी,
बीती हिमरितु अब जीवन में प्रिय मधु रितु आवेगी !
रोवेगी रवि के चुम्बन से अब सानंद हिमानी,
फूट उठेगी अब गिरि-गिरि के उर से उन्मद वाणी !
हिम का हास उड़ेगा धूमिल सुरधुनि की लहरों पर,
लहरें घूम-घूम नाचेंगी सागर के द्वारों पर !
तुम आओगी इस जीवन में कहता मुझ से कोई,
खिलने को है व्याकुल होता इन प्राणों में कोई !

आँसू का कवि कहता है—संसार के लोग सुख में हैं, आनंद में हैं, मैं विस्मृति में हूँ, ऐसे दुःख के समय सजग होकर आने वाली (हे विस्मृति ! हे वेदने !) तुम कौन हो ? तुम मेरी चिर परिचिता जीवन संगिनि वेदना हो। पयस्विनी के कवि की यह अनुभूति वेदना गीतों में व्यक्त हुई है। वेदना दुखी हृदय की मधुर कल्पनाओं की संगिनि है, क्रीड़ाशीला किरण है। आँसू का कवि कहता है मैं तुम्हें अविकसित यौवन कुड़मल किसलय के छल में भूल जाता हूँ तब तुम एक प्रकार से वेदना पुकार बन कर मेरे हृदय रूपी रंग स्थल में आ जाती.हो, शून्य गगन में तुम ने क्या देखा ? विरही टकटकी लगाये आकाश में देख रहा है। इस रात्रि के निर्जन में तुम कितनी विरह वेदना हो गई। रजनी जितनी दूर से आ रही है उतनी ही दूरी का समय उस को प्राप्त करने में लगेगा। जो हृदय सुख से कभी तृप्त था उस को नैराश्य की छाया ढक लेती है तब

झिलमिलाते तारों की माया चलती है जीवन में जो वस्तु नहीं थी वह स्वप्न-सी दिखाई देती है। रात्रि में कुमुद खिलता है। उस पर ओस की बूँदें हैं वे मानो कुमुद के आँसू हैं। तारे उस का रोना देख रहे हैं। चन्द्रमा की किरणें उन बूँदों को चमका देती हैं मानों, मकरंद की मिठास बना देती हैं। सागर में ज्वार होता है, वह चन्द्रमा तक पहुँचना चाहता है। ज्वार से भाटा होता है। आन्दोलन, सागर में होता है पर चन्द्रमा तक वह नहीं पहुँच सकता किस प्रकार, सागर, चन्द्रमा तक पहुँचना चाहता है इस दृश्य को पहाड़ देख रहे हैं, इसलिए मौन है। पहाड़ में विरह की ज्वाला छिपी है, ज्वाला मुखी है। ज्वालामुखी फूट पड़े अगर वह बोले। प्रसाद ने इसी चेतना के कारण अपनी आत्म कथा को खुले शब्दों में लिख कर प्रेमचंद के आग्रह की रक्षा सांकेतिक शब्दों की कविता दे कर की थी—

मधुप गुनगुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी ?
मुरझा कर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी,
इस गंभीर अनंत नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास—
यह लो, करते ही रहते हैं अपना व्यंग्य-मलिन उपहास,
तब भी कहते हो—कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती।
तुम सुन कर सुख पाओगे, देखोगे यह गागर रीती।
किन्तु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करने वाले—
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरनी वाले!
यह विडम्बना! अरी सरलते तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं!
भूलें अपनी, या प्रवंचना औरों की दिखलाऊँ मैं!
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की!
अरे खिल खिला कर हँसते होने वाली उन बातों की!
मिला कहाँ वह सुख जिस का मैं स्वप्न देख कर जाग गया!
आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया!!

जिस के अरुण-कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में,
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधु माया में,
उस की स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की,
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कन्था की ?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों को सुनता मैं मौन रहूँ ?
सुन कर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्म-कथा ?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा !

प्रसाद, मौन प्रेमी रहे हैं । उन के प्रेम की मुख-कथा आँसू है । आँसू में कवि कहता चलता है—भौंरे के प्रेम में आकृष्ट हो कर कलियाँ मुँह खोल देती हैं, भौंरे कपट कहानी कह कर मधु ले लेते हैं फिर उन कलियों का ध्यान नहीं धरते, बहुत से ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन को नैराश्य प्राप्त हो चुका है इस लिये आँसू सूखे हैं । उन के प्रेम की भूख अभी तृप्त नहीं हुई है सूखी सरिता को किनारे पर क्या लीन नहीं देखा ? वसुधा की करुण कहानी उस में छिपी है सूनी कुटिया के कोने में धरा दीपक रात भर जलते-जलते सुबह बुझ जाता है । इसी प्रकार की दशा मेरी है जैसी कि दीपक की । हे मेरी रानी ! सब का सुख तुम ने ले लिया सब का सार चला गया । जीवन निस्सार रह गया, नीरस हो गया । तुम इतना सुख ले कर ओस की बूँद के समान बरसो । समस्त जगत इस ओस बूँद से सुख प्राप्त करता है ।

कालिदास की रचनाओं, उमर खय्याम की रुबाइयों, कबीर की वाणियों, सूर के पदों तथा रवीन्द्रनाथ की कविताओं के अध्ययन के प्रसाद के हृदय में जो प्रभाव छोड़े उन के वाष्प विंदुओं से प्रसाद की घनीभूत पीड़ा का आँसू निर्मित हुआ है ।

८ यौवन नंदिनी

बीत रहा है धाराओं के नीचे जीवन,
उड़ता है आहों के साथ विकल हो यौवन,
होती जाती क्षीण-क्षीण, आँखों में आशा
पड़ती जाती पीली, यौवन की अभिलाषा,
काँप रहा आशंकाओं से उर का कण-कन,
बीत रहा है धाराओं के नीचे जीवन !
आँखों में आँसू, छाती में एक-सी जलन,
कहते हैं क्या प्रेम इसी को हे मेरे मन ?
करता रहता जो अपने ही सुख से क्रंदन,
कहलाता है पृथ्वी पर क्या वह ही यौवन ?
क्षण भर हँसा, रुला फिर मिटता जो सपना बन,
कहलाता है क्या इस जग में वह ही जीवन ?

आहों के साथ विकल हो उड़ते जीवन की धाराओं का वरदान हिन्दी-साहित्य को चन्द्रकुँवर कृत यौवन-नंदिनी में मिला है। प्रसाद कृत आँसू मेघाच्छन्न गगन से टकपने वाले विरल बूंदों का धूमिल संसार है जिस में आनन्द सौंदर्य की झड़ी उमड़ती धाराओं के रूप में नहीं टूटती। किन्तु बर्त्वाल कृत यौवन नंदिनी विपुल शान्ति की वह गीति कथा है जिस में प्रेम की अमर पुरी की अमर व्यथाएँ उपेक्षित सिसकी भरते-भरते दिगंत व्यापी कोमल गर्जन करने वाले हृदय-मेघों की झरती उमड़ती आनंद मंदाकिनी बन गई है। यौवन नंदिनी प्रसन्न आकाश में मँडरा कर उड़ते प्राण-चातक का जीवन-गान है। उर के उमड़ते गीतों की धारा को पृथ्वी पर स्वर्ग-सरिता के रूप में छोड़ कर चन्द्रकुँवर अपने स्वर्ग लोक को गये।

चन्द्रकुँवर ने मानव पृथ्वी और विराट प्रकृति में बिखरी सुन्दरता को जी भर कर प्यार किया है और अपने हृदय की करुणा से काव्य को सरसता प्रदान की है। 'शान्त जरा के सर्व समर्पण' के रूप में जो प्रेम-बीज, 'जीवन-तम-किरण प्राणधन' जीवन-सहचर उन के हृदय में बचपन में ही अंकुरित कर गया था वह पूर्ण रूप से विकसित हो कर नंदिनी में अक्षय-बट बन गया है। प्रेम के जिस शान्त करुण मंत्र का जाप आरंभ से वे करते रहे, सिद्धावस्था का वह स्वर्ण सबेरा, 'यौवन-नंदिनी' में नंदिनी का वरदान बन कर इस जगती में उतरा है।

नंदिनी के कवि का ध्यान पार्थिव सौंदर्य की अनस्थिरता पर जब तक रहता है तब तक आकुलता की वर्षांत उसकी वेदना में दिशा-दिशा में उन्मादिनी नदी की भाँति बहती रहती है। नास्तिक कहलाने में वह गौरव का अनुभव करता है। वासना की रूप-कुञ्जों में ही रस-धार में ही डूबा रहना चाहता है। किन्तु दुख की गहराई ने उसे प्रकाश का वह लोक दिखलाया, तिमिर के तल में उज्ज्वल मोती जहाँ हँसते रहते हैं—

> सुख ने मुझ को लहरों के ही बीच झुलाया,
> सुख ने मुझ को हलका-सा ही राग सुनाया;
> दुख ले गया मुझे गहरे सागर के जल में,
> हँसते उज्ज्वल मोती जहाँ तिमिर के तल में,
> दुख ने ही मुझ को प्रकाश का देश दिखाया,
> सुख ने मुझ को हलका-सा ही राग सुनाया !

उस ने अनुभव किया, अहंभाव दुख का कारण है नास्तिक कहलाने में सुख नहीं। चाहे कितने ही जन्मों के पश्चात् क्यों न हो आत्मा को उस शाश्वत की शरण में जाना है वस्तु-प्रलय में भी जो स्थिर रहता है। वर्षा चली जाती है तो जीवन में शरद रितु लौट आई वह उस शान्ति को प्राप्त कर लेता है जिसे विग्रह से स्वर कभी भंग नहीं करते—

भीतर बाहर सभी ओर उज्ज्वलता छाई,
सभी ओर देता विशुद्ध आनंद दिखाई,
पूर्ण शान्ति जिस को न भंग करते विग्रह-स्वर,
मैं जैसे हो गया आज, आनंद से अमर,
मैं ने जैसे आज, मुक्ति जीवन में पाई,
मेरे भीतर-बाहर शान्त ज्योति है छाई !

यौवन, ढलन और लय इन तीन स्थितियों के प्रतीक तीन देश पृथ्वी, पाताल, स्वर्ग नदिनी के हैं । आकुलता, आशा और उन्मेष, यौवन के लक्षण हैं, जिन के रहते कोई भी व्यक्ति 'आज' में विश्वास करता है । 'कल न जाने क्या हो'. 'यह सुन्दरता रहे न रहे' आदि-आदि आशंकाओं से परिपक्व चेतना भी करुण बन जाती है । सौन्दर्य नहीं रहेगा, यौवन चला जावेगा, मृत्यु, निविड़ निशा की प्रलय वात की भाँति आ कर, जीवन-दीप को बुझा देगी, इसलिए आज जब अर्पित करने को ऐसा अपूर्व यौवन धन है, उर से गीतों की धारा उमड़ रही है, चाहें, सरिताओं सी आकुल हो कर दिशा-दिशा में उस प्रिय सागर को खोज रही हैं जिसे हृदय पर धर कर चिरन्तन शान्ति प्राप्त होती है, जिस की छबि में जीवन युग-युग को खो जाता है, जिसे देख कर पृथ्वी पर कुछ नहीं दीखता; आज प्राणों की विकलता यौवन की चीत्कार बन गई है हृदय जब अनुभव कर रहा है कि मैं जन्म-जन्म से उसी की खोज कर रहा हूँ जिस को देख कर नयनों में रुदन काँप उठता है, हृदय में बसत खिल जाता है, जिस के दीप इस जीवन-पथ को घेरे रहते हैं, मुझ में उसी को लुभाने के लिये यह यौवन आया है जो मेघों में इन्द्र धनुष की छवि-सा मन मोहन है किन्तु क्षण भर ही का धन है । कल तक ये फूल नहीं रह पायेंगे, यह नदी चली जावेगी, यह रुकी नहीं रह सकती; मेरे खेत पक गये हैं, पशुओं की इच्छाएँ इन्हे चरने को ताक रहीं हैं, लाख प्रलोभन हैं, मन

भोला है, सभी अपना-अपना माल दिखा कर खरीद ने को कहते हैं, मन कैसे बच पायेगा ? प्राण कब तक प्रतीक्षा कर पायेंगे ? आशा की डोरी में जीवन झूल तो रहा है किन्तु काँटों में खिलने से यौवन सुमन पीड़ित है। आज ही वे कर आ कर क्या इसे नहीं चुन सकते ? यदि आवें तो ज्योत्स्ना में मैं लघु जुगनू-सा घुल जाऊँ, किसी गगन के ओस बिन्दु की भाँति टपक पड़ूँगा, उषा के हास में दीपक-सा मिल जाऊँ उन शुचि चरणों में पिघल कर सावन घन-सा बरस पड़ूँ और फिर किसी के नयन का सपना बन कर छिप जाऊं। दिन बीतते चले जा रहे हैं, मैं उन की करुण प्रभा में बैठा हूँ मेरे चारों ओर सूनी सध्याएँ विचरती हैं, गगन में चारों ओर थके पंख चलते हैं, चारों ओर सूनी आहें घूम रही हैं,: जगत् अतल रुदन में डूबा है, आशा की ध्वनि को चुपचाप सुना करता हूँ, अपनी अभिलाषा को पीता हूँ, नदी के तटों पर बैठा उन लहरों को चुपचाप देखा करता हूँ, तम्हारा नाम ले ले कर आहें भरता हूँ। तुम, नदी किनारे बैठे, जल में चरण डुबो, अपनी सुध-बुध भूल गीत गाने में लीन हो। मुझ में अंधकार भरा है, कुछ भी हरियाली नहीं रह गई है, निराश जीवन नीरव रोदन करते-करते गंभीर दुख का गहरा सागर बन गया है; तुम प्रकाश हो, मधु की शोभा हो, आशा की वाणी हो, हँसी की छटा हो, सुख हो मुझे मिलो, मुझे को अपने यौवन का शृङ्गार बनाओ। यौवन के अतिथि ! आज तुम यदि आ जाओ तो तुम्हारी अगणित भी इच्छायें यह कल्प वृक्ष शायद पूरी कर लेगा। मृत्यु के पश्चात् यह सुन्दर काया प्राणों ने जिसे न जाने कितने तप सह कर पाया है, विधाता ने जिस पर जग का सौन्दर्य लुटाया है, नहीं रह जावेगी और न ये हरे भरे खेत, विजन बनों में बहती, कुसुमित पुलिनों की ये मृदु सरितायें तथा पुष्पों में फिरती भिखारिणी मधुकरियाँ ही रह जावेंगी तब ऐसी शीतल छाया कहाँ मिलेगी, हरीतिमा तब न फिर सकेगी, रो-रो कर भी यह शोभा हरी

न हो सकेगी।

नयनों की वह प्रीति सभी अंगों को भाई,नयनों की वह तन्मयता सब ने अपनाई; प्राण उन्हीं मृदु ध्वनियों की गुञ्जन में डूबे रहे, अधर उन्हीं में लीन रहे। मैं ने अनुभव किया कि मुझे भी कोई प्यार करती है, मेरे ही चिन्तन में कोई डूबी रहती है, आँगन में आती है, द्वारों पर बैठी रहती है, सूनी आहें भर ज्योत्स्ना-सी पीली पड़ती है; घर के भीतर बाहर जाती है, हँसती गाती है। शशि की मूर्ति, दर्पण के आगे जा कर फूलों से अपने केश सजाती है, मानव बन कर पृथ्वी पर रहती है। मेरे कंटकाकीर्ण पथ पर किसी की हँसी फूल बिछा जाती है, किसी की याद मुझे शुचि करने को आती है। जब, तूफान उठता है, गगन में मेघ गरजते हैं,अंधकार में मुझ को जीवन-पथ के चिन्ह तक नहीं मिलते, तब किसी की मूर्ति, दीपक ले कर आगे-आगे जाती है, मेरे पथ में हँसी के फूल बिछाती है, मैं उन्मत्त हो कर नाचने की सोचने लगा था किन्तु मेरे लिये कहीं से भी कोई संदेश, नीरद नहीं लाए। म हंसों ने ही मुझे सुख के संवाद सुनाए, जीवन में कहीं से भी सुख की छाया नहीं आई, मेरी सुर दुर्लभ तरुणाई यों ही बीत गई। भावी जीवन को घन तम से भरता हुआ, मेरे जीवन का नक्षत्र, गगन से झर रहा है, शून्य मरण का अंधकार मुझे विषाद से वेष्टित कर रहा है। शशि डूब रहा है, बादल टपक रहा है, निर्झर मरु देशों में भटक रहा है। हंस, नभ में करुण ध्वनि, करता मरता है, दीन भौंरों के व्याकुल रव में कली मरती है। भरे कंठ में ही प्राणों का कण अटक रहा है। धैर्य, प्राणों से विदा होना चाहता है। दूर बजती शहनाई, वधू को बर के घर लिए जा रही है। पृथ्वी पर मैं खंडहर की भाँति खड़ा, इस मेघ मलीन दिन में, कानों को मूँद कर वह गीत गा रहा हूँ जिसे स्वयं मैं नहीं सुन पा रहा हूँ। न जाने किस भूले जन्म की कथा, व्यथा बन कर उमड़ आई है। जीवन के द्वारों पर मृदु शहनाई बजती है; सजल पुरवाई पवन चलती है।

लहरें तट तक आती हैं और मुसका कर लौट जाती हैं। मेरी वधू उमड़ी वर्षा-सी आई और रोती हुई चली गई, अब मेरी गुंजन को कोई और प्यार करता है, मेरी आँखों को अब कुछ नहीं सुहाता। मेरी स्मिति, प्राणों के द्वारों तक आ कर ही अब रह जाती है, रो कर ही वह थमती है। अब मैं परिचित नयनों से भी डर-डर कर मिलता हूँ। मुझे जीना अब खलता है। दीन-हीन तरु छाँहों में भी मेरा जीवन छिप-छिप कर चलता है।

अदृष्ट में इतना दुख था मुझे कब मालूम था! हम ने तो जीवन को हँसी खेल ही समझा था, विषाद के इस रूप को अब तक पहिचाना कहाँ था। मेरे लिये बसन्त अब नहीं आवेगा, कोकिला नहीं गावेगी, चाँदनी नहीं हँसेगी, कमल नहीं खिलेंगे, भौंरे नहीं गूँजेंगे; सुरभित पवन में मेघों की शोभा नहीं बरसेगी। हँसना अब, रोने से भी कठिन हो गया है, जीवन अब मरने से दूभर है। टूटा हुआ हृदय फिर नहीं जुड़ता; खोया हुआ यौवन फिर नहीं मिलता। जिस की पाँख टूट गई हों वह उड़ नहीं सकेगा; शिशिर ने जिसे गिरा दिया हो वह पात वृक्ष के हृदय से लग कर फिर,हवा में नहीं हिल सकता। बधिक ने जिस मृग-शिशु को भूमि पर गिरा दिया हो, मृगों के झुण्ड में जा कर वनों के बीच फिरने की आश वह नहीं कर सकता। जो नाव डूब जाती है जल में वह फिर नहीं चलती। इस टूटे जीवन को मैं कहाँ ले जाऊँ? इस उजड़े उपवन को कहाँ छिपाऊँ? आँखों के इस अकूल रोदन को कैसे थामूँ? इस पीड़ित यौवन को कैसे बचाऊँ? इस निष्ठुर परिवर्तन को कैसे समझूँ? आँखों से आशा क्षीण-क्षीण होती चली जा रही है. पृथ्वी का कोई कोना ऐसा नहीं रह गया है जहाँ अपना मुँह छिपा कर जी भर रो सकूँ! भाग्य ने मुझे सब कुछ के लिये तरसाया; काँटों के किरीट से ही उस ने मुझे सजाया, इस उठते यौवन में ही मुझ को मरना था? जो कभी स्वप्न था वह आज सत्य हो गया है, जो एक दिन वास्तविकता

थी वह आज स्वप्न में बदल गई है, नींद टूटी तो समझ में आया, सहज करुणा का ही भाव वह था जिस ने सिरहाने आ कर मुझे दो दिन बहलाया। वह प्रेम नहीं था, मेरे दुख का उपचार था। यौवन के पथ पर जा कर मैं ने अपने मन को लुटाया, धोखा खाया और धोखा खा कर पछताने में ही नश्वर जीवन को, अमर हुआ समझा। मैं यही समझता रहा कर्म तुच्छ है, भावना ही सब कुछ है, मृग-मरीचिका और सपना न चाहे सत्य हों, न चाहे अमर हों किन्तु उन में जो सुख है, जो सुन्दरता है वह न जाने कितने स्वर्गों की घर है किन्तु भाग्य ने ठोकर दे कर मुझे अन्धकार के उस गहन गर्त में गिरा दिया जहाँ से उठ सकना अब असंभव है, कहाँ मेरा प्राण सिसक-सिसक कर रवि के आलोक और शशि के सुन्दर हास के लिए मर रहा है। दुखी हृदय मधुर कल्पना आज भी मेरे मन को सुख के बन में भटकाती रहती है मृत इच्छाओं में अभी भी जीवन सुलग रहा है अभी भी जीवन के उन स्वप्नों को मैं देखता हूँ जो कभी भी मेरे अपने न हो सके, जो मेरे सुंदर जीवन को नष्ट कर गये। इतने दिन हो गये पर मेरा भाग्य नहीं फिरा, दुखों का घेरा नहीं उठा। अब मुझे मना हो गया है दुख ही पारस मणि है, भाग्य देवता है, आस्तिकता में ही शान्ति है—

कर्म तुच्छ मैं जिसे समझता था, वह तो था,
भाग्य देवता, निर्णायक मेरे जीवन का,
बीज व्यर्थ कह मैं ने पथ में जो छितराए,
आज उन्हीं के फल मैं ने चखने को पाए,
ठुकराया मैं ने अमोल हीरा कंकण-सा,
कर्म तुच्छ मैं जिसे समझता था वह तो था!

अपने को हीन समझना ठीक नहीं, यत्न करने में ही कुशल है—

दीन न समझो, मन अपने को दीन न समझो,
तुम हो पूर्ण काम, अपने को हीन न समझो,

करो न चिन्ता, वह है प्रभु को कोपित करती,
धीर धरो धीरता सभी संकट है हरती,
यत्न करो, जीवन को भाग्याधीन न समझो,
दीन न समझो, मन अपने को दीन न समझो !

दुख ने मुझे झुका दिया किन्तु मैं अब वहाँ पहुँच गया हूँ जहाँ सुख मुझे नहीं हँसा सकता, दुख मुझे रुला नहीं सकता। यम के देश को मैं बुरा अब नहीं समझता वह तो पृथ्वी पर चल रहे भाग्यों की कान्ति का अस्ताचल है, शान्ति का वह सरोवर है जिसमें द्विधा-द्वंद, सुख-दुख की लहरों पर उज्ज्वल जलजात यम देव डोलते हैं। वेदना रहित इस उज्ज्वल देश में मैं जा रहा हूँ अपने-अपने अमर रूप इस गीत को भी मैं विदाई देता हूँ। मैं यही चाहता हूँ मेरा यह गीत उर को स्वच्छ करनेवाली करुणा को फैलावे, जीवन में अनुराग जगावे, कलुष हर कर चिर निराश उर में भी आशा का दीप धरे नास्तिक को दृढ़ आस्तिक बनावे, युग-युग तक संसृति में विचरण कर मेरे सुख-दुख की वार्ता, निन्दा-स्तुति की चिन्ता न करते हुए सब को सुनावे। मेरी यही कामना है इस गीति-कथा की समाप्ति के साथ सब के जीवन में शान्ति व्याप्त हो, सबको जीवन में शान्ति प्राप्त हो।

अपने प्रेम की भस्म से उत्पन्न हृदय मंदाकिनी में शान्ति-भक्ति की उज्ज्वल प्रणय चाँदनी, 'चन्द्र' ने छिटकाई है जिस के तीर कुँवर' के स्वरों में स्वर मिला, वसुधा भी गा रही है—

जीवन का है अन्त, प्रेम का अन्त नहीं।
कल्पवृक्ष के लिए, शिशिर हेमन्त नहीं।

—:*:—

९ तपस्वी कवि

चन्द्रकुँवर की कविताएँ ही उन के कवि जीवन की तपस्या की परिचायिका हैं। 'गीत माधवी' और 'पयस्विनी' इस दिशा की विशेष निर्देशिका हैं। 'गीत माधवी' अयं विशेष है। 'छोटे गीत' और 'माधवी' का सम्मिलित नाम 'गीत माधवी' है। प्रकृति और प्रेम के बीच कविता की सिद्धि प्राप्त करने की अभिलाषा और उस में पड़नेवाली बाधाओं को अपना विषय बना कर यह रची गई है।

स्वर्ग की ज्योति, सौन्दर्य-प्रभा, देव-कन्या, वनदेवी, चन्द्रिका-कुमारी आदि अनेक रूपों में देवी सरस्वती की अटूट आराधना चन्द्र-कुंवर ने जीवन के अन्तिम क्षणों तक एकान्तभाव से की। यह जानते हुए भी कि—

हिम-गिरि और उदधि के रहते क्यों चन्द्रिका-कुमारी
होना चाहेगी इस झुलसे उजड़े मरु की प्यारी!

उस ने अपनी भागीरथी का मार्ग स्वयं ढूँढा। अकेले में अपनी शक्ति जागरित रक्खी। सघन निराशाओं के कलुषित प्रवाहों के बीच भी अपनी आत्मा ज्योति को मन्द न होने दिया। उस ने अनुभव किया कि कविता, रवि की दीप्त प्रभा है जिस के सम्मुख कुहरा अधिक देर नहीं टिक सकता—

हाय कौन मैं! हृदय भरा क्यों यह इतनी आशा से?
इस कुहरे को प्रेम हुआ क्यों, रवि की दीप्त प्रभा से?

स्वर्ग की वह ज्योति एक जिसे प्रेम कहते हैं एक बार मनुष्य के जीवन में आती है। जिस समय प्राणों के द्वारों पर आ कर वह बैठ जाती है हृदय का कोना-कोना उस समय प्रकाशित हो जाता है, मिट्टी भी सोना बन जाती है। वह आती है तो स्वयं आती है। खींच तान कर पर्दे पर

नहीं लाई जा सकती। वह देव कन्या है, सौन्दर्य प्रभा है, पवित्र हृदय को देवता बना देती है, उसे असीम सौंदर्य दे देती है, किन्तु कलुषित हृदय को कहीं का नहीं रहने देती। देवकन्या सौन्दर्य-प्रभा, जीवन मृत्यु रूपिणी है। वह उस देश की राजकुमारी है–

जहाँ मधुमती भूमि, जहाँ हैं बहतीं मधु सरिताएँ,
जहाँ दिगन्तों से बहती हैं मधु से सिक्त हवाएँ

सब कुछ ठुकरा कर उस ने उस राजकुमारी को प्राप्त करने की कामना की थी–

कंचन औ मोती ठुकरा कर यह भिक्षुक कर क्रंदन,
बाँहें फैला माँग रहा है, मधु-लक्ष्मी के आलिंगन!
जिसे देख कोकिल के उर में उठती उन्मद वाणी,
इस जीवन में कब आवेगी वह शोभा कल्याणी?
मधुर स्वरों में उसे कभी मैं बन्दी भी कर पाऊँगा?
रेखाओं के बीच कभी क्या, जीवन भी दे पाऊँगा?

पतझड़ भर नंगे पाँवों चल कर, नव वसन्त के पहले दिन वह दीन भिखारी के रूप में उस राजकुमारी के आँगन में उसी के प्रेम का संबल लेकर आया था:—

पतझड़ भर चल नंगे पावों, नव बसंत के पहिले दिन,
प्रणय पुरी में मैं पहुँचा हूँ गोधूली-सा धूलि मलिन!
प्रीति-नगर में मैं परदेशी दूर देश से आया,
एक भिखारी राज सुता को वरने को है आया।
क्या है मेरे पास विश्व में एक आश को तज कर?
क्या बल है मेरे प्राणों में प्रेम तुम्हारा तज कर?

आया था एक भिखारी, राज-सुता को वरने को आया था, किन्तु उस ने देखा न तो उस के स्वर मधुर हैं, न उस में रूप है, न गुण है, न उस में यम के भीम-वनों में विजय-नृत्य करने वाली शक्ति है,

न माथे पर मुकुट है, न कानों में कुंडल, न छाती पर हार और आज स्वयंवर-सभा जुटी है; लोग इस सभा में संसृति को विस्मित करने वाले घोष से, गज पर चढ़ कर आ रहे हैं, रत्न जटित मंचों पर मन मोहक वेष में बैठ रहे हैं, ऐसे लोग भी आये हैं जो तुच्छ धूलि से सहसा ही उठकर अपने प्रताप से अम्बर को भर चुके हैं, जिन की आशाएँ पूरी हुई हैं, जिन्हें पृथ्वी में दाएं-बाएं सुख ही सुख मिला है, जिन्हों ने काँटों में अपने प्राण बिछा कर दुख के शतमुख क्रुद्ध भुजंग को पटक मारा है; उस की मणि को अपने किरीट पर धारण किया है, ऐसे भी हैं जिन्हों ने दलित-दीन देशों के दुख से पीड़ित जर्जर कंकालों में तरुण रुधिर भर कर नव जीवन का संचार किया है, और ऐसे भी जो नवीन नवीन गीतों से पवन को झंकृत करते हैं, पृथ्वी के निर्मल लोचनों को नये-नये स्वप्नों से भरते हैं और धरा के अधरों को नये नये गीतों से कम्पित करते हैं; आये सभी किन्तु उस राजकुमारी को पाने के सभी के स्वप्न व्यर्थ गये।

'हार गये जग के कितने नृप ले कर वैभव अपने,
राजकुमारी को पाने के व्यर्थ हुए पर सपने!

उस की समझ में आ गया वह राजकुमारी स्वयंवरा है, देव पुत्र को वरण करेगी। उसे अपनी बना कर रखने की भावना ही संकुचित है प्राची की वह सुकुमारी तो स्वर-स्वर की है, लहर-लहर की है---

तुम मेरी ही नहीं अकेली, तुम प्रिय हो स्वर-स्वर की,
मेरी प्राची की सुकुमारी, तुम हो लहर-लहर की!

इसलिये वह सब को अपनाने वाली दृष्टि को अपना लेता है, प्रेम मुखर नहीं होता, छवि कभी भी बंधन में नहीं बंधती। जिस से प्रेम है उस की प्राप्ति न होने पर भी तो उस से प्रेम किया जा सकता है। बचपन से ही जिस के चरणों पर अपना जीवन न्यौछावर किया, जिस की पूजा की वह आनंदी-निर्झर न सूखे, उस की छाया का सेवन कोई

भी करे मुझे तो उसे सींचते ही रहना है ।

इन दुर्बल दीन दृगों के स्वप्न सत्य न हुए, प्रकृति में अनेक परिवर्तन हुये पर चिर प्रतिकूल दैव मेरे अनुकूल नहीं हुए, भूल मेरी ही थी—"जो धनिकों के काम की चीज़ है उस कविता को मुझ दरिद्र ने अपनाना चाहा।" स्वप्नों का वह घर उजड़ गया । आँसुओं ने सारे अंकन को बिगाड़ दिया । सुख की उत्साहित भाषा से आरंभ होने वाली कथा, आहों और निराशा में समाप्त हुई, जिस के चरणों पर अपना सब कुछ अर्पित कर, अपनी सुध बुध खोकर इस पृथ्वी पर दौड़ता रहा, वह निरी छलना निकली । मेरा सारा श्रम व्यर्थ हुआ, उस परिश्रम का आज यही अर्थ हुआ है कि मैं निर्जन पथ पर पड़ गया हूँ; मेरा जीवन, साँसे खो रहा है । जिसका सब से अधिक विश्वास था जब वह ही नहीं रहा तब मेरे लिये कुछ भी नहीं रह गया । पृथ्वी से सब कुछ चला गया । रात भर जिस स्वप्न ने साथ दिया था प्रभात होने पर वह पल भर भी सत्य न रह सका । मृत्यु जीवन ज्योति नागिनी ने आकाश के बादलों को ही नहीं मुझे भी हुआ । चंचला दीपक को हाथों में लिये, शैल पर किसी को खोजने वाला जलधर ही अकेला नहीं था, मैं भी अकेला था, बिजली ने शृंग पर बैठ कर अपने नखों से बादलों को चीरा, उसे तोड़ दिया । आकाश से प्रकाश वृष्टि हुई, बिजली चमकी, कौंधा लहका, क्षण भर तम का भी अन्तर प्रदीप्त हो गया, बरसा के पश्चात आये उज्ज्वल प्रभात के निरभ्र नभ की भाँति मुझ को भी हँसना ही भाया, पर फिर क्षण भर ही में अंधकार हो गया । प्राणों पर असह्य भार पड़ जाने से आशाएँ अभिलाषाएँ चिर तिमिर-पाश में बँध गई । आँसू बरसाती हुई ये आँखें, ज्योति द्वार अब खोज रही हैं । भाग्य से मैं पूछ रहा हूँ - तुम ने मेरे सुख पर अश्रु क्यों गिराये ? तुम्हें मेरे तनिक से सुख से इतनी ईर्ष्या क्यों हुई ? हे भाग्य देवता ! जग में अंधकार भरो और मुझ को अपने में लीन

कर दो । मैं मौन भाव से आकाश में तारा बन कर पृथ्वी पर होते साम्राज्यों के संघर्षों को देखूँगा। मैंने भी प्रसन्न होना चाहा था, तुमने बज्र गिरा कर मुझे पृथ्वी पर खंडहर बना दिया। मैं ने भी वसंत की मुरली बनना चाहा था, तुमने मुझे शिशर शीर्ण बना कर समाप्त कर दिया। वह विशाल वृक्ष जिसकी छाया में प्राणी विश्राम पाते थे, आज तुम्हारे प्रहार से टूट गया है, उखड़ कर पृथ्वी पर गिर गया है, उस के शिखरों की हरियाली, भेड़ें आज चर रहीं हैं । लोग उस की बाहें फाड़ कर लकड़ी इकट्ठी कर रहे हैं। इस से अधिक और क्या हो सकता है ? अब जो कुछ भी दोगे उसे अपनी सिर आँखों पर ले लूंगा, मेरे पाँव धरती पर और नयन स्वर्ग में चल रहे हैं। धरणी पर काँटे भरे हैं स्वर्ग में पावन सुधा है। पदों पर सर्पिणी के तीखे दंश मैं सह रहा हूँ मेरे शीश पर सुधा कर अमृत की वर्षा कर रहा है नयन कहते हैं हम स्वर्ग जा कर ही रहेंगे, चरण कहते हैं हमें छोड़ दो हम मरेंगे ।

चन्द्रकुँवर के पाँव धरती पर और नयन स्वर्ग में सदैव चले हैं। कल्पना और तथ्य, विज्ञान और काव्य, मानव और प्रकृति, लघु और विराट, सुख और दुख, अन्धकार और प्रकाश, आशा और निराशा को छूता हुआ उन का त्रिलोक व्यापी काव्य, भाषा के पार्थिव शरीर में पृथ्वी का रहते हुए भी भावों में स्वर्गीय हो जाता है। काव्य की भूमि में उन्हों ने आकाश की गंगा, पृथ्वी की मंदाकिनी और हृदय की सरस्वती को एक साथ बहाया है। उनकी 'गीत माधवी' 'विराट ज्योति' 'प्रणयिनी', 'पयस्विनी' को 'कंकड़-पत्थर' की भूमि पर बहाती है, मानसिक शान्ति की प्रसन्नता लिए हुए वह बहती है। उस में बसंत-श्री के साथ, हिम शिखरों पर चटकीली चाँदनी खिली है। ऊषा, मध्यान्ह, संध्या, तमी सब में उन के उदार हृदय के करुण सौंदर्य की चेतना मिली हुई है, प्रेम के प्रियाभिमुख भावोन्मेष के बीच उस में

काव्य की मधु लक्ष्मी के स्वर विद्यमान हैं। रूप-रंग और भाव-चित्रों के स्पर्श सुख के बीच, दिव्य रसानुभूति की करुण वेदना की शान्ति बहती है।

चन्द्रकुँवर की काव्यानुभूति, 'जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये' की चेतना से भिन्न है, 'नयन नीर क्यों अधीर आज मधुर मिलन रे !' तथा 'कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा ?' से भी उस का मेल नहीं। 'सखि वे मुझ से कह कर जाते' से वह लाखों मील दूर है। 'कब हूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हि लै बरसो !' और 'जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन' के पास-पास वह कभी आ जाती है, किन्तु उस का मुख्य वातावरण 'तमसो मा ज्योतिर्गमयः', 'असतो मा सद्‌गमयः', 'मृत्युर्मा अमृत्युर्गमयः', 'चरेवेति-चरैवेति', 'नहिं कल्याण कृत कश्चिद्', 'उठो' आनन्द, हृदय को करो न चन्चल, अपने पथ के दीप बनो तुम, अपनी मुक्ति स्वयं ही खोजो' 'संचारिणी दीप शिखेव एव' 'भाव स्थिराणि जननान्तर सौहृदानी' 'अयि कठोर यशः किल ते प्रियम्' 'एकोरसः करुण एव निमित्र भेदात्' यू मर्डरड डायसेक्ट' 'अबंडरिंग म्वाइय' 'टु मी दैट कप इज डिनाइड,' और कर्स बी दि नाइट दैन नय्ह चाइल्ड वज कन्सीम्ड' की धाराओं के बीच अपनी लहरों को अपने ही गीतों से मुखरित रखने वाला है।

"मौलिकता जीवन यौवन है, अनुकरण आत्म हत्या है और रुढ़िवादिता जीवन-मृत्यु' इस सिद्धांत को लक्ष्य में रखने वाली चन्द्रकुंवर चेतना, हमें अपने ही घर की बनी चीजें देती है। चन्द्रकुंवर की चीजें जर्मनी, इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली, रूस, अमरीका या जापान से बन कर नहीं आई हैं, न मैदान की भूमि के कारखानों ने ही उसे पैदा किया, हिमशिखरों से निसृत शुद्ध भागीरथी की भांति पवित्र और निष्कलुष हिमवंत-हृदय की देन वे हैं, बाह्य रूप में यदि कहीं समय हो जाता है

तो उस कारण युग साम्य है, चेतना-साम्य नहीं। एक ही पथ के पथिक होते हुए भी प्रसाद, पंत, महादेवी, बच्चन आदि के समान धर्मा वे नहीं हैं इसी भांति, वैदिक कवि, सिद्धार्थ गौतम, कालिदास, भवभूति, विद्यापति, रसखान, घनानंद, वर्डसवर्थ, कीटस्, श्यैले, टेनीसन और बाइबल के मेल में होते हुए भी चन्द्रकुँवर की चेतना और कविता इन से भिन्न हैं, देश-देश की आशाओं, भाषाओं की धाराएँ उनके हृदय में मिली हैं पर लहरें उन की अपनी ही रही हैं। हेममयी संध्याओं और रजत राकाओं तथा स्वर्ण प्रभातों ने अपना सोना-रूपा उन पर बरसा दिया है। प्रकाश तरंगों ने उन्हें अपने मोती, पक्षियों ने कलरव, पुष्पों ने सुरभि प्रकाश-अंधकार ने जीवन दर्शन उन्हें दी है, प्रेरणाएं उन्हें सब ओर से मिली हैं किन्तु अनुभूतियाँ-अभिव्यक्तियाँ उनकी अपनी हैं। किसी बोली विशेष, कवि विशेष, अथवा साहित्य विशेष तक ही अपनी दृष्टि को संकुचित कर देने वाले कवि, चन्द्रकुँवर नहीं थे मैं किसी कवि को उस की भाषा या उसके देश के कारण क्यों ना पसन्द करूँ? कवि, मनुष्य है, उस ने मनुष्य के हृदय का संगीत गाया है। उसे तो किसी से द्वैष नहीं था। यदि उसे द्वैष होता तो भला वह गा पाता? तो फिर मैं अपने हृदय को इतना संकुचित लोहे के संदूक में क्यों बन्द करूँ? मुझ तो विशाल होना चाहिए।

प्रति प्रदेश की मुखरा धारा मिले हृदय में मेरे,
पर मुखरित हों मेरी लहरें अपने ही गीतों से!

मंगल वार चार अक्टूबर उन्नीस सौ अड़तीस ईसवी को उन्हों ने ये शब्द अंकित किए थे। अपने हृदय की इस विराट उदारता से उन्हों ने अपनी रचनाओं को प्राणवान बनाया है। उन्हें वह दिव्य रूप दिया है जो हृदयहीनों तथा जुगुनू-उलूक संप्रदाय के लोगों तथा धर्म और साहित्य के ठेकेदारों के लिए तो 'हृदय का व्यभिचार', 'भौतिक पापों का प्रक्षालन' है किन्तु हृदयवानों के लिये अन्यत्र दुर्लभ आनंदी निर्झर है'। 'चन्द्रकुँवर की लेखनी से कविता की जो पंक्तियाँ लिखी

गई हैं वे सौदामिनी की रेखाओं की तरह उजला प्रकाश लोक में भरती रहेंगी। कविता की भाषा यदि अमर है, यदि उस का तेज, काल-विस्तार पा कर सदा बढ़ता ही है, यदि मानव के हृदय की भूमि भावों के अंकुरों के लिए कभी अपनी सजलता नहीं खोती तो आज न सही, पच्चीस वर्ष बाद, जब इस पृथ्वी पर नये हृदय जन्म लेंगे तब चन्द्रकुँवर की वीणा का गान सुन कर वे अवश्य खिलेंगे, उस समय इस कवि की संबर्धना को देखने के लिये हम न रहें, पर मेरे जैसे इक्के दुक्के व्यक्तियों के लिये तो चन्द्रकुँवर की कविता का आनन्द··· पयस्विनी के द्वारा अवश्य सुलभ···है;" (डा० वासुदेवशरण, १६५०ई०)

जन जीवन की सरस्वती की वंदना 'ओ गंगा माई' में करने वाले चन्द्रकुँवर ने हमें स्वर्ग सरि मंदाकिनी, सोच मत कर गीष्म को लख हे सदय भागीरथी के ही दर्शन नहीं कराये वरन् शंकर के अधरों की स्मिति की पवित्र हिम-लहरों की माता, उस अलकनंदा के भी दर्शन गीत माधवी के छोटे गीतों में सुलभ करा दिये हैं जो हिम शैलों में निर्द्वन्द फिरती रहती है।

जय-जय कल्याणि अलकनन्दा, शैलों में फिरती निर्द्वन्दा !
माता पवित्र हिम लहरों की, स्मिति-सी शंकर के अधरों की,
आनंदमूल परमानंदा !

अपने विषय में चन्द्रकुँवर की धारणा थी कि वे कभी न बुझने वाली आशा-ज्योति की हिमालय पर गिरी पहली सूर्य किरण है। धरा पर मानव-शरीरी सूरजमुखी हैं, नभ में तैरती ज्योत्स्ना हैं, जल में ज्योति विकसित हंसयुक्त निर्मल तैरते कमल हैं। यह सत्य है कि नभ की मुग्ध हवाओं ने उन के जीवन को पी लिया, 'देवता जिन्हें प्यार करते धरती पर वे न अधिक खिलते' के अनुसार वे अब स्वर्ग में हैं उन्हों ने भी उस शाश्वत शास्ता यम की राह का अनुसरण किया जिस के लिये उन्होंने अपने 'महाअतिथि' (यम) में स्वयं लिखा है।

गौतम सिद्धार्थ, कृष्ण, रामभद्र-जानकी इसी राह सब गये,

इसी राह जीवित सब जगती के चल रहे ।

उन का भौतिक जीवन क्या था कैसा था समय आने पर हम इस बात को भी जानेंगे, स्वयं उन्हों ने अपनी जीवन-गाथा की लघु गीता को चार पंक्तियों में भी अंकित कर दिया है ।

जीवन ने मुझ को प्रभात की भाँति खिलाया,
आशाओं ने मुझे कुसुम की भाँति हँसाया,
संध्या ने कर दिया थकित मुझ को शोभा से,
स्निग्ध मरण ने मुझे निशा की भाँति सुलाया !

अपनी काव्य-साधना को चन्द्रकुँवर ने अपना सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी नहीं छोड़ा । जीवन के अत्याचारों को सहा, अपमान को पिया, आँसुओं को पिया, बंधु-बांधवों, सगे सम्बन्धियों,तथा धन-सम्पत्ति को स्वाहा होते देखा; गरीबी-बीमारियों के हाथ अपनी तबाही देखी; संपादकों, प्रकाशकों और यूनिवर्सिटी प्रोफेसरों की उपेक्षा को पाया शरीर को खोया, प्राणों को मुरझाते देखा लेकिन अपने इस दृढ़ विश्वास को कभी नहीं डगमगाने दिया कि हलाहल पान कर के भी जिस सरस्वती की धारा को हृदय बहा रहा है वह कभी देश जीवन की सम्पत्ति होगी । भवभूति के समान ही उन का भी दृढ़ विश्वास था कि यह कटुता जो पीने में विष के समान लग रही है जीवन को अप ने पारस-स्पर्श से सुवर्ण सुन्दर बना देगी, कविता को मृत्यु जय यह करती ही चली जा रही है, जब मैं न रहूँगा, तब भी मेरी कविता रहेगी, कभी न कभी समानधर्मा अनंत काल और विपुल पृथ्वी की सीमाओं में अवश्य पैदा होगा, उस के लिये मेरा साहित्य है । वह समय भी आवेगा ही जब कि छोटे बड़े, गरीब अमीर सब के द्वारों में मेरे गीत समान रूप से आदर पावेंगे। इसी विश्वास के कारण उन्हों ने अपनी भावनाओं के प्रतीक हिम पर्वतों को अपनी रचनाओं का आधार स्तम्भ बनाया था; ख्याति और धन की खोज में दौड़ने वाले मित्रों को उन्हों ने शिखरों पर पहुँच कर सूर्य की तरह चमकता और देवता

की तरह पूजे जाते देखा वे तब भी अपने को ईश्वर के भरोसे छोड़ कर अपनी कविता की उपासना में नील शैलों को एक रस देखते हुए लीन रहे। वे उन हिम शृंगों को देखते रहे जिन का प्रकाश रात दिन एक समान रहता है जिन की गगनोन्मुखी शृंग मालाएँ पृथ्वी के उठे हुए हाथ पर कमलों की माला की भाँति सुन्दर लगती हैं। उन्हों ने देखा एक बरसाती नाला प्रचंड होकर किनारों को तोड़ता गरजता, दहाड़ता हुआ गंगा की ओर बढ़ कर कह रहा है—'मुझे अपनी बेटी व्याह दो' और गंगा माई कह रही है,–बेटा गर्मियों में आना।' किन्तु उन्हों ने यह भी देखा कि जिस पृथ्वी ने उनके यशाकांक्षी मित्रों को ख्याति दी थी उसी ने अकारण ही उन्हें अपमानित कर पैरों तले कुचल डाला है, और उन के वे धन-पति मित्र जिन के द्वारों पर भिखारियों की भीड़ लगी रहती थी, आज कंधे पर फटी झोल रख कर द्वारों-द्वारों पर घूम रहे हैं। जेठ का महीना आने पर, वह बरसाती गरजता-दहाड़ता नाला, पत्थरों के नीचे चुल्लू भर पानी में तड़फ कर मर रहा था और सुन रहा था कि गरजती हुई गंगा, समुद्र की ओर चली जा रही है, और पुकार कर कह रही है—'ओ युवक ! मेरी लड़की से शादी करने कब आ रहे हो ?" उन्हों ने अनुभव किया बर्बस प्रचार से कविताओं का आदर नहीं होता, कविता यदि हृदय की सत्यता है, कविता है तो चाहे कहीं हो, किसी की भी लिखी हो पढ़ने वाले को कवि का प्रेमी बना देती है। इसलिये उन्हों ने मौन भाव से कविता की उपासना की, जन-कोलाहल के बीच अपने हिमालय को आराधा, जीवन के छिद्रों-छिद्रों से सघन निराशा के कलुषित प्रवाह प्राणों के दीपक को अंधकार में विलीन कर देने जब फूटे चले आ रहे थे तब, यशस्वियों की पृथ्वी के दुर्गम शिखरों पर बैठ कर अपने को देवता बनाया, सूर्य की उपासना कर कलुषित दुर्बल स्वप्नों को भस्म किया अलकें फुफकारते, मुख में अंगारे और आँखों में आग सी लेकर आने वाले यम देव के वज्र कठोर प्रहार

को पाकर अपने मानवीय हृदय के भय को दूर किया, दीन हरिण ने व्याघ्र की दाढ़ों में अपना सिर डाल कर आर्द्र कण्ठ से अपने महा अतिथि का वह स्वागत गान गाया जिसके विषय में डाक्टर वासुदेव शरण ने लिखा है—"मृत्यु की इस साक्षात तीव्र अनुभूति के मध्य में कवि ने अपनी 'यम' शीर्षक कविता लिखी जो कि शब्दों की प्रचंड शक्ति एवं उत्तरहीन उपालम्भ के गुणों से ससार की यम विषयक कविताओं में श्रेष्ठतम स्थान पाने योग्य है। यमराज के साथ हमारे देश का परिचय कई सहस्राब्दियों से है, किन्तु कठोपनिषद की एक झाँकी के अतिरिक्त यम का मानव के सामने इस प्रकार का साहित्यिक अस्तित्व अन्यत्र दुर्लभ है।" और अपने चार अप्रैल उन्नीस सौ पैंतालिस के एक पत्र में चन्द्रकुवर के लिये लिखा—"हे मातृभाषा के महा कवि! हम सब के पुण्य से आपके प्राणों की रक्षा हो, आप के पत्र में यम की जो छाया है कहीं वह हमारे सौभाग्य से हट सके और आप को कुछ और संवतसरों का जीवन वरदान भगवान अर्पित करें यही प्रार्थना है।"

चन्द्रकुँवर जीवन के अंधकारमय शोक-सागरों में जितना ही अधिक डूबते चले गये उतना ही उनका काव्य कमल ज्योति में ऊपर उठता चला गया, वे कितनी दूर तक नीचे गये? उन का काव्य कितना ऊपर उठा? इन प्रश्नों का उत्तर, हिन्दी-संसार की कल्पनासे अभी दूर, अत्यन्त दूर है—

> "पूछेगा कौन उसे रहता वह अब कहाँ,
> दूर-दूर, कल्पना नहीं पहुँचती जहाँ!"

—:*:—

१० विराट भावना

हिन्दी का अधिकांश काव्य-साहित्य ऐसे कवियों और लेखकों के द्वारा बना है, जिनका जीवन नगरों में बीता है, अथवा जो नागरिक जीवन के बीच विकसित होनेवाली संस्कृति के प्रभाव में रहे हैं। इसलिए नागरिक सभ्यता के कोलाहलपूर्ण जीवन के ही दर्शन प्रमुख रूप से उनकी रचनाओं में होते हैं। नरोत्तमदास के सुदामाचरित की-सी, सम्पन्न और विपन्न जीवन का मेल करा देने वाली रचनाएँ हिन्दी में नहीं के बराबर हैं। यद्यपि अब ग्रामीण लोक-साहित्य को लिपि-बद्ध करने का यत्न, हिन्दी में भी आरंभ हो गया है, और गाँवों के लोगों के जीवन को चित्रित करने वाले प्रेमचन्द उत्पन्न होने लगे हैं, किन्तु इस में सन्देह नहीं कि असीम मुक्त सौन्दर्य की बहुमुखी पयस्विनी के उल्लास पूर्ण तन्मय चित्रों का हिन्दी-साहित्य में एक प्रकार से अभाव ही है। यद्यपि सुमित्रानंदन पन्त और गुरु भक्तसिंह ने प्रकृति के सुन्दर चित्र उतारे हैं और 'पल्लव', 'वन-श्री' तथा 'नूरजहाँ' हिन्दी की इस दिशा की अमूल्य कृतियाँ हैं फिर भी प्रकृति अपने रूप की वैयक्तिक तथा विह्वलकारी शोभन अभिव्यक्ति के के लिए चन्द्रकुँवर और 'अम्ब-रीश' के जन्म से पहिले विकल हो रही है। इन दो कवियों ने हमें हिमालय के बरदान के साथ ही साथ माँ दी है, बहिन दी है और दी है असीम सौन्दर्य सृष्टि की ज्योत्स्ना स्नात बसुमती। किन्तु दिखलाई यह देता है कि हिन्दी-संसार, अभी भी प्रकृति की सुन्दरता से मुग्ध हो जाने वाली दृष्टि को अभी भी कम ही मात्रा में प्राप्त कर सका है। अभी तक उस में उस विराट् हृदय का कंपन नहीं दिखाई देता जिस की पहुँच सीमाओं से परे के सौन्दर्य ज्योति के अन्तहीन प्रवाह तक होती है। अभी तो बौने ही विराट हैं, जुगनू ही सूर्य हैं।

कई शताब्दियों पूर्व ऋग्वेद के कवियों के पश्चात् महर्षि वाल्मीकि

ने प्रकृति के असीम सौन्दर्य की अपूर्व पयस्विनी बहाई थी और आदि कवि, की उपाधि से वे विभूषित हुए थे। व्यासदेव ने मानव-जीवन की विविधता का वह संपूर्ण विस्तार दिखलाया कि उन के महाभारत के लिए ख्याति हो चली— यन्न भारते तंन्न भारते,–जो बात भारत (के जीवन) में नहीं है वह महाभारत में नहीं है, जो बात महाभारत में नहीं है वह भारतवर्ष में भी नहीं है। कालिदास, मानव प्रेम के अपूर्व गायक थे किन्तु उन का मानव, विराट प्रकृति में एक अंग बनकर आता है; हिम शिखरों की सुर-सिद्ध-सेवित मंडली को, घाटियों में उतरते मेघों को, सृष्टि और स्वर्ग के सौन्दर्य उपकरणों से निर्मित अलका पुरी को, धूम-ज्योति और सलिल से बने मेघ को उन्होंने अपनी प्रतिभा से जड़ और चेतन के समन्वित रूप में देखा था। भवभूति ने शम्बूक का बध करा कर भी तब तक उसके प्राण नहीं निकलने दिए जब तक वह दंडकारण्य और पंचवटी की कहीं 'स्निग्ध श्याम' और कहीं 'भीषणाभोग रुक्ष' शोभा के काव्यमय दर्शन नहीं करा देता। भवभूति के शंबूक के पश्चात ही प्रकृति भी मानों, काव्य की गंभीर गोदावरी में निमज्जित हो गई, फिर उस के दर्शन नैसर्गिक रूप में नहीं होते। कभी कभी ही वह अपने सोए प्राणों की उपेक्षित वेदना सुनाने काव्य की भूमि पर क्षण भर के लिए आ पाती है। यह सत्य है कि "संसार का सत्य स्वरूप करुणा और वेदना से दिखाई देता है" किन्तु इस करुणा और वेदना का हिन्दी-साहित्य में वह नैसर्गिक स्वरूप नहीं आ पाया, जो "प्राकृति में भी मनुष्य के सुख-दुख के लिए सहानुभूति ढूंढ़ सकता है, परमात्मा के अन्तर्हित स्वरूप का आभास पा सकता है।"

हिन्दी साहित्य का आरंभ ऐसे वातावरण में हुआ जब, अनुभूतियों से अधिक महत्व उपदेशात्मक वृत्तियों के प्रसार को दिया जाने लगा था। राज वर्ग के बीच चलने वाले उस संकीर्ण अन्तः कलह के युग में जीवन की एक रसता बिखर-सी गई थी; उस में कड़ुवाहट-सी, आने लगी थी; शौर्य्य वीर्य की अवशेष शक्तियाँ, धूमिल प्रेम के लिए

मरु भूमियों में भटक रही थीं ; किसी तरह अपने दिन काट रही थीं ; गंगा की घाटी में कुछ समय के लिए टिमटिमा कर वह दीप-शिखा बुझ-सी गई थी। उस के धुएँ की नागिनें ही आकाश में गरज रही थीं। इसलिए शैशवावस्था में हिन्दी-साहित्य का पालन-पोषण उन साधु-सन्तों ने किया जो विरक्त होते हुए भी मानवता की रक्षा में यत्नवान थे।

उस का यौवन क्षणिक काल तक ही कर्मण्य उदार भावनाओं के बीच विकसित हुआ। और फिर उद्दाम विलास की कारात्रों में मोहनियों के केश पाशों में वह बंध गया ; नींद से जागने पर उस ने देखा देश पराया हो चुका है, सारी शक्तियों को समेट कर वह एक बार राष्ट्र को जागरित करने में लग गया, पर 'चिड़िया चुग गई खेत, के पश्चात् रखवाली के उत्साह भरे आग बरसाने वाले कवित्त और सवैय्ये भी एक दुख की याद दिलाने के अलावा किस काम के रह जाते हैं !

इस के बाद का अधिकांश समय पश्चाताप, क्षोभ, असन्तोष और ग्लानि प्रकट करने तथा बिगड़ी को सुधारने तथा उद्‌बोधन के गीत गाने में लग जाता है। भारतीय जीवन की आधार शिलाओं-वर्णाश्रम व्यवस्था, ग्राम पंचायत, सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा, सांस्कृतिक समन्वयवादी एक सूत्रता-संक्षेप में मानव-समाज के बीच व्यक्ति के जीवन को भौतिक और आध्यात्मिक जीवन की उन्नति की ओर लगाने वाली व्यवस्थाओं की जड़ों में वह विष फैल गया जिस ने जीवन के विकास के लिए अमृत का कार्य किया। भारत, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परतंत्रता की उन बेड़ियों में जकड़ गया जिन में अप्रत्यक्ष रूप से जीवन के आनंद को पी कर उसे नैराश्य और विषाद के अंधकार से भर कर निस्तेज, परमुखापेक्षी और शक्ति हीन बना देने की भीमकाय आसुरी शक्ति है किन्तु इसी आसुरी शक्ति से संघर्ष में मोर्चा लेने के लिए विष से मूर्छित प्राण अन्दर ही अन्दर जगने लगे।

ऐसी परिस्थितियों के बीच, किसी को प्रकृति के सौन्दर्य को देखने का अवकाश हो ही कब सकता था। अपने ही जीवन को बचाने अथवा नष्ट कर देने में मनुष्य लगा रहा। जीवन की रक्षा के मार्ग में कठिनाइयाँ बढ़ती ही गईं। भौतिक और रसायन विज्ञान ने जिस यांत्रिक सभ्यता को जन्म दिया उस के विकास के साथ प्रकृति के चेतन तत्व का उपहास घने रूप से संबद्ध है। प्रकृति का स्थान, 'मशीनें लेना चाहती हैं' "फूलों के देश में और पंछियों के स्वरों के बीच निर्जीव धातु की चीजें भी स्थान पाना चाहती हैं।" रेल, तार, मोटर, टेलीफोन, हवाई जहाज तथा "लाखों मनुष्यों का काम अकेले करती हुई, और मनुष्यों के हाथों को विश्राम देती हुई" मशीनों आदि ने मनुष्यों के जीवन को और उस के जीवन की कविता को निश्चय ही बदल दिया है। यद्यपि अब भी कवि लोग फूलों की शोभा, पपीहे की व्याकुल पुकार, प्रेमिक, प्रेमिकाओं की प्रेम लीलाओं का चित्रण करते हैं, युद्ध और प्रेम के गीत गाते हैं वन उपवन, नदी, झरनों, उषा, संध्या आदि को अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं, फिर भी उन की मानसिक स्थिति में परिवर्तन अवश्य हो गया है। इस परिवर्तन के स्वर हिन्दी कविता में भी सुनाई देने लगे हैं।

विज्ञान ने मनुष्य के लिए ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में द्वार खोल कर काव्य के लिए भी नए-नए विषय अवश्य दिए हैं, किन्तु इन्द्रिय ग्राह्य तथ्यों तक ही अपने को सीमित रख कर, अपनी चकाचौंध से मनुष्य की उस दृष्टि को धूमिल कर, दिया है जो कि वस्तुओं के आवरण को भेद कर, उन के अन्तरतम में प्रवेश कर "अन्धकार का आलोक से, असत का सत से, जड़ का चेतन से और वाह्य जगत का अन्तरजगत से सम्बंध" स्थापित करा कर विभिन्नता में भी एकता ढूंढ लेती है, और जीवन की विविधताओं का समन्वय महाकाव्यों में करा देती है। इस लिए आज का युग महाकाव्यों का युग नहीं है और न रस सिद्धान्त ही काव्य की कसौटी रह गया है, मुक्तक और गीत शैली

आज के युग की काव्य-जगतीय विशेषता है। दूर तक भावनाओं का अबाध प्रवाह इन दिनों शैलियों में नहीं बाँधा जा सकता। उस के लिए प्रबंध काव्य शैली ही अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है।

'महाकाव्यों का युग नहीं' है कहने का अभिप्राय है कि महाकाव्य की क्षमता लोगों में नहीं है। महाकाव्य के नाम से जितने भी ग्रंथ इस युग में रचे गये हैं उन में महाकाव्यों की महानता तनिक भी नहीं है। कहने को तो 'प्रियप्रवास,' 'साकेत', 'कामायनी', 'साकेत-संत,' 'हल्दी घाटी,' 'जौहर', 'विक्रमादित्य', 'कृष्णायन' आदि एक से एक परिश्रम प्रस्तुत रचनाएँ आधुनिक युग में रची गई हैं। किन्तु एक भी रचना इन में कामायनी को छोड़ कर ऐसी नहीं जिस का विषय महान कहा जा सके। और कामायनी का विषय महान है तो उस महान् विषय को प्रबंध शैली के ढाल पर बहाने-निभाने की सामर्थ्य प्रसाद में भी नहीं दिखलाई दी। हिन्दी को अभी उस महाकाव्यकार की प्रतीक्षा करनी है जो कि मानव के आज तक के विकास की संपूर्ण चेतनाओं का समावेश किसी तदनुरूप लोक रंजनकारी महान कथा वस्तु में कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर सके जिस की रचना को सभी देशों के लोग एक भाव से अपना सकें। बर्बस प्रचार से ही कोई रचना महान नहीं हो जाती न पृष्टों की, बड़ी सख्या से ही किसी ग्रंथ का गौरव बढ़ता है। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, मेरे विचार से कालिदास के पश्चात् केवल रवीन्द्रनाथ ही भारत में ऐसे साहित्यकार कहे जा सकते हैं जिन का साहित्य वास्तविक अर्थ में विश्व-साहित्य के अंतर्गत आता है। वैसे तो सूर और तुलसी को भी विश्व कवियों की प्रतिष्ठा हम देते ही हैं और कहते ही हैं कि 'सूर विश्व के गिने चुने महान् कवियों में महान हैं,' 'वाल्मीकि की सरलता और व्यास की विराटता का सम्मिलन यदि हो सके तो हमे तुलसी की शक्तियों का बोध हो सकता है,' किन्तु यदि निष्पक्ष रीति से देखते हैं तो कहते ही बनता है, सूर और तुलसी के साहित्य में ही नहीं संपूर्ण हिन्दी-साहित्य में ऐसी बातें बहुत कम है जो सब के काम की हों,

सब को समान रीति से आकर्षित कर सकें। राधा को सारा संसार नहीं पूजता, कृष्ण की मुरली हिन्दुओं के हृदय को ही विशेष रूप से आकर्षित कर सकती है वह भी सभी को नहीं, सूर के ठेकेदारों को तो वह कदापि भी आकर्षित नहीं कर पाई। तुलसी और शालिग्राम वैष्णवों भर की प्रिय वस्तुएँ हैं, सभी वैष्णवों को इन से भी वास्ता नहीं रहा। राम और सीता के आदर्श अधिक से अधिक व्यापक हैं, किन्तु वे भी सभी को आकर्षित नही कर सकते। साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय, तथा वर्गीय साहित्य अपनी सीमाओं के अंदर ही पूजा जाता है। वह सार्वभौम आकर्षण, मानवमात्र को अबाध रूप से जो अपनी ओर खींच ले हिन्दी के साहित्य में बहुत ही कम है, साधु संतों की जो देन मानवता को है उस में रूक्षता तथा उपदेश वृत्ति अधिक है, भक्तों का जो साहित्य है उस में धार्मिक संप्रदायों के बोझ के नीचे मानव-आत्मा सिसक रही है। शास्त्रीय पद्धति के कवियों ने जिस साहित्य को दिया है उस में ऊब उत्पन्न कर देने वाली भनभनाहट है, ऐसी रसिकता अधिक है जो काम शास्त्रियों के काम की चीज विशेष हो सकती है। उस से न तो शान्ति ही प्राप्त होती है न दृष्टि ही विराट हो पाती है। परिवर्तन तथा आधुनिक काव्य के कवियों में विविधता तो है किन्तु घनत्व एक देशीय ही अधिक मात्रा में है। ये सब बाते हैं जिस से हिन्दी के संपूर्ण साहित्य का अधिकांश भाग विश्व जननि नहीं कहा जा सकता। साहित्य के झूठे ठेकेदारों के नारों की बात अलग है। अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि व्यक्तित्व की छाप या व्यक्तिगत स्थानीय विशेषताएँ साहित्य में होनी ही नहीं चाहिए, ऐसा साहित्य तो शायद न संभव ही है और न आकर्षक व स्पष्ट ही हो सकता है। इन विशेषताओं के रहते हुए भी व्यापक से व्यापक जीवन की धाराओं का सुचारु समन्वय भी साथ ही साथ साहित्य में जब हो तब ही, मानव मात्र की श्रद्धा की अपनी चीज वह हो सकता है। हिन्दी के साहित्य में कमी है तो इसी बात की ।

हिन्दी साहित्य में स्वयंभू हैं, सरहपाद है, पुष्पदन्त है, चन्दवरदाय

हैं, सूर-मतिराम-देव आदि भी हैं, और पश्चिम के देवता भी स्थान अब पाने लगे हैं। श्यैले; कीटस्, ब्वायरन आदि आने लगे हैं। फ्रान्स, इटली, अमरीका, रूस और जापान का अनुकरण होने लगा है किन्तु कबीर, तुलसी, भूषण जयशंकर प्रसाद आदि के होते हुए भी वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास, भवभूति तथा रवीन्द्रनाथ की भी हमें आवश्यकता है। अधिक से अधिक रवीन्द्रनाथ का अनुकरण करने पर भी हिन्दी एक भी रवीन्द्रनाथ को उत्पन्न नहीं कर सकी। 'मानस' अजातशत्रु' 'चन्द्र गुप्त' 'स्कंद गुप्त', 'गोविन्दगुप्त', 'विक्रमादित्य, साकेत संत, कृष्णायन, हल्दीघाटी तथा जौहर आदि के रहते हुए भी वैदिक युग तथा गौतम बुद्ध के समय से लेकर ईसा की पाँचवीं शतव्दी तक की जीवन धाराओं को बीसवीं शातव्दी के जीवन में ला मिला देने के जो प्रयत्न प्रसाद, महादेवी, चन्द्रकुँवर आदि ने किया है वही हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। इतिहास के विद्वान इस कार्य को कर रहे हैं, बहुत सुन्दर ढंग कर रहे हैं लेकिन उन के कार्य से हिन्दी काव्य-साहित्य प्राणवान होता नहीं दीखता, गद्य साहित्य के अवश्य ही भाग्योदय समझिये। गाँधी और कबीर की विचार धाराओं का सम्मिलन हमारे साहित्य की एक महत्व पूर्ण घटना है। वैदिक साहित्य और विक्रम के युग की बहुमुखी जीवन धाराओं के दर्शन करने की भावना उत्पन्न करा देने वाली महान् विभूतियों की वाणियों का वास्तविक मूल्यांकन करने में अभी हमें समय लगेगा। इतिहास के इन महत्व पूर्ण अवसरों को अभी हम अपने जीवन के अभिन्न अंग नहीं बना सके हैं। उन के ऊपरी आवरण की यशो गाथा से ही हम अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ लेते हैं। गांधी और गौतम की विश्व व्यापी करुणा और आध्यात्मिक शान्ति की धाराओं की एकता को पहिचान ने का आयोजन हमें अपने साहित्य में करना है। ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रों में अन्य देशों ने जो कुछ कर लिया है उसे आत्म सात कर अपने ढंग से प्रस्तुत किए बिना भी हमारा काम चल नहीं सकता। सदियों से प्रकृति और मानव के बीच जो विलगाव

हो गया है उसे दूर कर देने वाले जीवन-साहित्य की सृष्टि करनी है। कोलाहल पूर्ण नागरिक जीवन में ही खो जाने वाले कवियों से हमें ऐसे साहित्य को पाने की बहुत कम आशा रखनी चाहिए।

नगरों में कृत्रिम जीवन में पलने और अपने ही संकीर्ण स्वार्थों में लीन रहने से, प्रकृति के सौन्दर्य में एकाकार होने की सहज शक्ति को मनुष्य बहुत कुछ खो बैठता है। प्रकृति से संबंध विच्छेद कर उस से विमुख हो कर, अथवा उसे शून्य में फेंक कर निष्प्रभ बना देने से जो जीवन चलता है वह सरलता से कृत्रिमता की ओर बढ़ने के कारण जीवन की शत शत आनंददायिनी धाराओं से वंचित हो जाता है और धीरे धीरे निस्तेज हो कर अपनी नैसर्गिक सौन्दर्य-प्रियता को भी खो बैठता है। प्रकृति उस के लिए भौतिक तत्वों का स्थूल समीकरण भर रह जाती है। सूर्य्य उसके लिये धातुओं का जलता हुआ गोला भर रह जाता है, चन्द्रमा एक गृह पिंड मात्र। इसी तरह प्रकृति का आकर्षण केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर देने वाली उसकी उपयोगिता तक ही सीमित हो जाता है। अपने घरों के आस, पास, लता फूलों को लगाने की वृत्ति एक संस्कार भर की बात रह जाती है। जीवन की विभीषिकाओं में पड़ कर मानव निर्मित सौंदर्य में भी सुन्दरता देख सकने की क्षमता का स्थान, युग की आँधियाँ ले लेती हैं 'ताज महल' कंकाल की स्थापना' में मृत्यु का अपार्थिव पूजन भर करार दे दिया जाता है। ऊंटों के व्याह में गधे गीत गाते फिरते हैं—एक कहता है 'कितना सुन्दर रूप है! दूसरा दाद देता है, 'कितना मनोहर स्वर है!' कालिदास और रवीन्द्रनाथ के नाम ले लेने से ही मेघदूत और शान्ति निकेतन नहीं बन जाते, न अखबार में छाप देने से ही किसी में अरविन्द और आइन्स्टीन का वास हो जाता है। पत्रों के कई अंकों में 'काव्य की सजीव भाषा' के छप जाने से ही कृष्णायन, की भाषा सजीव नहीं हो जावेगी और न उस के रचयिता ही तुलसी बन जावेंगे। कोष से ढूँढ-ढूँढ कर शब्दों को लाने से ही भाषा यदि सजीव

हो जाती है तो कोष ही को सब से सजीव क्यों न मान लिया जावे। भाषा की सजीवता के लिए असंख्य कोष भी काम न देंगे, जाना होगा जन जीवन के सोतों तक,' और वे सोत नगरों में नहीं, गाँवों में हैं। यदि हमारे कान सजग हैं तो शहरों के साथ ही साथ गाँव भी मिल जावेंगे। यदि हमारी आँखें सजग हैं तो मानव सौन्दर्य के साथ चारों ओर व्याप्त विराट प्रकृति का सौन्दर्य भी नज़र आ जावेगा। लेकिन आज के कवियों को रोटी पानी की ही चिन्ता से फुर्सत नहीं होती वे प्रकृति को देखें या पेट की ज्वाला को? कालिदास और भवभूति की-सी, विद्यापति और जायसी की-सी प्रकृति, आज के कवियों में नहीं रह गई है, और न संभवतः वह रह ही सकती है। पर क्या नागरिकता या पुनर्धनता ही को इस का कारण मान लें? कालिदास और भवभूति, जायसी और रवीन्द्रनाथ भी तो नागरिक थे, फिर भी मानव और प्रकृति का स्निग्ध कलात्मक समन्वय उन में हुआ है।

आधुनिक युग के हिन्दी काव्य-साहित्य में 'प्रकृति के कवि कहे जाने वाले कवि सुमित्रानदन पंत ने प्रकृति से अंध प्रेम जब किया तब वे जन-कोलाहल-पूर्ण जीवन में दूर से थे, जब उन की बुद्धि नये मानव सिद्धान्तों की आंधियों में आ पड़ी तब उन के प्रकृति प्रेमी हृदय ने 'संध्या' में 'एक तारा' को देखना छोड़ दिया; 'तारा' को देख कर जड़ हो जाना भी अपने आप छूट गया। शायद पंत जी ने इसे जड़ से चेतन होना समझा हो तभी तो ग्रंथि, गुंजन, पल्लव का अन्त 'युगान्त' में हुआ। और नवीन वादों में पड़ कर वे अपनी प्रकृति से दूर जा पड़े। सच बात तो यह है कि पन्त, कवि ही नहीं हैं उन की स्वर्ण-किरण स्वर्ण-धूलि, उत्तरा में भी हृदय का स्पंदन कहीं नहीं सुनाई देता। जिस में हृदय का स्पंदन ही नहीं, वह कविता क्या लिखेगा, सा से रे और रे से ग पर क्या जावेगा। भाषा को कोमल बनाना अथवा भाषा के शब्दों के अर्थों की बारीकियों को समझ कर उन्हें चुन-चुन कर सजा देना और चाहे जो कुछ हो कविता कदापि नहीं है। ऐसे परि-

श्रम चाहे कालिदास और रवीन्द्रनाथ की ही रचनाओं में क्यों न हों परिश्रम ही कहे जावेंगे। आगे चले बहुरि रघुराई, रिष्यमूक पर्वत नियराई। अथवा 'बाँसों के झुटपुट', में 'टिट् टिट् टिट' तथा चमारिन के छमाछम नाच, और 'कलंदर आया' को सुन्दर कविता जो कहते हों उन की बात दूसरी है। ऐसे लोग चाहे हिन्दी के स्व निर्वाचित ठेकेदार ही क्यों न हों जुगनू उलूक संप्रदाय के ही अंतर्गत आते हैं। पर्वतीय प्रकृति के जो चित्र सुमित्रानंदन पंत ने उतारे हैं वे लाखों में अलग नहीं पहिचाने जा सकते, उन का अपना निजी व्यक्तित्व नहीं, न उन में सार्वभौम आकर्षण स्पंदन ही है। सार्वभौम आकर्षण स्पंदन, हिन्दी कविता की प्रकृत कविता में सुनाई देगा किन्तु उस के लिए या तो राजस्थान के कवियों की ओर जाना होगा या उत्तराखंड के हिमवन्त पुत्रों की ओर। स्वर्ग सुन्दर हिमालय और बेजोड़ वीरा तो उस सौन्दर्य की, उस स्पंदन की लहर मात्र हैं। राजस्थान तथा हिमवन्त के प्रकृत कवियों ने स्थानीय विशेषताओं के बीच सार्वभौम भावनाओं की कलामय स्थापना की है। माँ, बहिन और सरल अकृत्रिम प्रेम और शोभन सौन्दर्य तथा विराट हिमालय का हिन्दी साहित्य में अभाव था, चाँदनी होने पर भी नहीं थी, कुररी का क्रन्दन एक आध बार ही असीम आकाश को भरने में जायसी में समर्थ हुआ था, राजस्थान तथा हिमवन्त के कवियों ने इन सब की सम्पन्न प्रसन्न सृष्टि कर हिन्दी-काव्य-साहित्य को अपूर्व देन दी है। राजस्थान तथा उत्तरा खंड (हिमवन्त) के कवियों की यह विशेषता रही है कि उन की रचनाओं को पढ़ कर पाठक दृढ़ता के साथ कह सकता है कि इन का रचयिता राजस्थान का कवि है, इन का सृजन हिमवन्त पुत्र के हृदय से हुआ है। भाषा की स्थानीय विशेषताओं और उन के प्रभाव के लक्षणों को देख कर नहीं बल्कि स्थानीय जीवन और प्राकृतिक दृश्यों के तन्मय मर्मस्पर्शी चित्रणों के कारण ही उन की रचनाओं में यह विशेषता आ सकी है। स्थानीय विशेषताएँ, काव्य को सीमित कर देने वाली सदैव ही हों यह

आवश्यक नहीं है। कवि जहाँ, स्थानीय विशेषताओं और अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखते हुए भी, विराट हृदय के स्पंदन को पहिचान सकता है, अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में उस पहिचान को ला दे सकता है विश्व जनीन अमर साहित्य की सृष्टि वहीं होती है।

हिन्दी-साहित्य में प्रकृति और मानव की धाराओं को एक कर देने वाले काव्य को हम यदि पाना चाहते हैं तो जन जीवन की शत-सहस्र आनन्द-प्रमोद गीत धाराओं को आन्तरिक आदर से अपनाना होगा। बाहर से आदर और अंदर से घृणा के रहने से, जन-जीवन की कामधेनु से प्रसवित होने वाली पयस्विनी भी विष धार ही प्रतीत होगी। नागरिक से यांत्रिक तो हम तेजी से बनते चले जा रहे हैं पर नैसर्गिक रूप से जीवित रहने की चाह हमें नहीं। प्रकृति और मानव के सौन्दर्य का सम्मिलन ऐसे ही समय हिन्दी काव्य-साहित्य में हुआ है। हिमालय की उज्ज्वल गंगा, भागीरथी, अलक नंदा, मंदाकिनी, पयस्विनी अपनी वेगवती ओजस्वी धाराओं से अंध तिमिर को चीरती हुई जीवन साहित्य में सरसता ला रही है। तमिस्रा के गर्भ से ज्योति 'उदय के द्वारों पर' आ गई है, कुछ ही समय में रवि-रथ में 'प्रभात' के भी दर्शन हो जावेंगे।

—:*:—

११ हृदय-मेघ

अतीत से उत्पन्न हो कर प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान में आता है, और वर्तमान में रह कर भविष्य की ओर बढ़ता है। अतीत के फल में भविष्य का बीज निहित रहता है। यह बीज, युग धर्म और स्वभावगत विशेषताओं के अनुकूल जीवन के क्षेत्र में विकसित हो कर भविष्य में फूलता फलता है। मनुष्य की यह स्वभावगत विशेषता उस की रचना से विद्यमान रहती है। कलाकार और कला पारखी दोनों ही अपनी रुचि और आवश्कता के अनुकूल विषय का चुनाव करते हैं। कोई भी कलाकार हर-किसी वस्तु को अपनी कला का विषय नहीं बनाता और किसी भी कला कृति को हर कोई व्यक्ति पसन्द नहीं करता। मनोदशाएँ सब समय एक सी नहीं रहतीं। एक समय अच्छी लगने वाली वस्तु दूसरे समय बुरी लग सकती है और जो आज बुरी समझी जाती है, कल वह भली लग सकती है। एक समय भी सब वस्तुओं के लिए सब स्थानों में सब लोगों की एक सी भावना नहीं रहती, रुचि की भिन्नता लोगों का स्वभाव है।

स्वभाव की इस परिवर्तन शीलता का कारण जीवन की गति शीलता को माना जा सकता है। देश, काल, शरीर आदि की सीमाएँ उसी के अन्तर्गत आ जाती हैं। किन्तु गतिशीलता का कारण जीवन स्वयं है। जीवन की शाश्वत धारा है इसी से विश्व में परिवर्तन होते रहते हैं, जिन्हे कभी सक्रिय क्रांति का रूप भी मिल जाता है। विज्ञान और कलाओं में भी इस एक रस शक्ति आश्रित क्रियाशीलता का विवेचन चलता रहता है। आइन्स्टीन आध्यात्मवाद की बातें कर सकते हैं और गाँधी, अर्थवाद की; ऋग्वेद का कवि श्री सूक्त की रचना कर सकता है और अध्यात्म प्रेमी कबीर क्रान्ति कारी बन सकते हैं। विज्ञान और तर्क के सहारे जीवन की बाह्य स्थूल सीमाओं का विश्लेषण कर दिया जाता

है और कला की सौंदर्यानुभूतियों से चेतना असीम तक पहुँच जाती है अनुभूति की तीव्रतम कलात्मक अभिव्यक्ति कविता में विशेष सूक्ष्मता से मिल पाती है। कविता जितनी अधिक तीव्रता से विराट हृदय को अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर पाती है, उतनी ही उच्च कोटि की वह समझी जाती है। इस प्रकार की उच्च कोटि की कविता विरल होती है। विराट से विराट जीवन को काव्य के कोमल तंतुओं में बाँधने के लिये सारे जीवन की चेतना को तन्मयता से अपनाने की जितनी आवश्यकता होती है, उतनी ही विवेकशील अभिव्यक्ति द्वारा उसे प्रेषणीय बनाने की भी।

उच्च कोटि की कविता के लिये अनुभूति, विवेक, प्रतिभा भाषा साधना, सौन्दर्य-ज्ञान, सामग्री-चयन पटुता, अभिव्यक्ति कौशल सभी में विराट तत्व वाँछनीय हैं। व्यापक प्रभाव के लिये कुशल कवि अपरिचित सामग्री को नहीं चुनता बल्कि अति परिचित भव्य महान कथा को चुनता है और हृदयजात विचारों के श्रेष्ठ मोती हीरे उस में जतन से पिरो कर सहृदयों के लिये काव्य-माला तैयार कर लेता है। उस की दृष्टि प्राचीन और नवीन क्षेत्रों से उपयोगी अंशों को चुनती है। उन्हे समय के अनुकूल रूप रंग देती है। प्रकृति के विराट हृदय का सवल उसे प्रदान करती है। और इस प्रकार उसकी कृति अन्तहीन सौन्दर्य की शाश्वत शिवधारा बन जाती है। जो लोग समय के अनुकूल अपनी काव्य लक्ष्मी का परिधान नहीं बदलते उन की रचनायें अनुभूति पूर्ण होने पर भी विरक्ति उत्पन्न कर देने वाली सिद्ध होती हैं। और जो परिधान के विधान में ही उलझ कर अनुभूति की आवश्यकता को भूल जाते हैं उन की कृतियाँ कुछ काल के बाद ही अपनी चमक खो बैठती हैं। जो क्षणिक चमक उन में होती है उस का भी प्रभाव बुद्धि पर पड़ कर ही रह जाता है; हृदय को वे नहीं रसा पातीं। किन्तु विराट हृदय के जिन कवीश्वरों में किसी भी परिस्थिति में अपनी चेतना से, प्राणों में प्रवेश पाने की अदभुत शक्ति है, उसे साकार क्रान्तदर्शी

बना देने की असाधारण प्रतिभा है वे ही सच्चे कवि हैं, उन की कविता मनुष्य को सुन्दर पथ से सत्य शिव की ओर ले जाती है। जिस दिन सच्ची कविता की एक भी पंक्ति कोई मनुष्य लिख-पढ़ लेता है उस दिन वह जीवन्मुक्त हो जाता है। सुन्दर कविता का विषय ऐसा होता है कि मनुष्य का हृदय सहज ही उसे अपना लेता है। उसे अपनाने के लिए कठिनाइयों का सामना यदि करना पड़े तो उन से भी नहीं घबराता, उसे वहाँ अपने हृदय की मानसी के स्वर मिलते हैं तर्क को मौन कर देने वाली वह आनंद धारा त्रैलोक्य को पावन करने की शक्ति अपनी सुन्दर शीतलता में मौन रूप से छिपाए रहती है। तपस्वी कवि अपनी एक निष्ठ साधना से उस के दर्शन कर लेते हैं, हृदय की सत्यता, अभिव्यक्ति की मौलिकता और आत्म-त्याग, सत्य प्रेम, संयम और उदार स्वच्छंदता से युक्त विराट जीवन की विविध मार्मिकता विराट कवि की कविता की विशेषताएँ हुआ करती हैं। उस के हृदय देश में विराट सृष्टि के सत्य की ज्योति चमकती है। धूप और चाँदनी की भाँति उस की कविता होती है। पवन-पानी की भाँति उस के स्वर। उस के स्वर मानव कंठों में अपने आप बैठ जाते हैं। उन में प्रकृति और मानव की जीवन धारें बहती हैं, देश और काल की सीमाओं से इन हृदय मंदाकिनियों के प्रवाह में कोई अन्तर नहीं आता। अनुभूति और अभिव्यक्ति का एक रस सयोग इस प्रकार के काव्य की पारस कसौटी है जिस पर कसे जाने से विश्व-साहित्य में विश्व-कवि विरल ही रह जाते हैं। और इन विरलों की स्वर लहरी भी इस जगत की अनगिनित भाषाओं के होने के कारण मानव मात्र तक नहीं पहुँच पाती। सभी देशों की भाषाओं को समझने की सामर्थ्य विराट् से विराट् मानव में भी नहीं होती किन्तु सभी देशों के हृदयों को हर कोई हृदय से समझ सकता है मानव सभी देशों में मानव है, उस के सुख दुख हर्ष विषाद् सब जगह एक से हैं, विराट कवि के हृदय में इन्हीं सार्व भौम भावनाओं के मेघों की वृष्टि अपने काव्य में करते हैं।

१२ रवि-रथ

प्रभात

१ ओ प्रभात ! मेरे प्रभात ! आओ तुम धीरे-धीरे !
ओ पुलकित पवनों की चंचल स्वर्ण पुरी के हीरे !
निर्मल जल पर पड़ती लख कर तरुण किरण की छाया,
इस निरभ्र नभ-सा मुझ को भी हँसना ही है भाया !

२ उमड़ो बन प्रवाह सौरभ के शिशिर-शीर्ण जीवन में,
जागो आशा के वसन्त-से, यौवन के उपवन में !
दूर करो मानिनि निद्रा के आनन का अवगुंठन,
उसे प्रीति की रीति सिखाओ मुग्धा के जीवन-धन !

३ स्वर्ण अश्व को थाम द्वार पर, उतरो हे चिर सुन्दर !
निद्रित प्रेयसि के आगे तुम आओ मृदुल चरण धर !
सोने की वंशी हाथों में, मृदुल हँसी, अधरों पर,
भर बाँहों में वह लज्जित मुख चूमो हे मधुराधर !

४ तुम्हे देख कर उठी ससंभ्रम तरु-तरु तल पर छाया !
तुम्हें देख कुसुमों के मुख पर मंद हास फिर आया !
जोड़ तरल कर लगा भाल पर विन्दु अरुण चन्दन का ,
हुई तुम्हारे शुचि चरणों में प्रणत पावनी गंगा !

५ निश्चल पंखों को दी तुम ने शक्ति पुनः उड़ने की,
स्थिर चरणों को मिली प्रेरणा फिर उठ कर चलने की,
मुँदे नयन फिर खुले, हृदय में फिर आईं आशाएँ,
अधरों में गुनगुना उठी फिर, प्राणों की भाषाएँ !

६ गोशाला के द्वार खोल कर, गौओं को बाहर कर,
चले मधुर गाते तुम, हिम-जल से भीगे बन पथ पर,
भेजी तुम ने कृषक कुमारी, हँसिया ले खेतों को,

कटने को चुप चाप खड़ी है जहाँ फसल आनत हो!
७ ले जाते किशोर पृथ्वी को तुम यौवन के पथ पर,
कलिकाओं के फूल बनाते, फूलों के फल सुन्दर!
करते अस्त चन्द्र को, रवि को नील गगन में लाते,
रितुओं को करते परिवर्तित, विविध समीर बहाते!
८ चतुर चोर तुम नव यौवन के उपवन में नित आ कर,
मधुर फलों के परिणत रस से अपनी तृषा बुझा कर,
बैठ आयु के तरु के नीचे घन छाया में दिन भर,
संध्या समय चले जाते हो मुरली मधुर बजा कर!
९ नील गगन के स्वर्ण गीत तुम, मधुर मरण रजनी के,
तुम जागृति के स्वप्न मनोरम, पलकों पर अवनी के,
काल नदी के तट की सोने की सिकता से सुन्दर,
सूर्य लोक से अविरल झरते, शान्त ज्योति के निर्झर!
१० तुम समाधि मेरे शैशव के आशामय स्वप्नों की,
तुम मेरे खोये यौवन की, बालारुण कोमल श्री,
ये नीरव नयनों के चुम्बन, ये कोमल आलिंगन,
ये चुप चुप विह्वल कानों में पुलक स्वरों के वर्षण!
११ यह कल्लोल हास किरणों का, यह दूर्वा का रोदन!
यह एकान्त प्रेम का अनुभव, यह नीरव आकर्षण!
अन्तहीन तृष्णा यह मन की, यह अतृप्ति यौवन की,
फूलों के सागर में फिरती यह तरंग जीवन की!
१२ पलकों पर मोती की बूँदें, अंचल में मृदु किरणें,
वाणी में विहगों का कलरव, अलकों में नव पवनें,
ये उपहार सदा उड़ जाते जो निष्फल सपनों से,
क्या न सदा के लिए बनेंगे धन उर के नयनों के?
१३ चलना भूल खोल अश्वों को, बैठ मृदुल दूर्वा पर,
दूर किसी नीरव निर्जन में बाँहों में बाँहें भर,

पुष्पों के बन में, सरिता की कोमल कल कल सुनते,
हे सुन्दर ! हम सदा सुखी बन; क्या न रुके रह सकते ?

१४ चलते-चलते बीता शैशव, बीत रहा है यौवन,
सुख-दुख हँसते-रोते, आते जाते बीता जीवन !
आने वाले सुख की आशा से हँस पड़ता यौवन,
तुम्हें देख कर कभी प्रेम से भर आते हैं लोचन !

१५ हे परिचित ! हे सदा अपरिचित ! हे नीरव हे सुंदर !
हे प्राणों के परम मित्र ! हे शत्रु उदास--मनोहर !
नील गगन के द्वार खोल कर स्वर्ण मुकुट धारण कर,
मेरी आत्मा के द्वारों पर आते तुम वर बन कर !

१६ कर एकान्त देश में परिणय अपनी तरुण वधू को-
भर बाँहों में, उस का मृदु मृदु रोदन सुन पुलकित हो,
उसे बिठा कर अपने रथ पर, मधुर स्वरों में गाते,
सुख में या दुख में प्रति दिन तुम नाथ कहाँ ले जाते ?

१७ प्रति पल विदा सुखों से लेते फिर न कभी खिलने को,
कहाँ जा रहे हम अपनों से फिर न कभी मिलने को ?
यह कैसी यात्रा है जिस में आज पदों पर चुभ कर
कल वे ही हँसियाँ चू पड़ती हैं आँखों में अकुला कर ?

१८ हाय कहाँ वे सुख जो अपने थे ! रो कर भी उन की,
सपनों में भी कभी न मिलती क्षीण झलक भी मन की !
बार-बार छलछला दृगों में उठती अब वह आशा,
जब निशि-दिन श्रुतियाँ सुनती थीं कोमल सुख की भाषा !

१९ जाने बीत गया कब बचपन, खिल आया कब यौवन !
जाने कब मेरी मुकुलों ने खोले अपने लोचन !
आँखें मूँद, तुम्हारी बाँहों में अपना सिर धर कर,
मैं चुप चाप चला जाता हूँ, साथ तुम्हारे सुन्दर !

२० भाग रही है रात सामने अंधकार को लेकर,

पीछे से घिरता आता तम दीप अनंत जला कर !
आस पास करती रहती हैं रितुएँ अस्थिर नर्तन,
पृथ्वी के आनन पर होते क्षण-क्षण नव परिवर्तन !

२१ और जरा अब आ कर मेरे नयन मलिन कर देगी,
जब इस बुझते हृदय-दीप को निविड़ निशा घेरेगी,
तब मेरे सिरहाने अपनी कोमल प्रभा बिछा कर,
आश्वासन क्या दे न सकोगे तुम रजनी में आ कर ?

२२ गहन मृत्यु की किसी अँधेरी वातायन तक उठ कर,
विहगों के मैं गीत सुनूँगा, आँखों में आँसू भर !
देखूँगा सुदूर जीवन के पथ पर किरणें ले कर,
उतर रहे हो नील गगन से तुम हँस हास मनोहर !

२३ मैं रोऊँगा, फूलों से तुम बन बन जब भर दोगे,
मैं रोऊंगा, तुम दूर्वा के आँसू जब पोंछोगे,
मैं रोऊँगा, छाया के तल पर जब लेट अकेले,
तुम कोमल-कोमल भ्रमरों का गुंजन मधुर सुनोगे !

२४ मुझे दूर अपनी किरणों से प्रियतम ! अधिक न रखना,
मेरी गहन मृत्यु में सुन्दर सपना बन कर जगना,
मुझे जगाना पुनः सृष्टि में जिस को छाँह तुम्हारी,
देती है नित तरल स्वर्ग की कान्ति नयन हर-प्यारी !

२५ मुझे जगाना पुष्प बना कर इस सुख पूर्ण भुवन में;
मुझे उड़ाना भ्रमर बना कर फिर इस मृदु मंद पवन में,
खग-मृग-तरु पल्लव जो कुछ भी बन कर फिर जागूँ मैं,
मुझे सदा रखना अपनी ही कल किरणों के बन में !

२६ मैं जागूँगा पुनः पुष्प बन इस सुख पूर्ण भुवन में,
मैं जागूँगा तुम्हें देखने शोभन नील गगन में--
अथवा प्रेमी मधुकर बन कर उड़ निर्मल मारुत में,
मैं जागूँगा सदा तुम्हारी कल किरणों के बन में !

२७ ओ मेरी आशा के वैभव ! सागर नीरव सुख के !

हे उज्ज्वल अवलम्बन मेरे जन्म-जन्म के दुख के!
इस पृथ्वी में कहीं न दीखे मुझ को सुख जब अपने,
तब भी देख सकूँ मैं, निशि-दिन सुखद तुम्हारे सपने!

२८ दूर्वा से ओस उड़ गई अब स्थिर हो गया समीरण,
चारों ओर व्यस्त कलरव कर बहता जाता जीवन!
मैं एकाकी, गए सुखों की सुधि से भर कर लोचन,
करता हूँ चुप चाप तुम्हारी शोभा का अभिनंदन!
उतरो ओ प्रभात! जीवन में उतरो धीरे-धीरे!

निवेदन

१ क्षमा करो माँ, इन कवि पूजित पद-पद्मों पर,
अर्पित करने लाया हूँ न स्वरों को गुथ कर,
उड़ दिन भर शीतल छाया के गुप्त देश में,
मधुकर-सा निश्चिन्त अकेला करता गुंजन,
संचित करता ज्ञान दे सकें जितना चुम्बन,
भूल मृत्यु को, समझ अमर जीवन नश्वर
गिरि कुसुमों में सुख से बेसुध हो कर पल भर
मरण-माधुरी-रस से परिचित कर यौवन को
उड़ता किसी कुसुम में पाने मधुर चिर मरण!

२ आज दीन पत-झड़-सा धीरे-धीरे आता,
मैं मर्मर कर एक अति करुण पत्र गिराता,
राहु-ग्रसित शशि के श्री-हीन मलीन वेष में!
बन सशरीर क्षीण रोदन उड़ता पृथ्वी पर,
गोधूली–सा चिर अस्पष्ट व्यथा से कातर,
छू मेरी पीड़ा पीली पड़ती लतिकाएँ
वृन्तों में हैं काँप रही सुकुमार व्यथाएँ,
विहग कर रहे मेरा अभिनन्दन रो-रो कर,
संध्या के पीले कपोल पर आँसू से भर!

३ बसे स्वप्न मेरी आँखों में गहन मरण के,
मौन कर दिये हाय ! जिन्हों ने स्वर जीवन के,
मरु कर देता स्तब्ध जिस तरह कोमल कल-कल !
हो निराश अपनी आशा से रो-रो, क्षण-क्षण,
अन्धकार की ओर जा रहा मेरा जीवन,
अस्त हो रहा सूर्य, हृदय में मेघ घिर रहे,
मुझे विदा दे जीव, गृहों की ओर जा रहे,
जग के सुन्दर दृश्य और सुख के स्वर कोमल,
छिपते मेरी आँखों से, होते हैं निश्चल !

४ मुझे दीखते सुन्दर मुख पर अब हा ! उन से-
चली गई चुप चाप माधुरी, अब वह जिस के
दर्शन से मेरा उर था कंपित हो उठता !
उसी भाँति हैं हिम के शैल सुधा से धोए,
संध्या के सुवर्ण मेघों के नीचे सोए,
उसी भाँति दुर्गम पथ पर अपनी छवि ले कर,
चली जा रही मन्दाकिनी, विपिन के उर पर,
उसी भाँति आता बसन्त है; मेरे उर में,
किन्तु हाय ! कोई सोया है नीरव निःस्वर !

५ कहाँ आज वे बन किसलय, मर्मर से गुंजित ;
कहाँ आज वह छाया, कुसुम सुरा से सुरभित !
कहाँ आज वह प्रिय मुख हँसता द्रुम-प्रान्तर में?
कहाँ आज वह मिलन सुखों की सुन्दर आशा ?
कहाँ आज वह, अंगों की आतुर अभिलाषा ?
वह चंचलता, वह माधुरी, मधुर वे पीड़न ?
चकित मिलन नयनों के, चकित मुखों के चुम्बन?
कहाँ गये वे प्रात, कहाँ वे किरणें सुन्दर ?
कितनी दूर आ गया मैं इस दुख के पथ पर !

६ गरज रहा है सम्मुख अन्धकार का सागर,
दिशा-दिशा से झर प्रकाश के उज्वल निर्झर !
होते हैं विलीन जिस के केशों के भीतर !
प्रलय धूम्र-सा दिशि-दिशि को कर आच्छादित,
प्रलय मेघ-सा दिशा-दिशा को कंपित नादित,
प्रलय पवन-सा घूम घूम उठता अम्बर में,
तैर रहे आधार-हीन गिरि लहर-लहर में.
कड़क रही विद्युत चंचल यम की पुतली-सी,
करती उस कठोरता को सहसा उद्भाषित !

७ खड़ा अकेला मैं लहरों के सूने तट पर,
मेरे कानों में बहता भीषण गर्जन कर,
एक प्रलय का तीखा गान प्रबल हो अहरह !
अन्धकार के उर से प्रति पल मेरे उर को
खींच रही है कौन निदारुण शक्ति ? विकल हो,
फैला हाँथ माँगता हूँ देवता-दानवों—
किन्नरों-मुनियों से आश्रय मैं, पर हा मुझ को—
बचा न कोई सकता, बलि-पशु-सा चिल्ला कर
चला जा रहा हूँ मैं अन्धकार के भीतर !

८ विदा-विदा हे हरित तृणों की सुन्दर धरणी !
विदा-विदा हे मानव पशु की पूजित जननी !
विदा हृदय के सुख ! चिर विदा प्राण प्रिय यौवन !
हे आकाश ! विदा दो मुझ को आज रुदन कर,
जाता हूँ मैं उस प्रदेश को जहाँ हृदय पर,
कभी न पड़ती, सूर्य-चन्द्र की किरणें सुन्दर !
और हाय ! इस पृथ्वी के फूलों को चुन कर,
अब न तुम्हें पूजूँगा मैं इस नभ के नीचे,
तुम भी मुझे विदा दो हे प्रभु ! हे परमेश्वर !!

१३ स्निग्ध-शान्ति

नीरव सुन्दर प्रकृति की स्निग्ध शान्ति, चन्द्र कुँवर की काव्य-मंदाकिनी की कुंजों में कोमल ज्योत्स्ना की भाँति छिटकी रहती है। 'आओ संध्या' और 'ओ प्रभात' में इस ज्योत्स्ना की रसधार, तन्मय चेतना बन गई है।

'संध्या' में आदि से ले कर अन्त तक शब्दों का चयन गहन तथा विन्यास कोमल स्निग्ध शान्ति से अनुप्राणित है। प्रत्येक शब्द एक शीतल ज्योति का आलोक है। उस में संगीत की कोमल ध्वनियाँ बाँसुरी की सुरीली तानों की तरह थिरकती-सी पुलकित पवनों के प्राणों में लीन हो जाती हैं। गति शील सौन्दर्य के शोभन चित्र अपनी शान्ति, सहृदय कल्पना को दे जाते हैं। घर लौटते ग्वाले की मुरली की सुरीली तान के समान ही, इस गीत के मधुर स्वर हैं। संध्या की सुकुमार प्रभाओं में पश्चिम में उड़ती सोने की धूल के बीच, विपिनों के छोरों (किनारों) को ये स्वर, शोभा में डुबो देते हैं। संध्या की धूल सम्मुख सोने की उड़ती धूल की सुन्दरता की हँसी उड़ा जाती है। विपनों को अम्बर (वस्त्र) रूप में देखने वाली कल्पना शोभा के रंगों में उन विपिनों के छोरों को डुबाने वाली संध्या के दर्शन करती है । सरोवरों में कुमुदों को विकसित करने वाली संध्या अपने सर में चन्द्र तारों के दीपों की शोभा को लिए हुए आती है तमी के आगे आगे उसे मार्ग दिखाती चलती है दुखी हृदय को शान्ति देने वाली तमी पीछे-पीछे आती है तारों से सजी तमी आ रही है, संध्या उसे अपने पीछे ला रही है। प्रिय को लाने वाली इस संध्या का हृदय से स्वागत किया जा रहा है। मिलन प्रतीक्षा है, मिलन कराने वाली रजनी से कवि ने अन्यत्र कहा है—

मलिन करो मत अपना शशि मुख हे प्रिय रजनी !

तारों को न गिराओ यों गोदी से अपनी ,
दूखी दृगों को जो देते रहते आश्वासन
क्षीण करो मत उन सुन्दर सपनों के जीवन
उन्हें न छोड़ो निस्सहाय जिन की काया में-
लगे हुए व्रण छिपे तुम्हारी ही छाया में,
होने दो आतप-तापित पुष्पों के मुख पर
शीत शिशिर की वर्षा निः-स्वन और मनोहर
जिन हृदयों को तुम अमूल्य वरदान-सी बनी
बनो शाप-सी तुम न उन्हीं को हे प्रिय रजनी !

रजनी जिस हृदय के लिए अमूल्य वरदान हो वह तो कामना करेगा ही कि शैलों के पीछे रवि डूब जावे, और वह संध्या आवे जो जीवन के कलरव को धीरे-धीरे शान्त कर सुन्दर सपनों की सूर्य हीन नभ की कन्या तमी को लाती है।

विहगों की टोलियाँ और गौओं के झुंड, संध्या के होने पर अपने विश्राम स्थलों की ओर थके माँदे, मंथर गति से लौट आते हैं। बाँसुरी बजाता झूमता ग्वाला, गायों के साथ ही घर लौटता है। रवि-रश्मियाँ थक कर अपने विश्राम लोक को चली जाती हैं ऐसे समय सुमित्रानंदन पंत, गंगा में रवि-विम्ब के ताम्र कमल को और नभ में बन राजि के नील शिखरों से उड़ते स्वर्ण अलि को देखते हैं, चन्द्रकुंवर संध्या के शोभन चित्रों से अधिक तन्मयता के साथ उस के शान्त भावों को देख रहे हैं। रवि-रश्मियों से वियुक्त होने पर, दिन में खिलने वाले पुष्पों की पलकें लग जाती हैं और रात को खिलने वाले सुमनों की पलकें खुलने लगती हैं। पुष्पों को मुकलित करने का भाव दोनों तरह से सार्थक है। अन्धकार के छा जाने पर कलरव नीरव हो जाता है नदियों भर का रोदन स्वर अंधकार में फिरता रह जाता है। शान्त वातावरण में उत्सुक हृदय एक दूसरे से मिलने की प्रतीक्षा में उत्कंठित रहते हैं। धीरे-धीरे आती संध्या ऐसे हृदयों को स्निग्ध शान्ति के मिलन

लोक में ले जाती है। दिन की कर्मण्यता का स्थान लेने रात की शान्ति जब आती है दिन और रात के बीच के परिवर्तन का काम, संध्या ही तब करती है। अतः संध्या का कोमल स्वागत होना ही चाहिए।

आकाश में तारे जगमगाते हैं, दीपक, भूमंडल पर, सरिताएँ दोनों की शोभा को प्रतिबिम्बित करती हैं ऐसी शोभा के सौंदर्य लोक में कवि की कल्पना अपने प्रिय के स्वागत की तैय्यारियों का आभास पाती है। उसे लगता है, संध्या, प्रिय को लेकर आ रही है। इसलिए आनंद की उमंग में वह स्वर्ण रश्मियों के आलोक से दीप्त गो पद से आकाश में उड़ती धूलि को सोने की धूल के से रूप में देखता है और फिर सोचने लगता है संध्या की शोभा, सोने की धूल की धूल (हँसी) उड़ाती आ रही है। संध्या जिस जिस वस्तु को छूती है वही सुवर्ण की बन जा रही है। विपिनों के छोर, शोभा में डुबाने वाली संध्या, रजनी के लिए स्थान छोड़ स्वयं स्तब्ध शान्ति में लीन हो जाती है। और कवि की लेखनी भी उसी के साथ विश्राम ले लेती है।

संध्या की इस कोमल भावना का प्रसार 'सूर्य हीन नभ की चिर तरुणी कन्या' से आरम्भ होने वाली दार्शनिक कविता तमी में हुआ है और 'ओ प्रभात' में वह अपनी स्निग्ध शान्ति को वर्षा के पश्चात् के खुले प्रसन्न आकाश में उतरते 'स्वर्ण पुरी के चंचल हीरे' के तन्मय अभिनंदन में विराट सौन्दर्य के भाव शृंगों पर पहुँचा देता है।

"पुलकित पवनों की चंचल स्वर्णपुरी के हीरे" प्रभात का स्वागत अपनी आत्मा के शोभन द्वारों पर करता है। स्वर्ण अश्व के रथ पर बैठ कर आते उस शोभन बर की वधू उस की आत्मा बन जाती है—

नील गगन के द्वार खोल कर, स्वर्ण मुकुट धारण कर,
मेरी आत्मा के द्वारों पर आते तुम वर बन कर!

प्रभात की बाँहों पर सिर धर कर कवि अपनी सारी जीवन-यात्रा पार कर जाता है। पीछे छूटते जाते सौन्दर्य को वैसी ही ममता से देखता चला जाता है जैसी ममता से कण्व का आश्रम छोड़ती हुई

शकुन्तला ने अपनी सखियों को, लताओं को और अपने पाले हुए मृग छौनों को देखा होगा, जैसी ममता से निर्वासित नारी अपनी उस जन्म भूमि को देखती है जिस में वह फिर कभी नहीं आ सकेगी किन्तु जो उसे सदैव याद आती रहेगी। कवि की यह ममता उस की हिम ज्योति जीनू ज्योत्स्ना में भी किन्नर कवि कालिदास का अमूल्य वरदान प्राप्त कर के प्रति पल क्षीण होती चाँदनी को करुण भाव से देखती रह जाती है।

प्रभात की यात्रा सध्या में समाप्त हो जाती है। अन्तिम बार अनुराग भरी दृष्टि में पृथ्वी को देख कर अंधकार की गुफा में दिन धन (सूर्य) चला जाता है। जीवन सूर्य का किशोर यौवन यह सुन्दर प्रभात भी प्रत्येक बीतते दिन के साथ सध्या की ओर चला जा रहा है। दिन दोपहरी, संध्या, तमी, पाख, महीने, रितु, वर्ष सब ही शाश्वत प्रभात के चारों ओर नृत्य कर रहे हैं। काल नदी के तट पर की स्वर्ण सिकता में क्षण भर के लिए जीवन सौन्दर्य बिखेर कर फिर उसी धारा में सब लीन हो जाते हैं। उसी धारा में सब बहे चले जा रहे हैं। जीवन की संध्या समीप आती चली जा रही है। प्रभात के साथ जीवन का सौन्दर्य और जीवन के साथ पृथ्वी का सौन्दय छूटता चला जा रहा है। न जाने किस अंधकार की ओर हम बहे चले जा रहे हैं। यह जीवन, यह सौन्दर्य, रुका नहीं रह सकता क्या? शान्त शोभा सदैव के लिए अपनी नहीं बनाई जा सकती क्या? जरा आ कर नयन जब मलिन कर देगी, शक्तियाँ जब क्षीण हो जावेंगी, बुझते हृदय-दीप को निविड़ निशा जब घेरेगी तब यह प्रभात अपनी कोमल प्रभा जगा कर रजनी में आश्वासन देने सिरहाने आ सकेगा? अंधकार की गुफा की ओर बढ़ता हुआ मैं उस दिन नील नभ में मनोहर हास को हँस कर उतरते हुए सूर्य को, रोते रोते देखूंगा। विहगों के गीत सुनूंगा। फूलों से भरे बनों में गूंजते भौंरों की गुंजन सुन कर रो पड़ूँगा। दूर्वा के आँसू पुँछते देखूँगा, पर बुझते हृदय दीप की ज्योति बचाने की प्रार्थनाएँ

सब व्यर्थ चली जावेंगी सृष्टि का यह असीम सौन्दर्य जीवन दीप के बुझ जाने पर कहाँ मिलेगा ? अंतरिक्ष में अनेक लोक जगमगाते हैं पर इस पृथ्वी सी माता कहीं नहीं मिलेगी ! यदि जन्मान्तर होता हो तो चाहे जिस रूप में भी हो, मुझे इसी पृथ्वी पर, इसी सौन्दर्यमयी वसुन्धरा में जन्म लेने का अवसर मिले, जीवन की संध्या में मुरझाये सुमन की भाँति 'निवेदन' कर इस पृथ्वी से विदा ले लूँगा।" कवि की यह चेतना 'निवेदन' में जगी है—

विदा-विदा हे हरित तृणों की सुन्दर धरणी !
विदा-विदा हे मानव-पशु की पूजित जननी !
विदा हृदय के सुख ! चिर विदा प्राण प्रिय यौवन !
हे आकाश ! विदा दो मुझ को आज रुदन कर,
जाता हूँ मैं उस प्रदेश में जहाँ हृदय पर,
कभी न पड़ती, सूर्य-चन्द्र की किरणें सुन्दर !
और हाय ! इस पृथ्वी के फूलों को चुन कर,
अब न तुम्हें पूजूँगा मैं इस नभ के नीचे,
तुम भी मुझे विदा दो हे प्रभु ! हे परमेश्वर !

'विराट ज्योति' और 'पयस्विनी' में इस चेतना की मणियाँ विद्यमान हैं किन्तु इस का मूल उद्गम 'प्रभात' में, विस्तार 'जीवन-सरिता' में, समाप्ति 'स्निग्ध शान्ति' में है—

है आज समाप्ति दुख-सुख की, आखिरी सिसकियाँ ये मेरी,
है यह पृथ्वी का अन्तिम दिन, आखिरी हिचकियाँ ये मेरी !
पवनों को सौरभ दे-दे कर, भ्रमरों की गूँजें पी-पी कर,
हँसने से थक गिर दूर्वा पर जो शान्ति कुसुम को मिलती है,
जो शान्ति थकित को मिलती है, वह स्निग्ध शान्ति हो मेरी !

प्रकृति के सौन्दर्य, पृथ्वी के फूलों, भौंरों की गूंजों, विहगों के स्वरों में तन्मय हो कर, जीवन-सौंदर्य की शान्त होती हुई शोभा की ऐसी तीव्रानुभूति जिस ने की हो, उस के मरण संगीत को ऐसा अमर रूप

दिया हो ऐसे किसी भी अन्य कवि का पता हिन्दी-साहित्य में अब तक नहीं लगा है।

प्रभात के कवि को प्रकृति का वरदान प्राप्त हुआ है। प्रकृति ने हिमालय प्रेमी कालिदास के समीप चन्द्रकुँवर को ला बिठाया। कालिदास का भी वरदान उन्हें प्राप्त हुआ। उस वरदान के सौन्दर्य का नृत्य प्रभात में भी विद्यमान है।—

भाग रही है रात सामने अन्धकार को ले कर !
पीछे से घिरता आता तम, दीप अनंत जला कर !
आस-पास करती रहती हैं रितुएँ अस्थिर नर्तन,
पृथ्वी के आनन पर होते क्षण-क्षण नव परिवर्तन !

परिणय-वेदी के चारों ओर इन्दुमती और अज ऐसे ही घूम रहे थे जैसे सुमेरु के चारों ओर चन्द्रमा और सूर्य। प्रभात के चारों ओर रितुएँ अस्थिर नर्तन करती हैं। रात जब तक, अंधकार को ले कर भाग भी नहीं पाती, तब तक तम अनंत दीप जला कर पीछे से चला आता है, दिन इतनी तेजी से चला गया जैसे एक रात गई भी नहीं कि दूसरी रात आ गई, समय के पंख जैसे लग गये हों, इसी से रितुओं का भी अस्थिर नर्तन है और पृथ्वी के आनन पर क्षण-क्षण नव परिवर्तन हो रहे हैं।

'प्रभात' संबंधी कविताएँ बच्चन, महादेवी, पंत, निराला, गुरु भक्त सिंह, अयोध्या सिंह उपाध्याय और मैथिली शरण आदि ने भी लिखी हैं। बच्चन के प्रभात में रंगीन जीवन के स्पंदन हैं, गुरु भक्त सिंह के प्रभात में दृश्यों के चित्र हैं, उपाध्याय और गुप्त के प्रभात, सौन्दर्य के चित्र नहीं, वस्तु व्यापारों के विवरण हैं। उन में हृदय के कंपन नहीं स्थूल रूपों की रेखाओं में वस्तुओं के रंग हैं। चन्द्र कुँवर का प्रभात इन सब से भिन्न है।

चन्द्र कुँवर का प्रभात, रात्रि के पश्चात आ कर, पृथ्वी पर सारा परिवर्तन आप से आप उपस्थित कर देने वाला समय मात्र नहीं है, न एक रंगीन लहर भर, जो कि समस्त विश्व को सोने में बोर देती है।

वह एक दूरागत प्रेमी, एक दीन ग्रामीण ग्वाला भी है जो हिम-जल में भीगे वन-पथ पर अपनी गौओं के साथ वन की ओर जाता है; और एक कृषक भी है जो अपनी कन्या को हँसिया दे कर खेतों में पकी पीली फसल काटने भेजता है। किशोर पृथ्वी को यौवन के पथ पर और यौवन-वती वसुमती को मरण रजनी का स्वर्ण देने वाला हिरण्य गर्भ है जिस का शाश्वत गान युग-युगों से होता चला आ रहा है। उस में सौन्दर्य प्रेमी प्राणों की तन्मय चेतना की करुणा धारा पावनी गंगा की भाँति बह रही है।

सौन्दर्य की अनस्थिरता को देख कर रवीन्द्र नाथ ने किसी संध्या में व्यथित हो कर कहा था 'द सन वज़ हाइडिंग इटस् गोल्ड लाइक अ माइज़र', 'अलास द ब्यूटी डिल्यूडस्!' रवीन्द्र नाथ से बहुत पहिले, शेक्सपियर कह गये थे – "रौक्स इम्प्रिग्नेबल आर नौट सो स्टाउट, बट टाइम डिकेज़"। चन्द्र कुँवर की वेदना उसी मार्मिक व्यथा की कहानी कह रही है।

चन्द्र कुँवर का प्रभात, कवि के शैशव के आशामय स्वप्नों की समाधि है, मनोहर चिर परिचित मित्र है, उदास शत्रु भी है। वह जीवन देने वाला भी है और उसे हरने वाला भी। वह नित्य आता है इसलिए चिर परिचित है। उस के प्रतिदिन के सौन्दर्य से नया परिचय करना होता है, इसलिए वह अपरिचित है. सूर्य लोक से झरने वाला, शान्त ज्योति का वह निर्झर, कवि के जन्म-जन्म के दुखों का उज्ज्वल अव-लंबन है, सुख का नीरव सागर, प्राणों का परम मित्र, अखिल विश्व का जीवन, मरण रजनी का स्वर्ण, नील गगन का स्वर्ण गीत, पुलकित पवनों की चंचल स्वर्णपुरी का हीरा, छाया का आलोकहास, अवनी की पलकों पर जागृति का मनोरम स्वप्न, एक बेला, एक दिन, एक वर्ष, एक जीवन तथा अंत हीन शाश्वत ज्योति-प्रवाह सब कुछ एक साथ है। चन्द्र कुँवर ने उस के अभिनंदन में दुखी हृदय का निवेदन, प्रेमी की विह्वल वेदना, आत्मा का राग, कवि का हृदय, दार्शनिक का चिन्तन,

विराट पृथ्वी का सुख-दुख, जन-जीवन का विश्वास, वैज्ञानिक का निरीक्षण और निपुण कलाकार का कौशल एकत्र ही हमें दिया है। चेतना की गति और सौन्दर्य की तरलता इस की अपनी विशेषताएँ हैं।

वैज्ञानिक, कवि और कलाकार की शक्तियों का समन्वय करा देने वाली इस कविता की इन पंक्तियों पर विचार कीजिए—

ले जाते किशोर पृथ्वी को तुम यौवन के पथ पर,
कलिकाओं के फूल बनाते, फूलों के फल सुन्दर !

कलियाँ खिल कर फूल बनती हैं। रवि-रश्मियाँ, फूलों को फलों में परिणित कर देती हैं। रूप में रंग, और रग में रस, कोमलता में सुगंधि और सुगंधि में स्वाद, यह विकास क्रम वैज्ञानिक भी देख लेता है। लेकिन इस क्रम में सौन्दर्य भर देना काव्य के विश्वकर्माओं का काम है। कल्पना, शब्द-शास्त्र, अर्थ-व्युत्पत्ति, अलंकार, रीति, गुण, शक्ति, ध्वनि, व्याकरण आदि जितने भी साधन, भाषा की प्रेषणीय क्रान्त-दर्शिता बढ़ाने वाले हो सकते हैं उन का उपयोग विश्व के रस सिद्ध कवीश्वर अपने काव्य को स्पंदनवान बनाने के लिए करते हैं। कुशल कलाकार कवि, व्याकरण के एक छोटे भी प्रयोग से कितना चमत्कार उत्पन्न कर सकता है इस बात को 'कलिकाओं के फूल बनाते, फूलों के फल सुन्दर' में हुए 'के' के-प्रयोग से समझा जा सकता है। थोड़ी देर के लिए 'के' के स्थान पर को' को रख दीजिए और विचारिये। पता लगेगा—सारा सौन्दर्य ही गायब हो गया और शेष रह गया है एक वैज्ञानिक तथ्य भर। 'के' को अब फिर जैसा का तैसा रख दीजिए, और देखिए, सौन्दर्य, पूर्ववत चला आया है, सौन्दर्य की रक्षा, सुकुमारता का विकास और उपयोगिता की वृद्धि एक 'के' के प्रयोग पर अवलंबित हैं। कलियों में जो कोमलता है उस को बनाये रखने के लिए कवि ने फलों का शरीर, फूलों से, और फूलों का कलियों से बनाया है। कलियाँ अपनी कोमलता में जैसी की तैसी रह कर फूलों के शरीर के स्थान पर आ गई हैं। और कलियों की कोमलता से निर्मित शरीर वाले सुगं-

धित रंगीन ये फूल रसीले फलों के शरीर का काम दे रहे हैं। इन फलों में रस तो आ गया है किन्तु कोमलता, सुगंधि और रग आदि विशेषताएँ बनी रह गई हैं। ऐसे सुन्दर फलों के उत्पन्न कर सकने की संभावना विधाता अपनी सृष्टि के कवि से भिन्न देख सके न देख सके, कवि उसे अवश्य देख लेते हैं, इसी से 'जहाँ न पहुँचे रवि, तहाँ पहुँचे कवि' की कहावत लोक में चलती है। कवि ऐसी संभावनाओं को देख कर उन का निर्माण भी कर लेते हैं। उन की कृतियों में दूसरे भी विस्मय-विमुग्ध हो कर उन्हें देख सकते हैं। उन के आनंद रस का अमित परम मनोहर स्वाद बिना मुँह चलाए ले सकते हैं। अनुभूति में अभिव्यक्ति के मणि-कांचन संयोग से ही ससीम से असीम, लघु में विराट, जीवन में सत्य, सत्य में शिव और शिव में सुन्दर मूर्तिमान हो पाते हैं। इन के मूर्तिमान होने से जीवन-काव्य में स्निग्ध-शान्ति स्वतः चली आती है।

—:*:—

१४ ऐतिहासिक काव्य मानोदय

श्रीनगर गढ़वाल के नृपतियों से संबंध रखने वाले संस्कृत काव्यों में परमानंद (भरत) ज्योतिक राय कृत मानोदय सब से पुराना और महत्व का है। इस काव्य का पुनः उद्धार भरत ज्योतिक राय जी के वंशज मेधाकर जी शास्त्री ने सन् १७३६ ई० में किया। मेधाकर जी द्वारा प्रस्तुत किया हुआ भरत ज्योतिक राय जी का मानोदय जिस रूप में प्राप्त हुआ है उस रूप में ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस वंश की वंशावली बड़े परिश्रम तथा वर्षों की खोज के पश्चात् पं० गिरधारी लाल जी बहुगुणा (जन्म बुध २६ दिसम्बर १८८६ ई०) ने तैय्यार की है। इस वंशावली में भरत जी का कुल इस प्रकार वर्णित है—

रामस्यासन् पंच पुत्राः पंचतत्वावतारकाः।
पंच यज्ञरतोः पंचायतनीया इवामराः॥
भरतोवारु गोविन्द शंकराश्चैव पंचमः।
सरस्वती विलाशाख्यः सर्वे शास्त्रार्थवेदिनः।
अथ सूतात्मजः द्वन्द्वं ज्योतिराय प्रतापवान।
मार्कंडेयाभिधो ज्येष्ठो वेदान्तार्णवपारगः।
व्यर्थ संसार कं कृत्यमिति मत्वासचोद्वयम्।
पुत्रोत्पादन कै नैव कृत्वा प्राप परांगतिम्।
द्वितीयो भूद्वाशिष्टाख्यो वशिष्टइवचापरः।
तत्पुत्र कालिदासो भूत्तत्पुत्रस्तु त्रिविक्रमः।
त्रिविक्रमाच्छिवाख्यो भूच्छिवरूप इवापरः।
शिवात्मजातौद्वावास्तां भवोजगुश्च नाम तः।
इमौद्वावेवनिः पुत्रौ जातौ दैव प्रभावतः।

सन् १७८२ ई० में रामायण प्रदीप रचने वाले मेधाकर जी शास्त्री ने प्रदीपशाह (राज्यकाल १७१७ ई०-१७७२ ई०) से मानोदय प्राप्त कर उस का उद्धार िया। चामीकर जी के दो पुत्र पयागू जी और

अधिदेव जी हुए। पयागू जी वाली शाखा में भरत ज्योतिक राय हुए जो कि जहाँगीर के दरबार के दैवज्ञ थे और जिन का स्वर्ण तोल दो तीन बार जहाँगीर ने किया था। जहाँगीर नामा में इस का भी उल्लेख है, अधिदेव जी के पुत्र माधव जी, माधव जी के पुत्र श्री पति जी, श्री पति जी के चंडीदास जी और चंडीदास जी के मेधाकर जी हुए। मेधाकर जी के पुत्र रामदत्त जी (१७६१ ई०-१८२८ ई०), रामदत्त जी के रघुवरदत्त जी (१८०४ ई०-१८६० ई०), रघुवरदत्त जी के बालमुकुन्द जी (१८५५ ई०-१९२४ ई०), बालमुकुन्द जी के गिरधारी लाल जी हुए। गिरिधारीलाल जी के तीन पुत्र,शंकरलाल, शंभुप्रसाद (जन्म बुध २८ अप्रैल १९१५ ई० , तथा धनञ्जय हुए, जिन में से शंकरलाल अब नही हैं।मानोदय के रचयिता भरत जी का नाम परमानद भी था इस बात का पता उन की दूसरी रचना 'जहाँगीर विनोद' से चलता है। 'जहाँगीर विनोद' ज्योतिष ग्रंथ हैं। ज्योतिषाचार्य (ज्योतिकराय) की उपाधि परमानंद (भरत) जी को जहाँगीर ने दी। जहाँगीर ने ज्योतिकराय जी के चमत्कारों का उल्लेख अपने जहाँगीर नामा में किया है।

मानोदय,श्रीनगर के नृपति मानशाह (१५४७ ई०-१६०८ ई०) के उत्कर्ष का काव्य है। मानोदय के कवि ने रघुवंशकार कालिदास की शैली का अनुसरण किया है और कालिदास का उल्लेख भी कर दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से वह काव्य अत्यंत महत्व का है। श्रीनगर के राजवंश की वंशावली का जो रूप इस में है वह सब से प्राचीन होने से अधिक प्रामाणिक है। बाद की रचनाओं में वंशावली बदलती चली गई है किन्तु मानोदय की वंशावली के अनुरूप ही 'रामायण प्रदीप' की भी वंशावली है। मेधाकर जी ने रामायण प्रदीप में मानोदय की ही वंशावली को महत्व दिया है। मेधाकर जी प्रदीप शाह के राज पंडित थे। प्रदीप शाह को उस वंशावली पर कोई आपत्ति नहीं हुई इस से भी उस की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

मानोदय

१ कपोल पालिच्च्युत दान वारि पिपासुरोलंब कलं निशम्य ।
निमीलिताक्षोक्षि निपातशंकी लम्बोदरोयं कुरुतां शिवं मे ।
२ यत्कालिदासादि वियोग दुःखं जहौयमासाद्य सरस्वती तत् ।
अशेषविद्वज्जनवृन्द वन्द्यो गुणाभिरामो जनि राम नामा ।
३ तस्यात्मजः सर्वगुणैर्गरिष्ठो वशिष्ठवत्पद्मभुवो वभूव ।
काव्यांवुधो मंदरवन्निमग्नो दैवज्ञ मुख्यो भरथाभिधानः ।
४ मानोदयं नाम चकार काव्यं सहेलया हेलि समान तेजाः ।
यो दुर्ज्जनेत्यंत विरक्त चेताः सदानुरक्तः किल सज्जनेषु ।

प्रथम सर्ग

१ अजेयपालो नृपतिः स आसीन्नाम्नैव यः शत्रु मनोविभेता ।
चन्द्रान्वये जन्म वभूव तस्य युधिष्ठिरस्येव युधिस्थिरस्य ।
२ दुर्योधनोत्यंत गुणप्रियोपि यो भीम सेनोपि गदान्वितेन ।
मनुष्यधर्मा विविधैरुपेतो महीमहेन्द्रोपि बलः प्रियो वै ।
३ नृपवरः स शशास धरामिमां सुनय नन्दित देव पुरोहितः ।
बहु दिगन्त निवासि नराधिपैः कृतनतिः कुसुमेषु समद्युतिः ।
४ सहजपाल नृपाल शिरोमणिः समभवत्तनयोस्य महीभुजः ।
यमधिगम्य जना जगतीतले मुमुदिरे मुदिरं विहगाइव ।
५ सर्वगा जगति यत्र राजनी राजनीति चतुरेप्रशासति ।
क्वापि नापि गुरु धीर मंडले मंडलेश विभवाद्दरिद्रता ।
६ य च्छ्रिया परितुतोष नागरी, नागरीयसि गुणोनुरागवान् ।
संगरे सकल शत्रु तापन स्तापनः कर इव प्रतापकः ।
७ यो रराज वसुदेवतर्प्यकः कृष्णवत्गिरिशवत्वृषाश्रितः
चन्द्रवत्कुवलयैक मोदकृच्छक्रवद्विवुध वृंद सेवितः ।
८ यत्राजिभाजि प्रतिराजराजी पंचत्वमागच्छत संख्यकापि ।
चकर्षजीवं धनुषोयदासा वपासुरासीत्समरे सपत्नः ।

९ रागावृतांगीव विपक्ष कंठे लग्नाथसातंग च ये पतंती ।
लोकेन या लोकि सयुद्ध भूमौ तत्रासियष्टावनुरक्त चेताः ।
१० कश्चिज्जनं जातु न मन्य ते सौ श्रियं द्विजेभ्यः प्रददाति किंच ।
कुल्तेव कीर्तिः प्रययौ दिगंतं तस्मात्प्रभोरस्य विशुद्ध वर्णा ।
११ भुक्त्वा सुभोगानखिलान्नरेन्द्रो दत्वाद्विजेभ्यो द्रविणं वरेण्यम् ।
आराध्य कामं जगतो शरण्यं महेश्वरं तत्पदमाससाद ।
१२ तस्मात्पयोधेरिव शीत भानुर्यशः प्रभादीपित दिग्विभागा ।
गुणैक वश्यो जगदेक दृश्यः स्फुरत्प्रतापो जनि मानशाहः ।
१३ अहार्य्य गांभीर्य्य गुणैः समुद्रः शौर्य्येण भीमो सहसा दिनेशः ।
दानान्वलो निर्जित कर्ण कीर्त्तिर्द्धनुः श्रियायो विजय प्रभावः ।
१४ यशः प्रतापौ भुवनेष्व दृश्यौ दृश्यौ कृतौतेन नृपोत्तमेन ।
कैलास शैलोस्य यशः समूहः प्रताप पुंजोस्य सुमेरु शैलः ।
१५ भास्वत्प्रतापस्य नृपाधिपश्य मित्रोपिमित्रत्व मुपैति नूनं ।
पतत्प्रतापोपम मेरु शैलं प्रदक्षिणं प्रेम वशात्करोति ।
१६ वपुःश्रिया सद्विभवादनेन यक्षाधिराजोपि सुहृत्कृतः किं ।
यत्कीर्ति पुंजोपम भूधरोयं निषेव्यते प्रीति वशेन नूनं ।
१७ निशां विजेता नृपतिर्यतोसौ यशः समूहोपि जिगीषुरस्य ।
निर्जित्य सर्व्वान्लवणादि सिन्धून्क्षीरांवुधिं यःसहसाजिगाय ।
१८ वक्षोरुहान्निर्दयमर्द्दनेन वक्षस्थलं हंति कठोरमेषां ।
विपक्ष भूपालगणास्तथापि तद्वाणभीत्या न पुरो नयन्ति ।
१९ स नीतिमान्मानपुरं प्रशास्ति शास्तारिपूणामजितेन्द्रियाणां ।
विपक्षषड्वर्ग्ग जयैक दक्षो विचक्षणान् रक्षति शुद्ध वुद्धीन् ।
२० यस्मिन्सुभाराज सभां विभाति सम्यक्कवीन्द्रै र्वहुवेदविद्भिः ।
वशिष्टवाचांपतिनारदाद्यैः सद्भिः सुधर्म्मेवपुरामहोनः ।
२१ सभासदो धर्म विचार दक्षा धर्मोपदेशं निगदंति यस्यां,
सधार्मिकः सत्पदवींसुपेतो युवापिनासद्व्यसनाभिसक्तः ।
२२ मार्तण्ड तेजाः स कदापि राजां कदाचिदाकृष्ट सुधाकर श्रीः ।

प्रताप कीर्त्ति स्फुट निग्रहेण शंकेस जग्राह तयोः स्वभावं ।

२३ व्रीडा स्वभावः कुल संभवानां शान्तिर्द्विजानां नृपतेरशांतिः ।
एतद्विचित्रं नगरेस्य लक्ष्मीश्चांचल्य मुत्सृज्य दधार धैर्य्यं ।

२४ समंत्रिवृद्धान्समुपेत्य नित्यं तेभ्यः परं मंत्र मवाप गूढं ।
चारैक चक्षुः सकला सुदिक्षु लोकानशेषान्वशमानिनाय ।

२५ सनीति शास्त्रेषु विचार्य्य कार्य्यं राज्जेषु राजा स्वयमेव तेन ।
जुगोप बन्धून्निजघान शत्रून्परिच्छदास्तस्य सभासदस्ते ।

२६ विपक्ष भूपाः प्रशमीक्ष चारैश्छिद्राणि राज्येदद्दृशुर्नतस्य ।
दृडं सभेदं परिहृत्यदूरात्तेनुः समंतेन ससाम दानं ।

२७ तस्मात्वदान्यादधिगम्यवित्तं द्विजातयोन्यानवहुदत्त वित्तान् ।
पयः पयोधेरिव मेव संघानदान्ययोदानपरान्वितेनुः ।

२८ अवाप्य तस्मातद्रविणं दरिद्रा जाताः समुत्तुंग तुरंग वित्ताः ।
इदं विचित्रं नृपतेश्चरित्रं हैमानि गेहानिययुन तेषां ।

२९ श्रीमानशाहनृपतेरतुलःप्रतापो भस्मीचकार रिपुराजकमंदिराणि ।
तेनास्मि निर्जितइतीवसन्वाडवाग्निःशंके ममज्ज जलधौ गुरु लज्जयेव।

३० अपर नगर भूपैर्द्धूत कीर्तिप्रतापै-
मुकुटमणि मयूखैः स्पृष्टपादारविन्द ।
सुचिरमुरुयशः श्री सत्प्रतापैरुपेतो-
भवतु नृपति वंद्यो भूपतिर्मानशाहः ।

इति श्री मनोदये काव्ये ज्योतिरायोपनाम भरथ विरचिते मानशाह वर्णनं नाम प्रथमः सर्ग समाप्तः ।

द्वितीय सर्ग

१ गीत वाद्य परिनृत्य मंगलैः संकुलं विपणि कुट्टिमोज्वलम्
मंडितं विविध सौध मंडपैर्भाति मानपुरमस्य भूपतेः ।

२ दुर्गमं पृथुमदांध सिंधुरै र्भूधरैरिव समुन्नतै क्वचित् ।
राजितं जवन वाजिराजिभिः क्वापि पत्ति रथ संघ संकुलम् ।

३ षट् पदौघ कल मंजु गुंजितैः पुष्पितैरुपवनैः सुसौरभम् ।
नंदनोत्थ सुमनो मनोहरैः पादपैरिवपुरं वलद्विषः ।
४ यामिनी रमण मंजुलाननैं र्लोचनां चल विजिह्व वीक्षितैः ।
कांचि नूपुर मनोज्ञ नि स्वनैः सप्रेमदमिव कामिनी जनैः ।
५ क्वापि विप्रगण वेद निःस्वनैर्द्धूत किल्विस चयं पुरौकसाम् ।
कुत्रचिद्गृह कपोत मंडली स्थूल कंठ कल निस्वना कुलम् ।
६ यत्र दुर्गमतुलं सुदुर्ज्जयं निर्ज्जरैरपि स यक्ष राक्षसैः ।
राक्षरेश्वरपुराद्भुतं बुधा दुर्गमस्य बहुधा प्रचक्षते ।
७ यत्रराज सविधेय शोधना विद्यया विमल कीर्ति लिप्सवः ।
पंडिता विविध शास्त्र वेदिनो वादिभिः सह वचो वितन्वते ।
८ गीत शास्त्र निपुणः पुरौक सो मूर्च्छनाभिरभितः सुगायनाः ।
भूपतेः सदसि यत्र सुस्वरा वेणुभिर्ज्जन मनोहरं जगुः ।
९ यत्र हर्म्य निवहे सुरागिणः प्रेयसीगण वियोग कातराः ।
वल्लकी मतिमनोहरस्वनां निन्युरंक मथ गान तत्पराः ।
१० विद्रुमाणि विनिकीर्य सुंदरी विक्रयाय विपणौ वणिग्वधूः ।
वाससोष्टमपि धाय यत्र सा क्रेतुराननमुदीक्षते मुहुः ।
११ यत्र मौक्तिक गणान्वणिग्वधू विक्रयाचविनिकीर्य्य चत्वरे ।
दंतपंक्तिमपिधाय पाणिना ग्राहकं वदति हस्त संज्ञया ।
१२ माल्यकार महिला कलेवरं वीक्ष्य यत्र कलधौत सोदरम् ।
ग्राहकानजगृहुर्न्निरादराश्चंपकानि सुमनोहराण्यपि ।
१३ क्रायकः कुसुम लाविते मुखं वीक्षनैव कमलानि नेष्यति ।
अंचलेव वदनं पिधीयतां चंचलाक्षि किमुदीक्षसे मुहुः ।
१४ लोचने तव विलोक्य शोभने नोत्पलान्यपि ग्रहीष्यति स्फुटम् ।
यत्र कोपि रसिको वदन्मुदा माल्यकार वनितां कुतूहलात् ।
१५ आपणेषु वणिजां स सौरभे गंध वस्तुनि कदाचिदागताः ।
यत्र निश्चल पदा मधुव्रता विभ्रतिस्म मृगनाभि विभ्रमम् ।
१६ अट्ट पंक्ति निलये निशामुखे यत्र दीप्त महसः प्रदीपकाः ।

नाग राज फण राजि राजिता मा वहंति मणि मंडलश्रियम् ।
१७ यत्र भाति विपिनं महीरुहै पाटला वहुल विल्व कंटकैः ।
नागकेशर कदंव जांववैः कर्णकार सहकार दाडिमैः ।
१८ यद्विभाति विपिनैर्विहंगमैः कीर कोकिल मयूर कुक्कुभैः ।
खंजरीट कलविंक चातकैः श्येन वर्त्तक कपोत कुक्कुटैः ।
१९ यत्रकाल्स्यलकनंदया चलद्वीचि बाहु कृत मंजु शोभया ।
हंस राजि रुचिरां शुकांतया कांतयेव कुच चक्रवाकया ।
२० प्रेयसा सहसमेत्य संगमं प्रेयसी च समवाप हर्षितम् ।
यत्र चक्र मिथुनं परस्परं व्याजहार परिदृश्य भास्करम् ।
२१ अंधकार निचयं मरीचिभिः संहरत्यय महो दिवाकरः ।
चक्षुरेष जगतां प्रकामदः कोक शोक हरणोस्यकःश्रमः ।
२२ यत्र कोमल मृणालमादराच्चंचुमध्यगतमप्यनेकशः ।
भोक्तुमर्थयति चक्रवाकिनी वल्लभं वत वुभुक्षिताप्यसौ ।
२३ भास्करं समवलोक्य यत्र सा पश्चिमाचलमुपैतुमुद्यतं ।
व्याजहार विरहाधि शंकिनी वल्लभं प्रति सगद्गदंवचः ।
२४ यामिनीषु विधिना निरंतरं, निर्मितं विरह दुःखमावयोः ।
किं विधेय मधुनापतिस्त्विषाम् अस्तमौलिमुपगंतुमुद्यतः ।
२५ क्रौंच हंस कलहंस सारसा मानसेकतिन संति पक्षिणः ।
तादृशां क्षणमिवैति संगिना मादृशां युगमिवैति यामिनी ।
२६ यत्र तिष्ठति पुरे सरिद्वरा धौत किल्विषभरा महत्तरा ।
वद्ध मौलि मणिकांचि नूपुरा तत्र सा वसति सर्वदेंदिरा !

२७ विमल तर पयोभिर्द्धौत निःशेष पंका,
शमित शमन शंका जीर्ण संकीर्ण कंका ।
तट निकट विटंका चारु पारावतांका,
विरचित सिकतांका भाति निर्द्धूत पंका ।

२८ शुद्ध वारि परितुष्ट मुकुन्दा फेन निर्जित मनोहर कुन्दा ।
तत्र भाति जन वुद्धिरमंदा यत्र तिष्ठति पुरेलकनंदा ।

२६ स्फटिक विमल तारा तीर संसक्त धारा,
विविध विटपि तीरा भंगिरिंगत्समीरा।
दलित दुरित भारा सर्व नद्येक सारा,
जयति तुलित हारा सा धुनी दुर्निवारा।

श्री ज्योतिरायोपनाम भरथ विरचिते मानपुर वर्णन नाम द्वितीय सर्गः।

तृतीय सर्ग

१ अथ रथ गज वाहोद्धूत धूली कदंबै-
गगन तल मवाप्तैं गुप्त मार्तण्ड विम्बः।
असि निशित शरौघोद्दंड कोदंड चंडः
प्रलय शमन भीमो निर्ययौ मानसाहः।

२ मुखरित गज घंटा चंड निर्घात घोषै-
स्तरलतर तुरंगा रूढ विक्रान्त शब्दैः।
निज युवति जनाली जीव रक्षायुमर्था-
गिरि कुहर वनांतं दुद्रुवुर्वैरिभूपाः।

३ चल वलय भुजाग्रे रंक मानीय डिंभं
रिपु नरपति कांताः काननांतं व्रजंत्यः
धृत विशिष मृगपुत्रा तत्ररिंगत्कुरंगी
चपल नयन भंगील्लोल नेत्रैर्वितेनुः।

४ कतिचिदवनिपाला स्तत्र कूर्म्माचलस्थाः
पटुमति सचिवौघा नित्थमूचुः प्रवाचः।
अयमति शय दक्षो मानसाहः समक्षः
कथय कथमिदानीं दुर्गरक्षा विधेया।

५ तरल तुरगवारैरश्ववारैक वीरै—
र्गल चपल विराजच्चामरोद्दाम शोभैः।
प्रतिभय जय शब्दैः सिंहनादैर्बलानाम्
अखिल विकल लोकः कंपते किं विधेयम्।

६ नव किशलय शोभैः कंवलैः संवतांगा
रवि किरणमिवोच्चैः पृष्ट भागैः किरंतः ।
अतिशय परिवेल्लत्किंकिणीतार शब्दैः
मधुकर कल नादं दंतिनच्छादयंति ।
७ सृणिमतिशयतीक्ष्णं हंत निर्द्धूतवंतः
कथमपि मद मूढां नैवधैर्य्यं वहंतः ।
रचितवमुथ जालैर्गात्र माधोरणानाम
उपरि विपुल हस्तैः केपि सिंचन्ति नागाः ।
८ वहु विध मद धारा मोदमत्तद्विरेफैः
सहज मलिन काये कालिमानं वहंतः
प्रथु तर वर घंटा घोर गम्भीर घोषै-
र्न्नव जलधर शोभां सिंधुवारा हसंति ।
९ उपल पटल भेदान्नीलिमानं वहद्भ्यां
गुरुतर दशनाभ्यां कोपि गंभीर वेदी ।
भ्रमति शिविर मध्ये दुर्द्धरः शूर संघै
रतिहत निगडोसो सिन्धुरः स्वैर चारी ।
१० सरसि सलिल मध्ये प्रस्थितः पातुमंभो
निज वपु रथ तस्मिन् विम्बितं वीक्षमाणः,
प्रति गज इति रोषा दुर्द्धरः सिन्धुरोन्तः
कर गतमपि नीरं क्षिप्रमुच्चांचकार ।
११ अरि नृपति गणानां दीर्घिकांभोज मध्या-
द्विमलतर मृणालं भुंजते कुंजरौघाः
धन मिव परिगुप्तं पंकमध्ये भयार्त्तै
सरस मति मनोज्ञं कीर्तिजालं किमेषाम् ।
१२ स्वमद सलिल सिक्तं तिक्तमाघ्रायतोयं
न पिवति मद मूढ शंकमानोन्यसिक्तम् ,
विपुलतर कराग्रैः केवलं पद्मिनीनां

दल पटल मृणालं हंतचित्तेपदूरान् ।
१३ सरभ समथ लब्धासंगमं पद्मिनीनां
मधु सुरभि मुखाब्जं स्वैरमाघ्रातवंतः ।
अलिकुलमिवतासां कज्जलं संवहंतः
कथमपि करि खिड्गां निर्ययुस्तांप्रमुच्य ।
१४ मद सलिल विचित्रं पद्मिनी कामिनीनां
कुच सरसिज मध्ये चोल जालं वितीर्य ।
निज वपुपि जलार्द्रे गाढ़मासज्यमानं
दलपटलमिवासां चोलमादाय जग्मुः ।
१५ वहुल सलिल बिन्दून् गंड भित्योर्विलग्नान्
दधतिशय शुभ्रः स्थूलकायान्करीन्द्रः ।
विलसदमलमुक्तां जालमंतर्निगूढं ,
प्रकटयति किमेतत् पद्मिनीनां पुरस्तात् ।
१६ नृपतिगजपतीनां दर्शनात् वैरि भूपात्
अधुरतिशय कार्श्यं लोकनिन्द्या भयार्त्ताः ।
करि वर परिसंगात् वीरवर्याः पुनस्ते
विपुल मद जलानां निर्झरान्संवहंति ।
१७ विशद विस विराजत्पुंडरीका वृतांगः
पयसि दशन युग्मं विम्बितं विभ्र दन्तान् ।
विलसति विपुलांगः सत्यमैरावतोयं
किमिहि भवति चित्रं मानशाहः क्षितीन्द्रः ।
१८ ज्वलित कनक भूषाविस्तृतांगास्तुरंगाः
किमिह विपुल वेल्लज्जिह्वयासं रटंति ।
गरूड इह जगत्यां गीयते वाजिराजो
वयमपि च कुलीनां वाजिनो वाजिराजाः ।
१९ खुर निकर समुत्थद्धूलि संघातकीर्णं
वियदपि कियदेतल्लं घनेस्माकमुच्चैः

सततमिति वदंतः पारसीकाः किमेते
विजित पवन वेगाः उत्क्षिपेत्यग्रपादान् ।
२० अथरथमभिवीक्ष्य प्रोन्नतं तस्य राज्ञो,
विजित पवन वेगैरष्टभिर्युक्तमश्वैः ।
जगदुपरिविराजत्स्पन्दनं सप्त सप्ते—
र्विकल गमनमिदानीं लज्जते किं न दिव्यं ।
२१ रण धरणि करालो भूपते पत्त्विारः
कर निकर समुद्यन्मंडलाग्रो महोग्र
रिपुनगर तरुण्यो यद्विशालास्त शस्त्रै—
र्दधति नत ललाटं मुक्त सिन्दूर शोभम ।
२२ विपुल पयनु दुर्गो रुद्र भूपाल जन्मा
वलमथ चतुरंगं लक्ष्मणो वीक्ष्यमाणः ।
निज नगर बलौघान्नंदि भृंग्यादि मुख्या-
न्कवच पिशित गात्रानादिशद्योद्धुकामान् ।
२३ अथ नृपति कृताज्ञामित्थ मादाय मूर्ध्ना,
विधृति विपुल खड्ग प्रस्फुरच्चाप वाणाः ।
तरल तुरग वाणैरश्ववारैः समेता
यदुपतिमिवदैत्या मानशाहं ययुस्ते ।
२४ चरण पतित पोतान्गाढमालिंग्य भद्रे,
शिशुगण परिरक्षा संविधेयाप्रयत्नात् ।
इति विरचित वाचां प्रस्थितानां रमण्यः
कथमपि कृत धैर्य्या नामुचन्नश्रु विन्दूः ।
२५ द्विज गुरु परिचर्या भक्ति भावाद्विधेया,
निरवधि गृह चिंत्यं कार्यमार्य्याविचार्य्य ।
इति निगदित शिक्षा गेहिणीनां समक्षं
ज्वलनमिव पतंगा मानशाहं समीयुः ।
२६ प्रति दिशमथ तीव्रः सुश्रुवे घोर शब्दो,

ज्वलित मुख शृगाली वक्रमध्यायु दीर्णः।
दिशि विदिशि महोग्रा हंत जल्पंति काका
युवतिरिव भयार्त्ता कंपते भूत धात्री।
२७ दृष्ट्वा ततः पयनु दुर्ग पतिः करालं
संबद्ध भीम परिवेषमशीत भानुं।
वेल्लत्प्रतीप पवमानमथो विचिन्त्य
चिन्तामतीव महती मनुसं जगाम।
इति श्री ज्योतिराय विरचिते मानोदय काव्ये तृतीय सर्गः समाप्तः।

चतुर्थ सर्गः

१ संग्राम साहस रसा विजिगीष वस्त्रे,
वीराः परस्परमुदग्रतराः समीयुः।
संख्यं ततः परिवृते परिघैर्गदाभिः
खड्गैस्त्रिशूल मुसलन्निशितैः शरोघैः।
२ आधोरणैः सहसमेत्य गजाधिरूढ़ा,
वाहस्थितास्तुरग पृष्ठ गतानुपेत्य।
पादातिकाः सह पदातिभिरेव सार्द्धं
युद्धं वितेनु रति भीम मुदग्रदर्प्पा।
३ खड्गायुधाः समपतन्नसि पाणि वर्गा-
न्कुन्तायुधाः परमकुन्त भृतोनिपेतुः।
कोदण्ड मंडित कराः समरं प्रचक्रुः
सार्द्धं धनुर्द्धर वरैः शरवर्षणास्ते।
४ स्थूलोपलै रति तरां पृथुभिर्विहस्ता
स्तंवेरमाविपुल हस्त भृतोपि जातः।
किंचित्रमत्र तुरगा रथिनो रथौघाः
पादातिका यदि पराजय मा वहंति।
५ संमुच्य वाहनि वहानथपत्ति वर्गा-

न्जघ्नुर्महाद्विरदयूथ वलं वलीयाः ॥
कौक्षेयकैः परशुभिर्मुसलैः खुरप्रै—
र्वाणैस्तथा विकट कंटक भेद दक्षैः ॥

६ केचित्कराल करवाल मतीव तीक्ष्णम्
उद्यम्यचिच्छिदुरिभस्य करं विशालं ।
तत्साहसं समवल्योक्य तुतोष नंदी,
भृंगी तथैव जनता स्तुतयुः समस्ता ।

७ कोप्यश्ववार शिरसो मुकुटं जहार
वाणोत्करेण निशि तेन महोग्र तेजाः
अन्योजघान तुरगं तरसात्क्षुरप्रैः,
पादातिको परि शरैरपरे प्रजघ्नुः ।

८ कश्चिद्विमान मधिरुह्य मनोज्ञ वेषो,
राजा पुरन्दरपुरीं सुकृतैक लभ्यां ।
दिव्यांगना परिविराजित वाम भागो
भोगानवापतरलोक गणैरदृश्याम ।

९ श्रीमानशाह नृपतेरिति सर्व्व सैन्यं,
दैन्यं जगाम रिपुराज वल प्रहारैः ।
एतस्य सैन्यपतयस्तर सान्निषेतु—
र्हंतुं द्विषद्बलमुदग्रतर प्रभावाः ॥

१० रोषाल्ललाट निकरै भ्रूकुटीर्गहंतो,
वीरा विपक्ष निवहं क्षयमाशुनिन्युः ।
वेल्लत्कराल करवाल महाप्रचण्ड,
कोदंड कांड मुसलैः परिघैस्त्रिशूलैः ।

११ कोदंड पाणि रविचंड पराक्रमो सौ
संग्राम भूमि मधि गम्य विलोहिताक्षः ।
आशीविषानिवशरान्द्विषतां वलेषु
चिक्षेप राघव वलेष्विव मेघनादः ॥

१२ नन्दी जगाद मपितिष्टति युद्ध भूमौ,
मागर्वमुद्वह निजे हृदये मुधेति।
जेष्यामिरुद्र—तनयंश्चरतैव पश्चात्
चम्पावतीं निज वशं सहसा करिष्ये।
१३ वाचां तदीयां निज कर्ण गोचरां
कृत्वा करालं करवाल मा ददे,
पश्चात्समारुह्य चचार सोहयं
रणांगणे मान महीन्द्रशाशनः।
१४ तं वीक्ष्य नन्दी रण दीक्षितं पुरः
चकर्ष चापं वहु भीम शब्दजं।
तुतोष राजा वहुतस्य साहसैः
परन्तु भीत्यै निज पड्ग संयताम्।
१५ कृत्वा वियोज्यापि सुलक्ष्य भेदिनं
तं मार्गणं वक्तु मथोप चक्रमे,
निरर्थकं किं निज मत्र केवलं
कलेवरं त्यक्तुमिहेछसि स्फुटं।
१६ खद्योत तेजांसि न जातु सूर्यजं
तेजः प्रभाष्टुं प्रभवंति कुत्रचित्
अथापि चेतैः कियतेत्रसूक्ष्मः
सजीवनाशा वधिरेव गीयते।
१७ दयानिधे स्तस्य महीपतेर्वचः
स कर्ण तुल्यो निज कर्ण गोचरं,
चकार नैवाशु जघान सायकैः
र्मानं समानं नलकर्ण राघवैः।
१८ ततोर्ज्जुनश्चोर्जुन भीम विक्रमः
तं ताडया मास निजैः सुवाणैः।
दृष्ट्वा स वाणौघ महो सुवाणजं

मुमूर्छ पश्चाद्भुविपातमाप्तवान् ।
१६ दृष्ट्वैवतिभृंगी वहु तस्य विक्रमं
स व्यापसव्येन मुमोच सायकान्
राधेय लंकापति तुल्य विक्रमः
कोपेन लोकस्य वलाय सायकान् ।
२० ततः स राजा वहु कोप दीपितः
खड्गं करालं विनिकाश्य हा छिनत्
शिरस्तदीयं सकलांश्च सैनिकान्
मन्यें विकाया वलिदार कारणान् ।
२१ अथ विधाय वधं वल विद्विषः
पयनु दुर्गा मिहाधि रुरोधसः ।
विविध सौध विराजितमद्भुतं
हरिण नेत्रवती गण संयुतं ।
२२ शृंगार शून्य वपुपोश्रु परीत नेत्राः
चीरांवराः कुश तृणास्तृत भूमि पृष्ठाः ।
तद्वैरिराज वनिता गिरि कन्दरेषु
कन्दैः फलैर्मुनिजना चरितं वितेनुः ।

इति श्री मानोदये काव्ये ज्योतिराय विरचिते श्रीमन्महाराजाधिराज मानशाह चरिते चतुर्थ सर्गः समाप्तिम गतम् ।

१ गढ़ देश नरेश वेश्मनि प्रकटी भूत मदः सदोचितं ।
सुखदं पठनाय दायवन्ननुमानोदय काव्य पुस्तकं ।
२ भवतीति निशम्य रम्य या कलवाचा कलितं पितामहैः ।
नृपतिं समया दयानिधिं कृत यत्नेन मया सुयाचितं ।
३ कलनाय सतां कलाविदां, किल मेधाकर शर्म्मणा मुदा,
वसुधा रस षट्क भूमिते सति शाके शुभ मासं कार्तिके ।

—:*:—

१५ हिमवन्त-मंत्र-तंत्र

१ हरियाली (पंचमी)

जौं ल्यौं पैले पंचनामा देवै ; जौं ल्यौं
जौं ल्यौं पैले पंचमी का सालै ; जौं ल्यौ
जौं ल्यौं पैले हरि-राम-शिवै ; जौं ल्यौ
जौं ल्यौ तिला खोली गणेशै ; जौं ल्यौ
जौं ल्यौं पैले त्रे मोरी नाराणै ; जौं ल्यौं
जौं ल्यौ बारा माना बारै, जौं ल्यौं
जौं ल्यौ पैले चैत बैसाखै ; जौं ल्यौं ।

पहले पंचनाम देवताओं को नमस्कार करता हूँ। वर्ष के आरंभ की इस पंचमी की जय कहता हूँ। हरि, राम, शिव की वंदना करता हूँ। नीचे की ढाल (ढलुआँ भूमि) के गण (संस्था) के ईस (अधिपति) को जदेश (जयतु देवः) कहता हूँ। सिंहद्वार के नारायण की जय कहता हूँ। प्रत्येक बार (दिन मान) (महीने) और बारा माना (बारहों महीने = साल) के गीत गाता हूँ। चैत-बैसाख (साल के) पहिले महीने हैं...।

२ जागर्ति (प्रभाती)

बीजी जावा, बीजी जावा हे खोली को गणेश !
बीजी जावा, बीजी जावा हे मोरी को नारैण !
बीजी जावा, बीजी जावा हे खतरी को खैंडो !
बीजी जावा, बीजी जावा हे कुंती का पांडव !
उदैगिरि काँठ्यौं मा ह्वै गे उदंकारयौं !
बीजी जावा, बीजी हे नौ खंडी नरसिंह !

बीजी जावा, बीजी है, नौ खोली का नाग !

बीजी जावा, बीजी है वासुदेकी नाग !

हे सिंह पौर के गणेश जग जाओ। हे द्वार के नारायण जग जाओ। हे क्षेत्र पाल देव जग जाओ। हे कुन्ती के पुत्र पांडवो, हे पंचनाम देवताओ (गाँव के पंच रूपी देवताओ) हे नव खंडों के नृ-सिंहो (सिंह-सपूतो; इन्द्रियों के अधिपतियो), हे नौ घूमों (मोड़ों, चक्रों, ग्रंथियों) के नागो (शक्तियो), हे वासुकी नागो (मूल सृष्टि की शक्तियो) उदयगिरि काँठों (शृङ्गों) पर प्रकाश फूट गया है,जग जाओ...।

३ चाँछड़ (चाँचर)-चौंफोळु (फाग नृत्य गीत)

बौड़ी ऐन बौड़ी जी बारा मैंनों की बारा बसुंधरा !
रितु बौड़ी ऐ गैन ढाँई जसु फेरा। बौड़ी क ऐ गैन जी बसन्त पंचमी।
तब बौड़ी क ऐ गैन फूल संगराँद बारा फूलू मान कू फूल प्यारू ?
बारा फूलू मान कू फूल सरदार ? सेल सिरताज छ, रातू मखीमल।
जाई सुरमाड़ी छ, वू फूल गुलाब। नीगंदु बुराँस डोला-सी गच्छेँदु।
बौड़ी क ऐ गैन बैसाख बिखोत। बौड़ी क ऐ गैन जी पापड़ी त्योहार।
बौड़ी क ऐ गैन जी बूथल तमाश।
जौं दिसा ध्याणियों का मैंती ह्वला ग्वीनी !
तौं दिसा ध्याणी मैतु जाली देसु, नि मैतणी फ्योंली देलीउँ जाली।

बारह महीनों की पृथ्वी की शोभा फिर फिर कर आती है। घेरे में घूम-घूम कर बैल जिस तरह नाज (अनाज) रौंदते समय फिर फिर कर चक्कर लगाते आते हैं उसी तरह रितुएँ (सूर्य सृष्टि के) चारों ओर घूमती आती हैं। फूल-संक्राति फिर आई (चैत की संक्राति से कन्याएँ प्रातः काल उठ कर देहरियों पर फूल बिखेर जाती हैं पूरे महीने यह क्रिया चलती है। इस चैत की संक्रान्ति को 'फूल्या संग्राँद' कहते हैं)। बारह (महीनों के) फूलों में कौन प्यारा है ? कौन सब का सरदार है ? पिलाई लिए 'सिरताज' खड़ा है, 'मखमली' में कुछ मँजीठी ललाई है,

जई की भीनी सुगंधि है, वह गुलाब भी खिला है। बुराँस दुलहिन के (लाल सजे) डोले की तरह खिला है पर गंध-हीन है। वैसाख महीना भी फिर कर आ गया है। हे सखियो (खीनी,गुइयाँ,गुथी हुई स्नेही), जिन जिन दिशाओं में धेवतियों (दुहिताओं) के देश में 'मैती' (स्नेही मातृगृही, मइहरी) होंगे, उन-उन दिशाओं को दुहिताएँ जावेंगी। जिस 'फ्यूँली' (पीला फूल ; स्त्री का नाम) का मायका नहीं है वह (इन दिनों) द्वार-द्वार की देहरी पर जावेगी। (वसंत में खेतों की मुँडेरों पर खिलने वाला चटकीले पीले रंग का फूल फ्यूँली है। इसे चुन कर कन्याएँ भोर ही देहरियों पर डाल जाती हैं।)

४ बारह मास्या वर्साती

भादों की अँधेरी झका झोर, ना बास,ना बास पापी मोर !
ग्वरू की मूरली तू त बाज, भैंस्यूँ की घाँडयौं न डाँडो गाज !
आँसुन चादरी मेरी रूझ, तूम तैं स्वामी जी कनी सूझ !
बाज्यौ ती बाज्यौ ती बाज्यौ डंका, सीता हर लीगे रावण लंका !
ना बास, ना बास पापी मोर, भादों की अँधेरी झका झोर !

भादौं का यह घनघोर अंधकार ही क्या कम है, ओ पापी मोर तू क्यों बास (केका सुना) रहा है ? गाय हेरने वालों (ग्वालों, ग्वैरो) की मुरली तू तो बजती ही रही, तेरी तूती बोल रही है। भैंसों के गले की 'घाँडियों' (घंटियों) की ('घणमणाट') ध्वनि पर्वतों से प्रतिध्वनित हो रही है। आँसुओं से मेरी ओढ़नी (चादरी, चुनरी) रूझ (भीग) गई है। ओ मेरे स्वामी तुम्हें (यह) कैसी सूझी (जो तुम इस वर्षांत में भी घर नहीं लौटे)। मेघों के डंके बज रहे हैं (घुमड़ घुमड़ कर आक्रमण करना चाहते हैं, भावों से हृदय भर गया है) सीता को रावण लंका में हर ले गया है। भादौं की घटाटोप अँधेरी है, ओ पापी मोर ! (क्यों बोल रहा है) न बोल, न बोल !

५ चौंफोला (नृत्य गीत, प्रश्नोत्तर)

डाँखरि द्वरलि, तैं वाँकी राँवाँई, डाँखरि द्वरलि !
राँवाँई ना जा तू राँवाई ना जा,
तेरी मामी हैंसाड़ रणू, डाँखरि द्वरलि !
तैंई पाली पछौंउ रणू, डाँखरि द्वरलि !
डाँखर्यूँ कऽतल होली, डाँखरि द्वरलि !
तू येकू येकु तो छऽई, डाँखरि द्वरलि !
मैं जाँदू रँवाँई आमा, डाँखरि द्वरलि !
काल का डस्याणा ना जा, डाँखरि द्वरलि ।
बैरी का बँदाँण ना जा, डाँखरि द्वरलि !
'मैं जाँदू रँवाँई आम' डाँखरि द्वरलि !
दऽरोलो ना होई रणू, डाँखरि द्वरलि !
सिंहणी सपूत छई, डाँखरि द्वरलि !
भड़ू को बऽचणो रणू, डाँखरि द्वरलि !
होंदो दुई दिनू रणू, डाँखरि द्वरलि !
मरणू अवसिहिं होण, डाँखरि द्वरलि !
जब जग जलम लीने, डाँखरि द्वरलि !

(जहाँ) प्राणों के खून की प्यासी तीखी कटारें (डायनें) पीछे लगी रहती हैं तू उस दुष्ट रँवाँई (देश का नाम) क्यों जाता है ? डायनें पीछे लगेंगी (द्वरलि) कटारें बजेंगी, हे मेरे रणू तू वहाँ मत जा। फिर (छल छद्म भी वहाँ कम नहीं चलते) वहाँ कुटिल (रहस्यमय भेद भरी) हँसी हँसनेवाली तुम्हारी मामी रहती है। उस पश्चिमी पाली (पाँत, पंक्ति, गाँव) में कटारें गरज कर पीछा करती हैं। (अभी अभी की बात भूल गये) तुम तो (मेरे) एक मात्र (एकलौते) बेटे हो। आगे पीछे कोई नहीं है तुम उस (जहरीले) देश न जाओ !

द्वरली रहें कटारें (घूरती रहें आँखें, होती रहें खून खराबियाँ) मैं

रँवाँई जा कर ही रहूँगा !

काल के बिछौने (डस्याणा) क्यों जा रहे हो ? बैरी के बंधन (फंदे) में क्यों पड़ रहे हो ? कटारें (डायनें) पीछा करेंगी, तुम मारे जाओगे !

तुम कुछ भी कहो, मैं जा के रहूँगा ।

कटारें पीछा करेंगी । तुम शराबी न होना । वहाँ जादूगरनियां और कटार से खून कर देने वाली डाकिनियों से बचना । वे पीछे लग जाती हैं । प्राण ले कर ही छोड़ती हैं ।' तू सिंहिनी का सपूत है । वीरों (भटों) का जीवन ही कितना होता है । दो दिन का !

जिस ने संसार में जन्म ले लिया है वह मरेगा भी अवश्य ही तब मैं चिन्ता क्यों करूँ !

६ कृष्ण–लीला

अ

जा मेरा कान्हा, भैंसियूं दूह्याल, हे मेरा, गौं को औडाट सुण्याल !
दूदण कू बुलौंदी त्वे थे गुपाल, जा मेरा कान्हा, भैंसियूँ दुह्याल !
हे मेरा बालम छाँछ छोल्याल, भट पट कर तौं भैरौं भोट्याल !
देर ह्वै गे कन्हैया माखन खै याल, ग्वैर छोरा बोदा बौण चल्याल !
चल भुला क्रिस्न मुरली धौर्याल, चल भुला क्रिस्न दौंखी पैरियाल !
लाठी भी हाथू लियाल, गोपी खड़ी दोब देखियाल !
गौऊ लि जौला जमुना किनारा, दीन दोफरी ह्वणा घर सूना सारा,
तब क्रिस्न बंसी बजै गोरू बुलैं, बंसी सुणी लोक समभला होणू खेलं !
और ग्वैर छोरा हम लुकी लूकी जौला, नौण चोरी तब देख अभी लौला !

आ

खेल गेंदूवा, खेल गेंदूवा, कनो खेलदो गेदूँवा चाँद जनू वाँ ।
चाँदी न मढ्यूँ छ रमा सोना का घुँघर,
छुम छुम बाजद कनो, चमचम सुन्दर !

इ

हम नी जाणदा तुम्हारी कख गै चादरी स्या न्यारी
बगै लीगे बीं तै या त जमुना धारी,
या त गौन चबैले वा चादरी,
बोल बोल बोल क्या करन है बनवारी ?

जा मेरे (लाड़ले) कन्हैया भैंसों को दुहले। हे मेरे (प्रिय) गोपाल गायों का रंभाना सुन। दुहे जाने के लिये वे उत्सुक हैं। तुम्हें बुला रही हैं। हे मेरे दुलारे दही विलो (मथ) कर छाँछ (मट्ठा) तैय्यार कर लो। जल्दी ही बँधी बेढों को छानी से बाहर कर दो। बड़ी देर हो गई है: जल्दी से मक्खन खालो। गो रक्षक गोपालक छोहरे (छोकड़े) बन चलने की जल्दी गुहार रहे हैं। चलो भइय्या कृष्ण मुरली साथ रख लो, (मँग-छाल; पट छाल की बनी) दौंखी (कंबल) पहिन लो। लकुटी भी ले लो। गोपी तुम्हारी ताक में छिपी खड़ी है उसे भी देख लो, गायों को यमुना किनारे ले चलेंगे। मध्यान्ह दुपहरी को जब सारे घर सुनसान पड़े हुए होंगे तब तुम बाँसुरी बजा कर गायों को बुला लेना। बंसी सुन कर लोग समझेंगे खेल में ग्वाले मस्त हैं। और इधर हम सब ग्वाल लुक छिप कर घरों में पहुँच जायेंगे। तनिक सी देर में मक्खन उड़ा लावेंगे।

आ

गेंद खेला जा रहा है। खेलो, खेलो, खेले जाओ। वह चन्द्र जैसा (कृष्ण) कैसा अच्छा खेल रहा है ! वह रुपहली शोभा से अच्छादित है। खेलते समय तेजी से चलते पावों में सुवर्ण के रमणीय घुँघरू छम-छम कैसे सुन्दर बज रहे हैं !

इ

(कृष्ण को छितरी गायों को बटोरने भेज दिया गया। इधर ग्वालों ने उन की कम्बल लुका दी। लौटने पर कृष्ण कम्बल ढूँढने लगते हैं। न पा कर ग्वालों से पूछते हैं तुम ने भी देखी मेरी कम्बल ? उत्तर में एक

कहता है--) हम ने नहीं देखी तुम्हारी वह सुन्दर चादर हम ने तो नहीं देखी। (दूसरा कहता है) उसे जमुना की धारा बहा ले गई (या) (तीसरा कहता है) गाय उसे खा गई है।

७ हास परिहास

मोती ढाँगो (बूढ़ा मोती बैल)

सावासी मेरा मोती ढाँगा !
खल्याणी कु दाँदु, खल्याणी कु दाँदु, हलसुंग्गी देखी क ढाँगो,
लमसट्ट ह्वै जाँद, सावासी मेरा मोती ढाँगा !
छम के तु जाल, छम के तु जाल, कलोड्य् देखी क ढाँगा,
ढौंडा देंदू फाल सावासी मेरी मोती ढाँगा !
कपड़ा कुमर, कपड़ा कुमर, भैर नी औंदो ढाँगो गरुड़ की डौर !
सावासा मेरी मोती ढाँगा !
छोली जाली हींग, छोली जाली हींग, ओबरा बाँध्यूँ होलू ढाँगा,
पाँडा तै कू सींग; सावासा मेरा मोती ढाँगा !
खल्याणी कु दाँदु, खल्याणी कु दाँदु, हल की बगत ढाँगो,
खस्स रड़ी जाँदु; सावास मेरी मोती ढाँगा !
ताल रींगी हौत, ताल रींगी हौत, हल जनु लालू ढाँगा,
सारू तै कू भौत, सावासी मेरी मोती ढाँगा !
बूती जाली मेथी, बूती जाली मेथी, मोती ढाँगो बच्यूँ रालो,
कुटला न करला खेती, सावासी मेरी मोती ढाँगा !
बंदूक को गज, बंदूक को गज, मोती ढाँगो बच्यूँ रालो,
चौक को सज; सावासी मेरा मोती ढाँगा !
मारी जाली माँख, मारी जाली माँख, भली भली गौड्य् देखी क,
रँगतौंदो आँख, सावासी मेरा मोती ढाँगा !
उपाड़ी त खौड़, उपाड़ी त खौड़, मोती की जोड़ी कू लालो मल्या बौड़ !
सावास मेरे बूढ़े (ढाँचे भर रहे हुए) मोती बैल। खलिहान सामने

के लिए कंधे हैं, खलिहान के लिये ही ये कंधे हैं पर बूढ़ा मोती तो हलसुगी (हल की लाट) को देख कर ही भूमि में लोट जाता है। शाबास मेरे बूढ़े मोती! मछली पकड़ने के लिये जल में जाल फेंका गया। वह भी मछलियों को उतने वेग से नहीं टूटता जितने वेग से कलोरियो (तरुण गायों) पर भीटे फाँद कर मोती टूट पड़ता है सावास मेरे बूढ़े मोती! काँटों से कपड़े चिर-फट जाते हैं। अच्छे कपड़े पहिने लोग डर से उधर नहीं जाते। इस भाँति गरुड़ के डर से (कहीं नोच न लिया जाऊँ सोच कर) घर से बाहर नहीं निकलता। सावास मेरे बूढ़े मोती!

तनिक सी हींग बघारे के लिए घोली तो सुगंधि धूम-लहरें घुमड़ाती हुई जाती है आकाश की ओर। छोटा-सा मोती निचली मंज़िल(ओवरी) में बँधा है किन्तु उस के घूम-घुमड़े बड़े पैने सींग पाँडे (ऊपर की मंज़िल) तक पहुँच जाते हैं। सावास बूढ़े मोती! खलिहान खनने के लिये कंधे हैं पर मोती तो जोतते ही पाँव रड़ादेता है सावास बूढ़े मोती! ताल में जिस तरह आवर्त घूमता है उसी तरह घूमते हुई मोती भी पृथ्वी पर चलता है। हल (अच्छा-बुरा) जैसा भी लगावे पर मोती के लिऐ काम बहुत है। काम से जी चुराने की एक से एक युक्तियाँ मोती को आती हैं। सावास मेरे बूढ़े मोती। मेथी बूतने की बात आ गई है। मोती बचा रहे। कुटले से ही कर खेती कर ला जावेगी। सावास मेरे बूढ़े मोती। बंदूक के साथ उसे साफ करने वाला गज भी जुड़ा जिस तरह भला लगता है उसी तरह आँगन के साथ (खूँटे पर बधा) बूढ़ा मोती भी शोभा देता है। मोती बचा रहा तो आँगन को लाभ है। सावास मेरे बूढ़े मोती (जंगली हिरनी को देख कर शिकारी की आँखें ललचा जाती हैं वह मारी जाती है।) अच्छी अच्छी गायों को मोती की रागारुण ललचाई आँखें उसी तरह घूम घूम कर देखती है जैसे कि हिरनी को शिकारी देखता है। सावास मेरे बूढ़े मोती खेतों का झाड़ उपाड़ लिया गया। हल चलाने के लिए मोती की जोड़ी चाहिए। जोड़ी के लिए मल्या (स्थान विशेष) के नये बछड़े खरीद लाये जायँ। सावास

मेरे बूढ़े मोती !

व्यतिक्रम

मीन खौणी मीन, मीनखणी मीन, डोम न जँदेउ पैर लिने उगटात का दीन ! किनगोड़ो की काँडी, किन गोड़ी की काँडी, डोम न जदेउ पैर लिने निपाणी डाँडी, वाह रे डोम, वाह रे डोम ! बाँटी जाला मेवा, बाँटी जाला मेवा, डोम करला सध्या बिट्ठ करला सेवा, वाह रे डोम, वाह रे डोम ! पैटी जाली बरात, पैटी जाली बरात, डोम संध्या करन खोजत बरात, मारी जाली बरछी, मारी जाली बरछी, आचमनि भी कनीछ, भट्ट खोजा करछी वाह रे डोम, वाह रे डोम । घोटी जाली रैठी, घोटी जाली रैठी, डोम सध्या करनू कू कूड़ा माँग ! वाह रे डोम, वाह रे डोम ! काटी जाली तूण, काटी जाली तोण, नि बोलनो बिट्ठ तुम न, ल्या रे डोमू लोण ? काँगली का थाँधा, काँगली का थाँधा, डोम करला हवन, बिट्ठ करला सेवा !

(दूसरे पेड़ पौधों की जड़ों के आस पास की मिट्टी गोड़ी जाती है तो वे लह-लहाने लगते हैं किन्तु मीन के आस पास गोडाई हुई नहीं कि वह नष्ट हो जाती है) मीन गोडी गई । मीन गोडी गई । डोम ने जनेऊ पहन लिया है उस के नष्ट होने के दिन आ गये हैं । त्रिशूल की तरह किन- गोड़ के कंटक होते हैं सरसता उन में कहाँ । दुखदाई जल रहित पर्वत पर रहने वाले डोम ने जनेऊ पहिना है । वाह रे डोम, वाह रे डोम ! मेवे बाँटेंगे, मेवे बाँटेगे । डोम सध्या करेंगे, सवर्ण उनकी सेवा करेंगे । उलटी गंगा बहेगी । वाह रे डोम ! वाह रे डोम ! बरात चलने की तय्यारी हो रही है, बारात चलने की तैय्यारी हो रही है । डोम संध्या करने के लिए परात खोज रहा है । बरछी मारी जावेगी बरछी मारी जावेगी और आचमनी भी कैसी है ? जल्दी से करछी ले आओ (समझ में आ जावेगी) वाह रे डोम, वाह रे डोम । घोट घोट कर रायता बनाया जाय; घोट घोट कर रायता बनाया जाय ।

संध्या करने के लिए डोम मकान की छत के ऊपर (अथवा कूड़े-करकट के ढेर पर) बैठा है।) वाह रे डोम, वाह रे डोम । तून (पेड़ विशेष) काटी जावेगी, तून काटी जावेगी, सवर्णों ! तुम अब यह कहना छोड़ दो 'ला रे डोम नमक लो !' कंधों के बाँधे कंधों के बाँधे, डोम अब हवन करेंगे। बूढ़े मरे बैलों को उठाने का काम अब सवर्ण करेंगे ! वाह रे डोम, वाह रे डोम !

६ सुख-दुख

(घसेरी की व्यथा)

बल्दू की-सी फाट हिटाई, लगीं तेरी घास--कटाई,
पर कुजाणी कख उड्यूं च छोरी तेरो पराणी !
हाय ! हरायूँ च छुची मुखड़ी को पाणी !
तेरा पराणी की हाय गाजणी च खोलू माँझ.
लौटणी च हा! हा !! पुन्यौणी च भौंण आज !
है सकदो बाँट लेंदो, तेरो खुद आधा आज !

हल लगाते समय बैल जिस प्रकार फाट पर बराबर ठीक चलते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार घास काटने में तेरे हाँथ लगे हैं किन्तु तेरे प्राण न जाने कहाँ हैं ! तेरे मुँह का पानी उड़ा हुआ है। तेरे प्राणों की हाय, पहाड़ों में प्रतिध्वनित हो कर गूँज रही है। वह प्रति ध्वनि 'हा ! हा !' खा रही है। दुख यदि बंट सकता तो मैं तेरा आधा दुख ले लेता (लेती) ।

१० मंजु

छज्जा का किनारा बैठि मंजु हे यकुली रूणि तू !
झड़ बदलि-सी रुण झुणै, मंजु हे रूणी किलै तू ?
जौंल-सी बुबुती आँखी न्वै न्वै उरयाई गैन हे !
दिवा जसी जोत मेरी मंजु हे बुझणी किलै तू !
कुमाली-सी दाणा मेरी मंजु हे मुरझौणी किलै तू ?

कदलौंदि-सी घुघुति मेरी मंजु है टपठ्यौणी किलै तू !

बकुली चाखुली-सि मेरी मंजु है रिटणी किलै तू ?

छज्जे के किनारे अकेली बैठी हे मंजु तू क्यों रो रही ? बर्षा के मेघों की तरह झड़ी लगाए हे मंजु तू क्यों रो रही है ? घुघुती (फाख्ता) की दो आँखों जैसी लाल और बड़ी, तेरी रो रो कर सूझी हुई आँखें हो गई हैं ? हे दीप जैसी मेरी ज्योति तू मंद हो कर क्यों बुझ रही है ? कुमाली (पीले हरे रंग का पतंगा, एक बूटी) के-से अधखिले बूटे की भाँति तू कुम्हलाने लगी है। आह मेरी दुखिनी मंजु तू घुघुती की तरह क्यों छटपटाती है ? तू एकाकिनी विहंगिनी की भाँति अकुलाई क्यों फेर (व्यथित चक्कर काट) रही है ? हे मेरी मंजु तू क्यों विकल है ?

११ झाड़ खंडे

उन्मो आदेस गुरू कु जुवार, विद्या माता कू निमस्कार

वे बुत माता, वे बुत पिता, तीन लोक तारणे

ये सुरल आणे, गौर्जा ल छाँणे

बई-बबून पईन घाउ, रछ्या कर श्री गुरू गोर्क राउ

हंसन देषे तुमारे नाउ

आप गुरू दाता तारौ, ग्यान षड़क ले काल मारौ

माथो मारिक स्मलां जूहा, ठकिराणी म्साणा कि छाया

तू रे कणे क्या लेण आई, ?

औंदि डैकणे घालौं पाताल, तोई देऊँ रे डैकणे वजूर की ताल।

ॐ नमो आदेस, गुरू की जुहार (करता हूँ), विद्या माता को नमस्कार है; गौरी ने जिस की शोध की, इस स्वर से (नाद के योग से) जो समीप (खिंच) आया, सब विद्याओं के घर उस ॐ स्वरूप, निराकार माता-पिता वाले तथा तीन लोक के उद्धारक उस आदि गुरु (निर्विकार) की जुहार करता हूँ। माता-पिता पर विपत्ति की चोटें आई हैं, हे श्री गुरु गोरख राव रक्षा कीजिए। हंस (मुक्त आत्माएँ) आप का दर्शन

करते (करती) हैं। आप के स्वरूप को पहिचानते हैं। काल उत्पीड़न कर रहा है। आदि डाकिनी माया (तू क्यों, क्या लेने) नजदीक आई है? (हे गुरु) इस अबला ठकुराइन से रक्षा कीजिए! ज्ञान-खड्ग से काल का संघार कर मेरी रक्षा कर लीजिए। या लेने तू समीप आई है! रे डाकिनो आ तो सही वज्र की ताल (नाद की चोट) दे कर तुझे पाताल पठा दूँगा।

१२ ढोल

बन्मो आदेस, माता पिता गुरु देवता कौं आदेस
रण कू दली ठोकत ताल, फुट-फुट रे बाबा बजर-सी ताल
पूड़ नी फुटे डोर नी घुले मंत्र नी चले
दैणा नरसी बाबा हणमान, तेरी आण पड़े परथ में
जत घोलु, सत घोलु, कंकणी खोलु
मुँदड़े खोलु, हार घोलु, डोर घोलु
तामा रोदन घोलु, कोन्ती का सत न घोलु
सीता का सत न घोलु, दुरपती का घाडा न घोलु
नकोल की छड़ो न घोलु, सहदेव की छड़ी न घोलु
अर्जन का धनक न घोलु, भीम की गजा न घोलु
दुद्ध्या की बाचा न खोलु. मंत्र नी चले अंजनी का पुत्र!
नरसी बीर तेरी आण पड़े, पंच पंडव तेरी आण पड़े!

ॐ नमो माता पिता गुरु देवता का आदेस। रण को दलने वाला (वीर इस ढोल पर) ताल ठोकता है। वज्र जैसा ताल है, हे बाबा यह पूड़ फूटे टूटे)। पूड़ नहीं फूटा, डोर नहीं खुली, मंत्त नहीं चला। दाहिने नरसिंह बाबा तुम्हारी आन पूड़ में पड़े। जतसे खोलूं, सत से खोलूँ, (ढोल की) कंकणी को खोलूं। तामें के ढाँचे को खोलूं। कुंती के सत से खोलूं। सीता के सत से खोलूं। द्रौपदी के सत से खोलूं। नकुल की छड़ी से खोलूं, सहदेव की छड़ी से खोलूं। अर्जुन के धनुष से खोलूं

भीम की गदा से खोलूं, दूद्ध्या बाबा की बाणी से खोलूं। नरसिंह वीर तेरी आन पड़े। पाँच पंडवो तुम्हारी आन पड़े। वैरी का ढोल खुल जाय टूट जाय। टिप्पणी--उत्तराखंड में बदरिकाश्रम से २० मील दक्षिण की ओर ज्योतिर्मठ है ; जिस का प्राचीन महाकाव्यों के युग से ही महत्व रहा है। ईसा पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी से ले कर ईसा के बाद की पाँचवीं, छठी शताब्दी तक यह बौद्ध-शैव-शाक्त धर्मों का प्रधान केन्द्र रहा। तिब्बत भोट से इस का संबंध रहा है सातवीं आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने यहाँ ज्योतिर्पीठ की पुनः स्थापना की। सिद्ध योगी, नाथ, संत तथा वैष्णव परंपराओं ने भी इस केन्द्र को अपनाया। गढ़वाल का राजधानी भी यह स्थान रहा है। गढ़वाल के मंत्र गीतों में 'दूध्यावाबा' का नाम ज्योतिर्मठ की अग्नि शिखाओं के रक्षपाल योगी के रूप में आता है। "की च्याला रे नाली काँठयों पर, दूध्या गुरू रे रैंद जोशीमठ गूदड़ी का च्याल, जैठयौं को जग्वाल" (कोई चेला डाँडयों काँठयों (शैल-शिखरों) की ओर बढ़ो। जहाँ कि जोशी मठ में अग्नि शिखाओं (जैठयौं) का रक्षक क्षेत्रपाल दूध्यागुरू रहता है)। जोशीमठ में नरसिंह का मंदिर है जिस का विशेष महत्व माना जाता है; मूर्ति का एक हाथ अत्यत क्षीण है। जन विश्वास है जिस दिन वह हाथ टूट जावेगा उस दिन प्रलय हो जावेगी। इस नरसिंह के साथ भगवान के नरसिंह अवतार भर का संबंध नहीं है बल्कि नरसिंह योगी का भी संबंध है। मंत्र गीतों में नरसिंह योगी का उल्लेख तुरुकुणी के पुत्र मैमंदा वीर के साथ 'नरसी वीर' के रूप में होता है। और नरसी वीर को भसममती का पुत्र बताया जाता है। "झूठा जाय, भसममती का पुत्र नरसी तेरी आन पड़े, तुरुखणी का पुत्र मैमंदा वीर तेरी आन पड़े! (यदि यह मंत्र झूठा हो तो हे भसममती के पुत्र नरसी वीर तेरी आन पड़े। हे तुरुखड़ी के पुत्र मैमंदा वीर तेरी आन पड़े!)

१३ प्रभाव मोचन मंत्र

उनमो आदेस गुरु कौ आदेस, बाबौडी कौ आदेस
जोगी कौ आदेस अंचला नात सबु कौ आदेस
काउर देस ते आय माहा सवय, माहा घोर
डैणी जोगणी को पेलवार, नाटक चेटक को फेरवार
मण भर षंतड़ी, मण भर गोदड़ी, लुवा की टोपी, बजर की कथा
हरप खोलु, पूरब षोलु लूंणी डोमणी कौ हकार खोलु,
राड़ी वामणी को हकार खोलू, खसणी को जैकार खोलू
बरमा को मुंठी हकार षोलू, भूत प्रेत की वाण खोलू
वैरागणी की बद कपाली उखेलू, पठाण को मंमैदा उषेलू
जोगी को नरसी उषेलू, भाट को कलुबू उषेलू
डूम को अघोरनाथ भैरो उषेलू, सन्यासी को कछिया उषेलू
हाक टेक लगै तो सकती पाताल जावै,
हीर्र हीर्र हीर्र होरी हीर्र फटे सुवाह, फुर मंत्र ईशुरो वाचः !

ईश्वर (शिव) का कहा हुआ (सावर) मंत्र सत्य हो। (इस मंत्र) 'हीर्र हीर्र हीर्र होर्र होर्र फट स्वाहा' के प्रभाव से मैं, सन्यासियों के 'कछिया', डोमों के अघोरनाथ (भैरव), भाटों के (काला कलुवा) कलुवे, योगियों के नरसिंह, पठानों के मैमंदा (तुरकुणी के पुत्र) बीर, वैरागियों की भद्रकाली, ब्रह्मा (के उपासकों तथा ब्रह्म देश से आये उपासकों के) मुंठो हंकार (मंत्र प्रभाव), लूणी (गोरष की शिष्या) राड़ी ब्राह्मणी के हंकार (मंत्रों के प्रभाव), भूत प्रेत की वन, खसणी के जैकार और कील बीजक मंत्रों के प्रभाव को नष्ट कर सकने में समर्थ हो गया हूँ (इन का प्रभाव मुझ पर नहीं, इन के प्रभाव से लोगों को भी मुक्त कर सकता हूँ) मन भर की खंता (कंथा-झोली), मन भर की गुदड़ी, लोहे की टोपी और वज्र की काया मेरे पास है। दाहिणी योगिनी की सिद्धि का रक्षक, भूत प्रेत डाकिनियों, काबुल देश से आये महाशाकों और महा-

और डायनों के खेलों से लोगों की रक्षा कर सकूंगा। ॐकार स्वरूप को नमस्कार है। गुरू को नमस्कार है। 'वावौड़ी' को नमस्कार है, योगी को नमस्कार है, अचलनाथ (नाथ पंथी योगी) को नमस्कार है। सब महान् दिव्य शक्तियों को नमस्कार है।

१४ भैरों

आदेसू आदेसू लगैल्यौ तू,
जुआरो लगैल्यो तू शिबराम जुयाल !
जुआरो लगैल्यो राजा शंकर मणि डोभाल !
आदेसू लगै ल्यो बीर बजरंगी,
आदेसू लगैल्यौ गुरू त्वै वै लामा गुरू को
हे वीर वीं धौल्या ओड्यारी रेल्यो सुणी लेई मेरा बाबा !
हे वीर नाक नी छ मुख बीर, जरा सूणी
जैं धौल्या ओड्यारी होली जै कार चिलम वीर
आदेश लगाये वीर तिन वौ लामा गुरू को वीर
धौल्या ओड्यारी होली तेरी छुंणक्याली दाथड़ी
है मैंना है इ गैने बेटा तेरा ध्यान
आदेश लग्याये बीर जब तिन वीं धौल्या ओड्यारो
धौल्या ओड्यार पर त्वै कू नींद पड़ी छ
नाद बुद भैरब है ल्यौ संग मा चलल्यो वीर
वैं चूल कठूड़ बिट्टी तेरी मौसी धौल्यो ओड्यारी बीर
नजर लगाये बीर तिन काली गंगा तीर धौल्या ओड्यारी
तिन नजर लगाये बीर वी मैल्ली रँवाँई
तिल नजर लगाये वीर वीं मुल्ली रँवाँई
मौरू मरछ्याण की तणस्याल लगीं च बीर
तेरा चद्वापीफल बाबा डौंडया नरसिंह बाबा !

तू आदेस लगावेगा। शिवराम जुयाल, शंकरमणि डोभाल को

आदेश लगावेगा बजरंगी बीर का आदेस लगायेगा। लामा गुरू का आदेश लगावेगा। हे बीर (तू) धौल्या ओड्यारी में रहता है (धौली गुफा, अलकनंदा के तीर चटवा पीपल के दाहिने तट पर एक चट्टान पर एक गुफा है, अलकनंदा को गढ़वाल में धौली (धवली-श्वेत जल वाली) कहते हैं। न तुम्हारा नाक है न तुम्हारा मुख है। तुम्हारी जै जै कार वाली चिलम धौल्या ओड्यारी में है। तुम्हारी घुँघरुओं वाली दराती इसी में है। इसी गुफा में तुम्हें सुख मिलता है। उस में तुम छ महीने की समाधि लगाते हो। तुम्हारी मौसी (रियासत टिहरी गढ़वाल के) चूल कठूड़ गाँव) से (तुम्हें मना कर अपने यहाँ ले जाने) आई है (कहती है)-'नाद बुद्ध भैरव हो तो साथ में चलो। तुम ने धौली के तीर की इस गुफा को ही अपना बासा बना लिया है। किन्तु उस मल्ली तल्ली रँवाई को भी (फिर) देख आओ (वहाँ) तुम ने अपनी दृष्टि लगाई है (अपने सिद्धान्तों का प्रसार किया है) हे डौंड्या नरसिंह बाबा तुम्हारे च्टुवा पीपल में (तो) मौरू (नाम की) मरछूयाणी की तणस्याल लगी हुई है। (नाथ योगियों के केन्द्र भारत के अंतर्गत कई स्थानों पर है। उत्तराखंड में लैन्सडौन, श्रीनगर, चटवापीपल, पीपलकोटी जोशीमठ्ठ, केदारनाथ, काँडा, जसपुर, थान, कमेड़ा, सेम, रवाँई, कठूड़, वाराहाट आदि स्थानों के आस पास उन के केन्द्र रहे और अब भी हैं। गढ़वाल के इतिहास में सत्यनाथ, सहीनाथ, प्रभावनाथ, बालकनाथ, गंभीरनाथ, मनोहरनाथ, सरस्वतीनाथ, दशमीनाथ, गंगानाथ, आदि योगियों का संबंध रहा है। शंकरमणि डोभाल तथा शिवराम जुयाल ऐतिहासिक व्यक्ति हैं: मेदिनीशाह (१६०१ ई १७१८) और फतेहशाह (१७१८ ई० १७४६) के राज्य काल के श्रीनगर गढ़वाल के शक्तिशाली कर्मचारियों तथा तांत्रिकों में से ये थे।

१५ गरुड़ासन

बोला बोला सगुन बोला, कैलासू मा रँदीन भोला शंभू रे नाथ!

भोला शंभू रे नाथ रौंदा, देखा दौं धुनी रमी च
तब त बोनी च देवी पारबती बोनी च
"हे मादेव जी, हे मादेव जी यकुला कैलास मा रैंगे
विष्णु तू त अपणा संग कू की चेला बणै देव ।"
दैण अंगा माल वे न गाड़े मैल की बातुली
मैल बातुली गुदड़ी का पेट राखे
गुदड़ी का पेट 'सूनी' और 'जम्बू' गरुड़ शोभनी
तरुण ह्वै भै बैण ह्वै गैना ।
जंबू का दिल माँग पाप ऐई ग्याय,हैक दिन
एक दिन मा इनो समय आये. जम्बू पूछण बैठगे
'सूनी लेदी सूनी एक बात बोदू मीत आज
सूनी बोनी च,'बोल बोल हेजंबू गरुड़ तू त आज क्या बात बोल दी'
जम्बू बोमू च सूण लेदी सूनी
"तू और मैं होय जौला पति-पतिवरता नारी"
हे जम्बू तेरो कुटलो-सी ठूंठ छ
तू और मैं होला भै-बैणों का नाता
बोलला ए जम्बू तेरा कंचौला-सी गौणा
जम्बू न द्वी नेतर छोड़ी याने सूनी का बोल्यान
वै का द्वी नेतर आज धरती मा पौड़ी गेन
डिगमिग ध्यान लग्यूं च सूनी को
मोतियों बोली की वीं न गर्भ समै दीने
अफू रौनक देश होई गैये वीं तैं कैलाशी मा छोड़ी दीने
सूनी गरुड़ी आज गर्भवंती रैगे
सूनी तेरा आज क्वै ह्वैलो दगड़्या ?
लगी ग्याये सूनी त्वै पाँचौं छयों मैना
सातौं आठौं मैना, दस्सों मैना लगी ग्याय
वै नीला कैलाश पर गरुड़ी बैठी छ

विष्णु रे मेख नी च मंदिर, ई एकली चकवी न
घास नी च पात लाखड़ी न पातड़ी
कनू कै की मी ए नीला आकाश पर घोल बणौलो !
सूनी मण-मण का नेत्र छोड़नी च
कख मिललू मीं कू जम्बू बोद, देखदौं नरैण !
करव मीललो मी कू जम्बू
तब गरुड़ी आज गाय जम्बू की खोज
सूनी चली गाय आज रौनक देश मा।
पिछाड़ी बगत वींन जम्बू पाई यालो।
मुण ले दी आज मेरा जम्बू गरुड़
"म्यार ज्यू त बोद चल वै नीला कैलाश जनै"
जनैं सूनी बोनी च तनै पीठ फरकौंद
जनै सूनी जाणीं च तनै पीठ फरकै दे
"सूनी मी नी औंदो सूनी तेरा वै नीला कैलाश !
नौ छूमी नारैण ह्वैलो भक्त को हितकारी ह्वैलो, दीन कू दयाल !
बोनी छ सूनी तू छै जम्बू आज रूठी
पैरू मा पोड़ी स्या त शरणांगत होये
आये गैयो जम्बू त नीला आकाश चली गैयो स्यौ त गौरा कुंड बे
वे नीला कैलाश मेश्रा नी मंदिर !
घास नी च खैड़ ए त घोल कै को करलो !
इनो ह्वाये नारैण अब तुमारी किरपा
वीं सूनी तैं लगी ग्यायो हैड प्वाट वेदन
सूनी ले दी मेरा हे जम्बू गरुड़
मेरा होली सूनी आज जम्बू की आतमा
मेरी होली सूनी आज बिष्णू की आतमा
दैणो होई जैन तेरो नौ लड़ जंदेऊ,
बारा मासा ह्वै ई गैन गर्भ वै, तू रौंद जम्बू वे जंगल

रौंनू छुऊं मींत केदार का खंड्ड,बदरी का खंड्ड
कनु कै की मीत सूणी लेवा सूनी लाखड़ी पातड़ी नी ए नीलाकाश
कख मील जम्बू मील स्वीली होण जम्बू,
आई जादी मेरी सूनी मेरी पंख झल्यौं माँग
नौ लड़्यौं जँद्देऊ वेन कौंद जऊँदैं द्वाल
जम्बू पीताम्बर धोती की आड़ मारी देवा
मेरी होली सूनी आज विष्णू की आतमा
पंखा झोल्यो माँग वींन बचा घाली याने
पैदा ह्वै ई गाये आये नौखंडी दुनिया
नेड़ा ऐजा तू आज नौखंडी देवता,
कंसू को हंता ह्वैल्यो मोहण
पंचनाम देवता वीजण लागी गैन
पंचनाम देवों को द्यौ ख्याड़ो होई ब्याय
वरा नेड्ड ऐला नौखारू देव्यौ
गोदड़ी को चेला तेर्‍यौ पूत नरसिंह
तब जौंद सूनी वे नीला कैलाश
सूनी ले मेरा हे बूढ़ा केदार
भक्तू को हितकारी ह्वैलो, दीनू को दयाल

मंगल कथा कहो, मंगल कथा कहो, कैलाश में धुनी रमाये भोले शंभूनाथ रहते हैं। पार्वती कहती हैं—आप कैलाश में अकेले ही हैं कोई चेला आप का नहीं है, अपने लिए कोई चेला बनाइये। बूढ़े जोगी ने दाहिनी जंघा से मैल की दो बत्तियाँ निकालीं और उन्हें गुदड़ी के अंदर छिपा दिया। समय आने पर इन दो बत्तियों ने सूनी गरुड़ी और जम्बू गरुड़ का रूप ले लिया। यौवन-श्री को प्राप्त होने पर जम्बू के मन में पाप आ गया। वह एक दिन सूनी से कहता है आज मैं एक बात कहता हूँ ? सूनी पूछती है—कहो कहो क्या कहना चाहते हो ? जम्बू कहता है—तुम हम पीत पत्नी हो जावें। सूनी कहती है—

'कुटले' की तरह तुम्हारी नाक है। 'कंचोल' की तरह टाँगें हैं। तुम्हारा मेरा भाई और बहिन का नाता है। सूनी की बातें सुन जम्बू ने दो नेत्र (जल विन्दु) छोड़ दिए। सूनी डगमगा रही है। सूनी का ध्यान लगा है। मोती समझ उन दो नेत्रों को वह अपने गर्भ में समा गई सूनी को नीले कैलाश पर ही छोड़, खिन्न मन जंबू रमणीय देशों की ओर चला गया। सूनी का गर्भ रह गया। कोई उस के साथ नहीं। पाँचवाँ महीना लगा, सातवाँ लगा, आठवाँ लगा, दशवाँ भी लग गया। उस नीले कैलाश पर गरुड़ी बैठी सोच रही है—मेख (मेघ) कील नहीं मंदिर नहीं, पात नही (पत्र नहीं) किस तरह इस नीले कैलाश पर घोल (घोंसला) बनाऊँगी? यह सोच कर सूनी भारी मन-मन के आँसू छोड़ रही है। हे भगवान्! जम्बू मुझे कहाँ मिलेगा, उसे कहाँ पा सकूँगी। वह जम्बू की खोज में चल पड़ी। रमणीक देश में जगह जगह धूम मच गई उसे जम्बू नहीं मिला। कठिन साधना के बाद अन्त में एक दिन वह जम्बू का पता पा सकी। सूनी कहती है—मन चाहे उस कैलाश की ओर चलो। जिधर सूनी बैठी है उधर जम्बू पीठ फेर लेता है। जिधर सूनी जाती है उधर ही पीठ कर लेता है। और कहता है—सूनी मैं नहीं आता सूनी उस कैलाश नहीं आता सूनी मिन्नतें करती है। क्षमा माँगती है। पाँव पड़ती है। जम्बू कैलास चलने के लिए तैयार हो जाता है। और दोनों गौरी कुंड पहुँचते हैं। घास पात लकड़ी की कमी है। कहाँ घर बने। मेरे प्रसव का समय आ गया है! बारह महीने पूरे होने को हैं मैं क्या करूँ? जम्बू कहता है—मेरी प्यारी सूनी मेरे पंखों की छोप में अंडे दो। सूनी ने अंडा दिया, जिससे नौ खंडी दुनिया पैदा हो गई। हे नौ खंडी देवताओ समीप आओ। कंस के हंता हे मोहन समीप आओ पंचनाम देवता (गणेश, सरस्वती शिव, विष्णु) उत्पन्न हो कर आँखें खोलने लगे। सूर्य्य उत्पन्न हो गया। देवियों नजदीक आओ। गुदड़ी का चेला तुम्हारा पूत नरसिंह उत्पन्न हो गया है, जब कि सूनी नीले कैलास गई। बूढ़े केदार सुन लो अबहें

तुम अकेले नहीं रह गये। तुम दीनों के रक्षक और भक्तों के हितकारी हो।

१६ निरंकार

मंगल बोला निरंकार, मंगल बोला ओ रमा !
मंगल बोला बूढ़ा केदार, जोगी बाबा रैदास चमार !
निरंकार से ह्वैयो धौं धौं कार,
धौं धौं कार से फुंकार, फुंकार से विष्णु !
जाल का सागरू मा गुसैं जी न सृष्टी रची देया।
जल का सागरू मा गुसैं जी न नाभी फैले द्याय।
नाभी से एक फूल कमल केसर होई गयो।
केसर कमल से चतुर्मुख बरमा,
विष्णु गुसैं जी न आज बरमा का पास दीने
चार रे बेद–जजुरवेद, रिषी वेद, साम वेद, अथर्व वेद
विष्णु रे उनी ह्वाला सौण की स्वाती, आज की राती
बरमा का पास दीन अठारा नक्षत्र, सुबेर पढ़द वेद
स्याम भूली जाँद, अंधेरा माँ कन के की पढ़द बेद
ब्रह्मा बोन् च चार बेद कन कै की कंठ या रौला
ब्रह्मा जी जब जौला समुद्र छाला पर गरुड़ को रथ आलो
चौंर गाय को रथ आलो, सुमेरु पर्वत आलो
तब त त्वै तैं वेदू कू पढ़ौलो, विष्णु न वे न
चंद-सूरज वे न कखराल्यौं धौरी देनी,
बरमा बाइस गैत्री चार वेद, अठारह पुराण
तेरा कंठ मा ऐई गैने, तू त बरमा रास्ता लैगी,
बरमा तू त उठो बरमा, गरुड़ का रास्ता ऐंदी,
पंचनाम देवतौं की गरुड़ मा सभा लगीं होली,
बूढ़ा केदार की हे विष्णु की जग्य वीरीं छ
सब कू न्यूत्यो देये वै न गुसाईं नी न्यूत्यो

बै जोगी को हमन जम्मा न्यू तो नी करणो,
स्यौत डमाणा खैं आँद, स्यौत जोगी इनो होयो होलो राय
नारद करद गंगा माई की सेवा, हे विष्णु बारा वर्ष पूरा ह्वै ंगैन
गंगा माई की सेवा करणू छ, तब बोलनू छ बरमा-
पैलो भक्त होलो कबीर, कमाल तब को भगत होलो ?
रैदास चमार, विष्णु की बारा वर्ष की
धूनी पूरी ह्वै गे, बारा वर्ष पूरा ह्वै गैन तब जाणू च विष्णु
गंगा माई पास, मीकू गंगा माई कुछ बचन देई
चली गाय रैदास चमार, रैदास चमार कुंडी बैठ्यूँ च,
चाम कसणू छ; तुम जाणा छया बरमा तुम गंगा माई की भेंट,
'मेरी भेंट कू गंगा माई कू देया', एक पैसा काख्यो वे ना
बरमा का पास देयो।
कनू कै की खोरी, मैं ये पैसा ली जौलो,
धर झिझड़ै की वैन जेव उंदें धरे
'मेरी भेंट कू गंगा माई हाथ पसारली
गंगा पैले बाच गाड़ली भेंट चढ़ाई
बाच नी गाड़ली भेंट वापस लेई आई'
चली गै बरमा तू गंगा माई का पास
पैले नहाई धोई छाला लगी गये
धाध मारे बै न गंगा न बाच नी आई
विष्णु नहाये धोये बरमा, अपणा घर आये
रैदास की भेंट भूलि गे बरमा,
बरमा आधा रस्ता मा आये, बरमा का आँखा फूटी गैने
गंगा माई जनै जाणू छ आँखा खुली जाँदन
तब जै क बरमा रैदास की भेंट याद ऐ गाय,
उठी गैयो बरमा गंगा माई पास
रैदास को नौं सुणे गंगा माई न बाच देई याले

भेंट दिंई च रैदास की तुम कू----
एक शोभनी कंगणा गाड्यौ गंगा माई न
बरमा माभ देई,'बरमा रे ये मेरी सदेणी तू रैदास देई',
बरमा को सरील लोभी मा ऐगे,
शोभणी कंगण छयो मेरी नौनी जुगत,
बरमा वे रस्ता नी आयो बरमा,
जै रस्ता रैदास को घर छयो,
यौ रस्ता छोड़ी थाय, हैका रस्ता आये
त्वै रस्ता मा रैदास खड़ो छयो,
जै रस्ता बरमा जाँद वे रस्ता रैदास खड़ो होई जाँद
बरमा वीं गंगा माई की सैंदाणी दिंई होली,
मी कू मेरा बरमा सैंदाणी दिंई होली।
बिखुनी दों भी बरमा; मो तेरा घर औंला
बिखुनी दों गंगा माई न मेरा घौर औण.
विष्णु जब सूणी लेई बूढ़ा बरमा,
सुबेर बीटी को गौंत वालो छोड्यों छ
कमेड़ा न वै की कोठी छर्पी होली,
आज मेरी कोठी पर गंगा माई न औण
सुणी लेदी अब मेरा बूढ़ा बरमा
संग मा चल लो तुमारो जल कुंड्यौं का हीत
बर नेड रोई गोदड़ी को चेला होलो
जांदी मेरा हीत नाल्यौं कांठ्यौं पर
स्वी चेल्या लैं जायाँ मी कू अखंड बभूत
बूढ़ा केदार आदि देवतौं न योगी लुआ का पिंजरा मा बन्द करी देय
जोगी चखुली बडी की उड़ी जाँद सब देवतौं की शक्ति तोड़ी द्याय।
निरंकार का मंगल गाओ,विष्णु और रमा को मंगल गाओ। बूढ़ा
केदार जोगी बाबा रैदास चमार का मंगल गाओ। निरंकार से अव्यक्त

नाद, अव्यक्तनाद से ॐ कार (फुंकार)ॐ कार से विष्णु की उत्पत्ति हुई। विष्णु ने सागरों में अपनी नाभी कैलाश। नाभी से केसर युक्त कमल पैदा हुआ। इस सर कमल से सप्त ज्वाला सहित चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। विष्णु ने ब्रह्मा को ऋक, यजु, साम, और अथर्व चार वेद दिए वैसे ही सावन अंधेरी रात थी। ब्रह्मा को अट्ठारह नक्षत्र दिये। सुबह (वह वेद) पढ़ता है तो शाम को भूल जाता है। अंधकार में किस तरह पढ़े। विष्णु ने कहा जब समुद्र के पास जा के पहुँचेगे, गरूड़ का रथ, चँवर गाय का रथ सुमेरु पर्वत आदि आवेंगे तब तुम्हें वेद पढ़ाऊँगा। विष्णु ने चन्द्र-सूरज बाहुओं के नीचे दे दिए। बाईस गायत्री, चार वेद अठारह पुराण ब्रह्मा के कंठस्थ हो गये। वहाँ से चलकर ब्रह्मा गरुड़ (गढ़वाल और अलमोड़ा की सरहद पर स्थान विशेष) की राह लगा। पंचनाम देवताओं की गरुड़ में सभा लगी हुई है। बूढ़े केदार ने किसी प्रकार का यज्ञ आरंभ किया हुआ था। सब को उस ने नेवता दिया गुसाईं को नहीं दिया। उस जोगी को हम ने बिलकुल नहीं बुलाया है। वह डोमों के घर खाना खा लेता है। नारद गंगा की सेवा करते हैं। बारह वर्ष हो गये (पर तपस्या सफल होती नज़र नहीं आती) नारद, ब्रह्मा से पूछते है– सब से बड़ा भक्त कौन है?' ब्रह्मा कहते हैं–पहले कबीर फिर कमाल। नारद ने आगे पूछा–तब किसी की गिनती होती है? तब रैदास की बारी आती है। ब्रह्मा ने उत्तर दिया और फिर ब्राह्मण गंगा और रैदास की कहनी सुनाई। बारह वर्ष की तपस्या समाप्त कर एक ब्राह्मण गंगा माई के पास जा राह में रैदास चमार का घर पड़ता था। रैदास चाम कस रहा था। ब्राह्मण को गंगा जी की ओर जाते देख एक चमड़े का टुकड़ा देकर उस ने कहा--गंगा माई को मेरी भेंट लेते जाओ। पर गगा माई पहिले बोले तो भेंट चढ़ाना। अन्यथा भेंट वापिस ले आना, ब्राह्मण झिझका। मन में सोचता है--'हे भाग्य में चमड़े का टुकड़ा कैसे ले जाऊँ'। किसी तरह भेंट लेकर वह आगे बढ़ा और गंगा के तीर आ गया उस ने गंगा में स्नान किया। नहा-धोकर

वंदना की। वंदना समाप्त कर घर की ओर चल देता है। आधे रास्ते तक पहुँचने पर उस को मालूम होने लगता है उस की आँखें बंद हुई जा रही हैं वह गंगा की ओर चलने लगता है तो उस की आँखें खुलने लगती हैं। अब उसे रैदास की भेंट चढ़ाने की याद आई। वह फिर गंगा के पास पहुँचता है। और गगा को पुकार कर रैदास की भेंट रैदास का नाम ले कर चढ़ाता है। गंगा ने भेंट ले ली और सहदानि रूप में रैदास के लिए सुवर्ण कंगण ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण के मन में लालच आ गया। वह उस राह घर नहीं आता" जिधर से रैदास का घर बीच में पड़ता था। उस ने दूसरी राह पकड़ी किन्तु वह जिधर भी गया-उसे रैदास राह में खड़ा दिखाई दिया। रैदास ने ब्राह्मण से पूछा गंगा माई ने मेरे लिए क्या दिया है ? क्या कहा है ?--ब्राह्मण ने कंगन दे दिया और बताया कि गंगा माई ने कहा हा 'मैं साँझ को तुम्हारे घर आऊँगी।" रैदास प्रसन्नता से अपना घर लीपने पोतने लगा। उस का घर उजली छुआई से दिपने लगा। ब्राह्मण के साथ में कुंडी का हीत (देवता) चलने लगा। वह श्रेष्ठ देवता निकट आया और गुदड़ी के लाल रैदास तथा उस के हीत का चेला हो गया। अखंड विभूति फैलाने के लिए उसे शैल शिखरों को भेज दिया गया। बूढ़े केदार आदि देवताओं ने उस पिंजड़े में बंद कर दिया। किन्तु पक्षी बन कर वह योगी उड़ गया उसने सब देवताओं की शक्ति मात कर दी।

— :*: —

१६ अनुभूति-अभिव्यक्ति

अनुभूति चेतना का विषय है, अभिव्यक्ति भाषा प्रयोग का। सत्य शिव और सुन्दर रस रूप आनन्द की व्यापक अनुभूति को परमात्मा की अनुभूति भी कहा जाता है। परमात्मा की अनुभूति रहस्य है, जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। किन्तु अनुभवी व्यक्ति, दूसरे समान धर्मा अनुभवी तक उस अनुभूति को भाषा संकेतों और अलंकार प्रतीकों अथवा अन्य साधनों द्वारा आसानी से पहुँचा सकता है। सामान्य समाज व्यवहार की भाषा को ही लाक्षणिक व्यंजनात्मक तथा अनुभूति जन्य विलक्षण अलंकारों से स्वतः वह शक्ति मिल जाती है जिसे सामाजिक जीवन का जीव तो एक अर्थ में या उटपटांग रूप में समझता है और अनुभवी व्यक्ति आध्यात्मिक अनुभूतियों के रूप में।

परमात्मा सर्व व्यापी है उस की कोई एक संज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि सभी संज्ञा उसी के आंशिक रूप हैं। इसलिए उस के लिये संज्ञा शब्दों से अधिक उपयुक्त सर्वनाम शब्द पड़ते हैं। किन्तु शब्दों में वे चाहे वे सर्वनाम ही शब्द क्यों न हों पूर्ण रूप आ नहीं सकता, क्योंकि शब्द सूक्ष्म से सूक्ष्म होने पर भी अपनी सीमाओं को लिये हैं।

किन्तु अंग से अंगी को लखाया जा सकता है। सीमाओं से ही असीम तक पहुँचा जाता है। इसलिये शब्दों द्वारा ही अनुभूतियों को भी व्यक्त किया जाता है। अनुभूतियाँ चाहे परमात्मा की हों चाहे आत्मा की, शब्दों से सूक्ष्म हैं इसलिए हृदय की चीज कहने लिखने में पूर्ण रूप से आ नहीं सकती। अस्तु कहने के ढंगों के लिये नये-नये रूपों की संभावना सदैव बनी रहती है।

रूप रेखाओं के सहारे आत्मा की अनुभूतियाँ समझना हमारे लिए

इस लिए आसान होता है कि हम उन से जन्म से ही परिचित होते जाते हैं। परमात्मा की अनुभूतियाँ इसलिये कठिन होती हैं कि उस के लिए साधना, चिन्तन मनन के अलावा सीमाओं के आवरण से ऊपर उठने की आवश्यकता होती है! जन्म से ही स्थूल आवरणों की जो पर्तें प्रतिक्षण हृदय पर पड़ती जाती हैं उन्हें तोड़ सकना आसान नहीं होता। जो ऐसा करते हैं उन की अनुभूतियों को दूसरे लोग, इसी भेद के कारण आसानी से सही रूप में नहीं समझ पाते। इस प्रकार रहस्य और छाया का अन्तर वास्तविक रूप में परमात्मा की अनुभूति और आत्मा की (मानवीय वासनाओं) की अनुभूतियों का अन्तर है। अभिव्यक्ति की शैलियाँ दोनो ही दशाओं में एक ही प्रकार भी हो सकती हैं और विभिन्न प्रकार की भी। परमात्मा की अनुभूतियों को सामाजिक व्यक्तियों के लिए भी उपयोगी बना देने की भावना से उन को व्यक्त करने में संज्ञाओं का (महान् विभूतियों के नामों का, उन के चरित्रों का) उपयोग किया जाता है और आत्मा की अनुभूतियों को व्यक्त करने में अनुभूतियों भर को प्रधानता देने के उद्देश्य से रूप रेखाओं को इतना धूमिल और महीन बना दिया जा सकता है कि वे क्रान्त दर्शी बन सकें। अन्यथा अल्प पारदर्शिता तो उन में अवश्य आ जाय। इसी से आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिये भी संज्ञा शब्दों का, और आत्मा की (मानवीय वासनाओं की) अनुभूतियों के लिये सर्वनाम शब्दों का प्रयोग किया जाता है। तीव्रता, प्रभावोत्पादकता लाने के लिये लाक्षणिक व्यञ्जनात्मक अलंकारिक प्रतीकात्मक प्रयोग किए जाते हैं। इसलिये अभिव्यंजना प्रणालियों की विलक्षणता आध्यात्मिक तथा आत्मिक दोनों की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में पाई जा सकती है। किन्तु केवल अभिव्यंजना प्रणाली की विलक्षणता देख कर ही तुरन्त "रहस्यात्मक रचना" कह देने से धोखा भी खाया जा सकता है। प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी आदि के साथ 'रहस्यवाद' शब्द को ला घसीटने वाले लोग धोखा खा कर ही रह जाते हैं। ये सब कवि मानवीय

वासनाओं की वास्तविकता के कवि हैं रहस्यवादी कवि नहीं। आधुनिक जीवन में ईश्वर का स्थान मनुष्य ने ले लिया है। इसलिए साहित्य (विशेष कर काव्य साहित्य) में आध्यात्मिक अनुभूतियों का स्थान आत्मिक अनुभूतियों ने स्वतः ले लिया है। आधुनिक काव्य रहस्यात्मक काव्य नहीं अभिव्यंजनात्मक चमत्कारी काव्य है और तदनुसार आधुनिक कवि रहस्यवादी कवि न हो कर अभिव्यंजनावादी, चमत्कारवादी, आत्मवादी, मानववादी, वासनावादी, वास्तविकतावादी अथवा यथार्थ-वादी किसी भी नाम से पुकारे जा सकते हैं।

किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि रहस्यात्मक अनुभूतियाँ उन के काव्य में हैं ही नहीं। विरल क्षणों में इन की अनुभूतियाँ आध्यात्मिकता की सीमाओं को छू जाती हैं इसी से इन कीं रचनाओं में कुछ विरल स्थल ऐसे भी आ जाते हैं जिन्हें केवल आध्यात्मिक अर्थ में ही समझना संभव है। किसी भी भावुक हृदय की अनुभूतियाँ, भावातिरेक की अवस्था में इतनी तीव्र हो जा सकती हैं कि वह अनुभूति मात्र रह जाय। और कवि को स्वयं अपने तन मन की भी सुध न रहे। ऐसी दशा में उस के मुख से निकले शब्द, सुनने वालों से हृदय की वेदना (अनुभूति अथवा कविता) के अलावा और कुछ नहीं कहते। अनुभूति का यह क्षणिक दर्शन किसी साधक की ईश्वराभिमुख प्रवृति का ही परिणाम हो यह आवश्यक नहीं। ब्रह्मानन्द हो न हो काव्यानन्द अवश्य है। ब्रह्म दर्शन कर लेने वाले के लिये कवि होना अनिवार्य नहीं है। किन्तु कवि के लिए अनुभूति दर्शन कर सकने वाला होना नितान्त आवश्यक है। और तीव्रतम दशा की अनुभूति को व्यक्त करने के लिये भारतीय कवि अपने सांस्कृतिक जीवन की धाराओं में चली आने वाली आध्या-त्मवादी भाषा की शब्दावली, प्रतीक, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि प्रणालियों का जाने या अनजाने रूप में उपयोग करे यह स्वाभाविक है। भक्तों को, (आध्यात्मवादियों को) अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकट करने के लिये लौकिक जीवन और प्रेम की भाषा तथा अलं-

कारों आदि के प्रयोग की आवश्यकता हुई तो उन्हों ने उन्हें अपनाया। इसी प्रकार की भाषा उपयोग प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि स्वच्छन्दता से करते हैं। इस के अलावा जो कोई भी कवि भावना के आश्रय की अपेक्षा स्वयं अनुभूति को अधिक महत्व देगा उस की भाषा सूक्ष्म सांकेतिक, लाक्षणिक अथवा आध्यात्मिक प्रणाली की हो ही जावगी। मीरा, घनानन्द, प्रसाद, महादेवी में लक्ष्य की भिन्नता होते हुए भी भाषा प्रणाली की समता कुछ इसलिये भी है कि इन सभी ने वाह्य रूप के चित्रण से अधिक महत्व रूप के द्वारा हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव को दिया है। मीरा और घनानन्द के प्रेम का केन्द्र परमात्मा हैं, प्रसाद, पन्त और महादेवी के प्रेम का केन्द्र मानव। किन्तु केन्द्र को धूमिल बना कर जब ये कवि प्रेम को लक्ष्य बनाते हैं तब इन की भाषा शैली में अत्यधिक समानता आ जाती है। कुछ इस समानता के होने से भी लोग आधुनिक कवियों को रहस्यवादी समझ बैठते हैं।

रहस्य शब्द आनन्द की भावना को और एक कभी न सुलझने वाली उलझन को अपने अर्थ में लिए हैं विराट प्रकृति में किसी शक्ति का आभास रहस्य है, कुतूहल हैं। 'रभस' से जिस आनन्द का अर्थ लिया जाता है उस में रमणशीलता के कारण दाम्पत्य शृङ्गार की प्रधानता रहती है। और 'वाद' प्रतिपादन की सैद्धान्तिक प्रणाली को कहते हैं।

छाया वास्तविक वस्तु के आश्रय से चेतना हीन होने पर भी चेतना सम्पन्न मानी जा सकती है। आन्तरिक सौन्दर्य की वाह्य झलक झाईं कांतिमत छाया है।

काव्य शास्त्र में वह सैद्धांतिक प्रणाली तथा वह अभिव्यक्ति जिस में दाम्पत्य भावना की उलझन पैदा कर देने वाली जिज्ञासा कुतूहल पूर्ण अभिव्यक्ति हो, रहस्यवादी प्रणाली कही जाती है।

और वास्तविक सत्यता के आधार पर अन्य चेतना हीन वस्तुओं को चेतना सम्पन्न रूप में पहिचान कर आंतरिक सौंदर्य की कांतिमय झाँकी झलक को अभिव्यक्त करने का ढंग छायावादी प्रणाली है।

शैलियों की दृष्टि से रहस्यवाद प्रणाली और छायावादी, प्रणाली में कोई विशेष अन्तर नहीं है किन्तु फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से लोग दोनों में भेद करते हैं। दोनों ही प्रणालियों में कुछ बातों में साम्य है तो कुछ में वैषम्य। दोनों ही प्रणालियों में भाव अथवा अनुभूतियों के आलम्बन के चित्रण में अस्पष्टता रहती है। संज्ञाओं का प्रयोग बिना संज्ञाओं के ही कर दिया जाता है। लिंग भेद नहीं रक्खा जाता। उस अव्यक्त नाम सर्वनामी के प्रति सुख-दुख, विकलता, उद्वेग, प्रसन्नता, विषाद, उन्माद, मादकता आदि भावनाएँ प्रकट की जाती हैं। इसलिए पाठक आंतरिक रूप से प्रभावित हो कर भी अपनी बुद्धि को उलझन में पड़ी पाता है। उसे आसानी से यह पता से नहीं चल पाता कि वे भावनाएँ किस के प्रति प्रकट की जा रहीं हैं उन का आलम्बन कौन है।

प्राचीन सन्तों अथवा भक्तों की रहस्यमयी (आनन्दमयी) आध्यात्मिक वाणियों तथा कविताओं में कोई न कोई स्थल ऐसा अवश्य होता है जिस में इस बात का स्पष्ट या अस्पष्ट संकेत रहता है कि अनुभूतियाँ आध्यात्मिक सत्ता के प्रति हैं। प्रतीकात्मक प्रबंध काव्यों में इस प्रकार का संकेत प्रायः रूपक के रूप में रहता है। किन्तु जहाँ ऐसी अनुभूतियाँ बिना संकेत के होती हैं (उदाहरणार्थ उमर खैयाम की रूबाइयों में) वहाँ आध्यात्मिक और लौकिक दोनों अर्थों की सम्भावना रहती है। यद्यपि ऐसे अधिकांश काव्यों में भावनाओं का आलम्बन लौकिक सौंदर्य प्रेम का आधार मानव ही होता है फिर भी यदि कोई उन का आध्यात्मिक अर्थ लगाने लगे तो उसका विरोध करने के लिये अकाट्य प्रमाण नहीं रह जाते। इसी अभाव के कारण बहुत से लौकिक शृंगारी काव्यों को व्यर्थ ही आध्यात्मिक प्रणय का श्रेय मिल जाता है। विद्यापति, नन्ददास, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि के काव्यों में लोगों को सर्वत्र आध्यात्मवाद नजर आने लगता है। प्रसाद का आँसू चाहे शुद्ध लौकिक प्रेम के विषाद पूर्ण करुण गीति के रूप में प्रसाद की

जीवन-गाथा की टूटी हुई लड़ी है लेकिन लोगों को उस में रहस्यवाद ढूँढे बिना चैन नहीं पड़ता। ऐसे काव्यों में प्रेम भावना की तीव्रतम दशा की अनुभूति को अवश्य साहित्यिक रहस्यात्मक अनुभूति के अन्तर्गत ही गिना जावेगा क्योंकि 'प्रेम हरी को रूप है सो हरि प्रेम स्वरूप' और उस दशा में भाषा में लिंग भेद जब नहीं रह जाता तब उसे व्याकरण की भूल अथवा जान बूझ कर आवरण डालने का प्रयत्न समझना अनुचित है क्योंकि अनुभूति भाषा और जीवन की सीमाओं और उस के नियमों से भी परे की चीज है।

दाम्पत्य शृंगार की प्रधानता (अथवा जीवन में रति भाव की सर्व व्यापकता) के कारण प्रेम भावना की तीव्रतम अनुभूति विरहावस्था में होती है। विरह प्रेम को प्रसार देता है प्रणय को अनल, आँसू को सागर और हृदय को शून्य (आकाश की तरह सूक्ष्म तथा व्यापक, स्मृतियों के नक्षत्र चन्द्र, सूर्य दीप से दीप्त) वेदनाओं, भाव-वेगों और पीड़ाओं के मेघों-विजलियों से घिरा और शरद की शोभा से युक्त ग्रीष्म के ताप से ज्वलित, हेमन्त, शिशिर से जड़ित बना देता है। विरह में हृदय में बाड़वाग्नि, आँसुओं में शीतल ज्वाला जलती है। स्वरों में असीम हाहाकार गरज़ता है।

स्थिर आधार के न होने के कारण, रूप, आकार, रस, गंध, स्पर्श, शब्द आदि का चित्रण स्पष्ट रूप रेखाओं के सहारे नहीं होता। वरन् मानसिक प्रभाव और कल्पनाओं के रंगों के सहारे किया जाता है। द्विविधा और संभ्रम सदैव विकल किए रहते हैं। मन, बिना किसी आधार के अपनी अनुभूतियों से विकल हुआ चक्र की तरह भ्रमित होता रहता है। उसे शांति देने के लिए साकार आश्रय चुन लिया जाता है। जिस से सगुण साकार केन्द्र में मन रमा देने वाले प्रेमियों की अनुभूतियों में आधार की अस्पष्टता प्रायः नहीं रहती। उन की प्रेम भावनाओं में शान्ति होती है ज्वाला नहीं। मिलन सुख होता है विरह की तीव्रता नहीं। जो विकलता, जो चाह, जो छटपटाहट आश्रयहीन प्रेमी के हृदय

में होती है वह स्थिर स्पष्ट रूप रेखाओं के केन्द्र पर मन का दृढ़ विश्वास के साथ टिकाए रखने वाले के केन्द्र पर मन को दृढ़ विश्वास के साथ टिकाए रखने वाले प्रेमी की विरह वेदना में नहीं होती।

इसलिए निर्गुण और सगुण प्रेम भावना के प्रेमियों के विरह वर्णन में महान् अन्तर पाया जाता है। कबीर, जायसी, मीरा, दादू, घनानन्द, आदि के विरह में उद्वेग और आहों का ताप अधिक है, इसलिये वे हृदय को अधिक विकल कर देते हैं प्रेम की अतृप्ति, प्रेम के स्रोत की अप्राप्ति की वेदना जिन प्रेमी कवियों में तीव्र होगी उन्हीं का विरह वर्णन मार्मिक हो सकता है विरह की मार्मिकता के लिये उद्वेग, और ज्वाला अथवा भस्मी-व्यथा के साथ शान्त संयम का मिलन अनुभूति की तीव्रता को घटा देने वाला न हो कर उस के कलात्मक आत्म सौन्दर्य को बढ़ा देने वाला भी हो सकता है। कालिदास, भवभूति, रवीन्द्रनाथ और चन्द्रकुँवर बर्त्वाल में सौन्दर्य की तन्मयता और प्रेम विरह की तीव्रता को शान्त संयम ने महान् कलाकारों की कलात्मकता प्रदान की है।

सूर, तुलसी, रसखान आदि की विरह भावना उस सगुण साकार के प्रति है जिस का विविध सौन्दर्य मय रूप यह विश्व (दृश्य जगत) है। और जिस में मानव कथा विद्यमान है। मानव कथा अंश में जहाँ अभाव का प्रसंग आया है वहाँ भी कवियों को उस व्यक्ति रूपी ईश्वर के प्रवास ज्ञान का पता रहता है, इसलिए वहाँ स्थान-भेद की अनुभूति है, अभाव की अनुभूति नहीं। अस्तु इन कवियों में विरह, शान्ति की शीतलता में सरस रहता है और इस रूप में प्रेम के रहने से शायद उसे विरह नाम से वंचित भी किया जा सकता है। शान्त रूप में प्रेम ज्वाला से भास नहीं होता, उद्विग्नता से उलझता नहीं है।

किन्तु ऐसे कवियों में भी जब कभी प्रेम भावना के आश्रय के अस्तित्व का निश्चित ज्ञान नहीं रह जाता, तब विश्वास डगमगाने लगता है. शान्ति की शीतलता में ज्वालाओं का ताप आने लगता है

और धीरे धीरे विरह उस तीव्रतम अवस्था को पहुँच जाता है जो अभाव के कारण अतृप्त प्रेम के प्रेमियों भक्तों अथवा कवियों की भावना में सहज ही विद्यमान रहती है। ऐसे स्थलों पर ये सगुण प्रेम भावना के कवि भी रहस्यानुभूति के कवि कहे जावेंगे। सूर औरतुलसी को कोई भी रहस्यवादी कवि नहीं मानता, किन्तु जिस समय तुलसी कहते हैं:---

केशव कहि न जाय का कहिए........। शून्य भीति पर चित्र....।

और सीता के वियोग में विरहाकुल राम को वृक्षों लताओं तक से बात करते दिखलाते हैं, उस समय तुलसी में भी रहस्यानुभूति की क्षणिक झलक आ जाती है इसी भाँति रास लीला के समय कृष्ण के एकाएक गायब हो जाने से गोपियों में उत्पन्न हुई विरह भावना रहस्यमयी विरहानुभूति के अन्तर्गत ही गिनी जायेगी लेकिन कृष्ण के ब्रज से मथुरा और मथुरा से द्वारिका चले जाने पर जो तीव्र विरह दशा गोपियों की होती है वह रहस्यानुभूति के अन्तर्गत नहीं आ सकती, क्यों कि उस में गोपियों को पता है कि कृष्ण हैं, किन्तु अब अन्यत्र चले गये हैं। कठिनाइयों के बीच भी मिलन की संभावना हो सकती है आशा की यह क्षीण रेखा भी शान्ति लाने के लिए पर्याप्त है। रास के समय, गोपियों के सम्मुख प्रश्न दूसरे ही रूप में था। 'कृष्ण कहाँ चले गये ! थे तो सही, लेकिन अब हैं या नहीं, नहीं कहा जा सकता !' ये उलझनें थीं जो उन को विकल करती हैं, जो उन के लिए रहस्यमय बन जाती हैं। इसी प्रकार यदि, राम के सर्वान्तर्यामीपन को दूर रख कर सीता के लिए किए गये उन के विलाप को देखें तो वहाँ भी यही उलझनें हैं। इसलिए वहाँ भी रहस्य है।

आध्यात्मिक अनुभूतियाँ और लौकिक अनुभूतियाँ जिस चेतना को होती हैं वह एक ही है, इसलिए आध्यात्मिक और लौकिक अनुभूतियों की सीमाएँ परस्पर छू जा सकती हैं इतना ही नहीं एक दूसरे में रंग भर सकती हैं। मनुष्य शरीर ही शरीर नहीं आत्मा भी है, आत्मा ही आत्मा नहीं शरीर भी है। भाव दोनों से संबंधित है और इसी कारण अनुभूति

भी। भावानुभूति की घनीभूत वेदना ही महत्व की है यह वेदना चेतना का विषय है उसे जगाने वाला कारण जड़ भी हो सकता है और चेतन भी। विज्ञान, जड़ और चेतन का भेद करता है और उस स्थिति के संबंध को भी व्यक्त करता है जहाँ दोनो का भेद मिट जाता है--ऊपर प्रसाद आरंभिक स्थिति के अनुभव को अपने आँसू में 'जड़ता की माया थी चैतन्य समझ कर हम को' और कामायनी में 'ऊपर हिम था नीचे जल' के रूप में व्यक्त करते हैं। चन्द्रकुँवर महाकाश को देख पूछ बैठते हैं 'हे महाकाश तुम ही ईश्वर हो या ईश्वर से भी महान् हो (देखिये विराट ज्योति)। उन के हृदय में किसी अतीत की स्मृति जगती है तब उन के वेदना विकट प्राण मद अस्फुट स्वरों में गुन गुनाने लगते हैं।

१ कौन से तुम गान हो ?

आज मेघ मलीन दिन में, बज रही उर के पुलिन में,
कौनसी तुम तान हो ? कौन-से तुम गान हो ?
है विषाद भरा गगन, बहती प्रबल झंझा पवन,
काँपते तरु, पत्र पीले उड़ रहे कर स्वर करुण
मैं अकेला आज आँगन में खड़ा, क्यों न जाने हुआ उन्मन !
केश मेरे पवन में हैं फिर रहे नयन में मेरे सजल घन घिर रहे,
मैं न हूँ कुछ देखता, सुनता नहीं मूँद कानों को विकल मैं गा रहा हूँ
गीत वह जिस को न मैं सुन पा रहा हूँ, प्राण हे मेरे विकल हैं,
नयन ये मेरे सजल हैं, खोजती उस गीत को दृग हीन वाणी,
रो रही हो हाय निष्फल, हाथ ये बहते नहीं हैं !
किस अतीत विरह व्यथा का, किस विपिन में प्राण के कवि का लिखा
गीत व्याकुल यह हृदय को कर रहा ?

याद है मुझ को नहीं जिस रूप की,
हृदय उस की बन्दना है कर रहा ! हाय ! यह किस जन्म की
प्रिय वेदना को मन्द अस्फुट गुन गुनाते प्राण हैं मुझ को सुनाते ?

उतर आओ प्राण प्रिय मेरे अधर पर, मुझे और करो न कातर,
सुनाओ मुझको कथा उस जन्मकी, जब तुम्हीं से प्राण थे मेरे मुखर !
मथ रहे मेरे हृदय को कौन से तुम गान हो ?
आज मेघ-मलीन दिनमें, बज रही उरके पुलिनमें,
कौन-सी तुम तान हो ?

२ धूमिल बेला में सुन्दर वह छिपी याद है आती !
मर्मर मय एक कसक ला उत्पीड़ित उर कर जाती !
कितने मृदु स्वप्न विचरते, कितनी स्मृतियाँ आतीं,
पलकें कितनी प्यासी बन हैं स्वतः सदा उठ जातीं !
जिस से नहीं साक्षात हुआ, जिस का सुदूर है मिलना,
उस की ही स्मृति को ले कर, जीवन में घुल-घुल बहना !
कितनी विचित्र लगती है स्मृति की धूँधली छाया !
जिस में लवलीन बनी है, चिर प्यासी नीरव काया !
सुख-साधन पास पड़े हैं, अकुलाता पर यह मानस,
है सदा ढूँढता रहता ऊषा-अधरों का मृदु रस !
किस का शोक गीत गाता मैं फिरता निर्जन बन में ?
किस से मिलने को आतुर होता अपने लघु जीवन में ?

३ तरु पर रहती विहगी जैसे, बादल में शशिनी,
गिरि पर रहतीं परियाँ जैसे, मानस में नलिनी !
उस दूर्वा के शाल विपिन में रहती थी वह रानी !
लता लाजवन्ती हो जाती छूने से निष्प्राण,
सुनने वाला देख, कोकिला चुप कर देती गान !
मुझे देख कर छाया में वह हो जाती थी अंतर्धान !
मेरे उर को कर देती थी दूर्वा छू उन्मन,
नई धूप-घिर-घिर कर करती सहसा उन्मद गुंजन !
छाया, प्रिया बिना सूने घर-सा कर सूना अभिनंदन !
जहाँ न उत्तर मिले वहीं पर प्रेम चाहता जाना,

जहाँ न सुनने वाला कोई वहीं चाहता गाना,
वहो प्रेम, मैं ने उस वन में छाया में पहिचाना !
नहीं एक भी शब्द कहीं से स्तब्ध-विपिन दोपहरी,
सहसा गुन-गुन गूँजी मक्खी, यह उस की स्वर लहरी !
प्यार शाल-बन करता जैसे नई बधू बन-रानी,
उसी तरह मैं भी करता हूँ वही लज्जिता रानी !
हम दो प्रेमी एक साथ हैं छिपी कहाँ वह रानी ?

४ यह संध्या, ये विहगों के स्वर किस अतीत को जगा रहे हैं ?
जिस की करुण रागिनी सुन कर, मेरे प्राण पिघल पड़ते हैं !
वह देहरा की शाल कुंज की हरी दूब की सेज सजी !
वही व्यथा जो वहाँ बजी थी, आज यहाँ क्यों हाय बजी ?
मिटे वर्ष कितने ही पर क्या वे बादल न मिटे हैं ?
इस जीवन संध्या में जो वे उसी तरह उमड़े हैं !
ये पंछी किस मरण गीत को इस संध्या में सुना रहे हैं ?
यह संध्या ये विहगों के स्वर किस अतीत को जगा रहे हैं ?
यह किस के कपोल की लाली पश्चिम नभ में फैली ?
मेरी आँखों में प्रवेश कर, मुझ को व्याकुल बना रही ?
यह जाता दिन, गिरि-शिखरों के पीछे धुंधला पड़ता,
मुझे अकेले बादल-सा क्यों, मलिन कलेवर करता ?
आज हृदय क्यों सूनेपन का अनुभव कर विदीर्ण होता ?
आज हृदय क्यों, इस संध्या में, गये दिनों को रोता ?

५ हाय ! न जाने क्यों, इस संध्या के नेत्र मलीन !
होने वाला है इन में भी सारा दिन ही प्रिये विलीन !
स्निग्ध-लालिमा अन्तस्तल की, जगत कालिमा वह चुप-चाप,
किसी दुखी को आज दे उठी क्या, घुल-घुल मरने का शाप ?
स्फुटित मसृण नीलोत्पल-दल एकाएक हो एकाकार,
किस अबोध अलि हेतु प्रेम-गृह बना गये फिर कारागार ?

यह कारा पाषाण निर्मिता फिर, फिर क्यों इतनी बनी मलीन !
उठता आता अन्तस्तल से. किस बंदी का रोदन क्षीण ?
फैला है पत्थर-पत्थर में, वह पागल पन. वह अवसाद,
व्याप्त हुआ है इस कारा में, किस के विरह गीत का नाद ?
कितने दिन संसार डुबा कर सदा बने हैं नेत्र नवीन,
किस के जीवन की उज्ज्वलता होगी इस में आज विलीन ?

कहीं कोई प्यार मुझको कर रहा है ! किसीके आपीत अंगोंकी छटा,
पवन मेरे शून्य गृहमें भर रहा है ! किसीके गीले दृगोंसे उठ सजल,
मेघ मेरे हृदय-तल पर झर रहा है !
भर कभी जाते नयन आनंद से,
हृदय पर कोई मुझे तब धर रहा है !
सुन कभी पड़ती अचानक क्षीण-सी,
दूर से आती हुई ध्वनि दीन-सी,
विजन-विपिनों में किसी का स्वर मुझे,
खोजता तब पल्लवों में मर रहा है !
कहीं कोई प्यार मुझ को कर रहा है !

ऐसी कविताओं को लिखने में कोई गहन अनुभूति होती है, जो हर एक के पास नहीँ होती। इस प्रकार की सहृदय विभूतियों के कहने में अवश्य कुछ अर्थ रहता है। जिस बात को मैथलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाँडे आदि सीधे ढंग से कहते हैं उसी को प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, चन्द्रकुँवर आदि कुछ घुमा फिरा कर कहते हैं। इस घुमाव में लक्षणाओं-व्यंजनाओं का प्रयोग करते हैं। परंपरित रूपकों, उत्प्रेक्षाओं तथा उपमाओं और रूपकातिशयोक्तियों का ध्वन्यात्मक प्रयोग सूक्ष्म ढंग से ऐसी कविताओं में रहता है। सर्वनामों और अन्य शब्दों के भाव चित्र घनीभूत वेदना के कारण गेय बन जाते हैं। सूक्ष्म अनुभूतियों की गहराई भावावेश शैली में अभिव्यक्ति पाती है। ध्वनियों की वक्रता उस में कलात्मक सौंदर्य ले आती है। मुक्त कला-

गीत के अन्तर्गत ये गीत आते हैं। इन्हीं के ढंग के गीत अंगरेजी में लिरिक कहे जाते हैं। ऐसे गीतों में जो बात छिपाई जाती है उस का कुछ सांकेतिक अर्थ आ जाता है। एक गीत में एक भाव की एक तानता रहती है। प्रसाद की लहर, निराला की गीतिका, महादेवी की यामा, बच्चन की निशा-निर्मंत्रण, नरेन्द्र के प्रवासी के गीत, चन्द्रकुँवर की नंदिनी, गीत माधवी तथा पयस्विनी ऐसे गीतों को संजोये हैं।

आधुनिक युग में रवीन्द्रनाथ ने पहले पहल जब ऐसी कविताएँ कीं तो उन की ओर लोगों का ध्यान गया। रवीन्द्र ने परमात्मा और आत्मा में भेद नहीं माना। परमात्मा और आत्मा से सबन्ध रखने वाली कविता आध्यात्मिक रहस्य भावना की कविता कहलाती है। रहस्य परमात्मा और आत्मा के सम्बन्ध में है। परमात्मा और आत्मा के सम्बन्ध में लीन भावुक साधक, भक्त कवि अपनी इस प्रकार की भावनाओं को जिस ढंग से व्यक्त करता है वही रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति शैली है। उस में यथातथ्य चित्रण नहीं रहता। भावावेश में व्यक्ति तीव्र गति से स्वतः कहता चला जाता है। ऐसी शैली की कविताएँ ही रहस्यभावना की कविताएँ कहलाती हैं।

रवीन्द्रनाथ को नवम्बर सन् १६१३ ई० में गीतांजलि पर नोबुल पुरस्कार मिला तो गीतांजलि की धूम मच गई। लोग उस की शैली का अनुकरण करने लगे। गीतांजलि में उपनिषदों की विचार धारा कबीर की वाणियों से होती हुई आई है। हिन्दी में यह विचार धारा पहिले से चली आ रही थी। हिन्दी के आधुनिक कवियों ने उसे नवीन आलोक में देखा। प्रसाद, निराला, चन्द्रकुँवर ने उसे अपनाया, पंत और बच्चन पश्चिम की ओर गये। संस्कृत, फारसी और बंगला के द्वारा भी इस प्रकार की धारा हिन्दी में आ मिली। इस सम्मिलन से हिन्दी की आधुनिक कविता ने अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों में ही नवीन शक्ति को संचित कर भिन्न-भिन्न दिशाओं में साहित्य विकास के लिये द्वार खोल दिए।

अनुक्रमणिका

अलकनंदा-मंदाकिनी-प्रकाशन

(१) 'विराट-हृदय' में हिन्दी कविता, प्रसाद, पंत निराला, चन्द्र-कुँवर-मौलाराम- मानोदय के अलावा प्रसाद कृत अजातशत्रु और आँसू का भी विवेचन है। मूल्य चार रुपय्या। (२) 'पयस्विनी' की पंक्तियाँ डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में "लोक में सौदामिनी की रेखाओं की भाँति उजला प्रकाश भरती रहेंगी।" मूल्य पौने चार रुपय्या। (३) 'नदिनी' की पंक्तियाँ पढ़ कर "अंगरेजी कवि श्यैले और कीटस् तथा गुजराती कवि कलापी की याद आ जाती है," मूल्य ढाई रुपय्या। (४) 'हिरण्य गर्भ कवि की नंदिनी' नंदिनी विषयक लेखों का संकलन; मूल्य छ आना। (५) 'काफलपाक्कू कवि' हिमवन्त काफलपाक्कू-कवि विषयक रचना; मूल्य पाँच आना। (६) 'हिमवन्त का एक कवि' चन्द्रकुँवर बर्त्वाल को हिन्दी जगत में लाने वाली पहली पुस्तक; मूल्य सवा रुपय्या। (७) 'कंकड़-पत्थर', चन्द्रकुँवर के "नवीन गीतों के वे कंकड़-पत्थर हैं जिन के द्वारा हमारे भावी समाज का निर्माण होगा।" मूल्य आठ आना। (८) 'विराट ज्योति', विराट चेतना के दर्शन कराने वाली रचना; मूल्य दस आना। (९) 'प्रणयिनी' में "अलका के यक्ष कालिदास के समीप चन्द्रकुँवर दिखाई देते हैं," मूल्य दो रुपय्या। (१०) 'गीत माधवी' प्रकृति और मानव हृदय के पतझड़ बसन्त के सौंदर्य रहस्य का गान करने वाली उपहारोपयोगी रचना है। मूल्य ढाई रुपय्या। (११) 'सुन्दर-असुन्दर'--में रस, रसखान-घनानंद, सूर-तुलसी, नंददास, जन-मुकुन्द, बिहारी-मनीराम आदि का विवेचन है। मूल्य सवा दो रुपय्या। (१२) 'साकेत परीक्षण'--के विषय में 'कर्मवीर' तथा 'हिमाचल' का कहना है--वह 'एक ऐसी नवीन कृति है जिस को लिखने के लिए दूसरे किसी लेखक को बहुत बड़े साहस की आवश्यकता होती, "साहित्यिक ऐतिहासिक तुलाओं पर निर्भीकता से 'साकेत' को कसा गया है।" मूल्य डेढ़ रुपय्या।

प्राप्ति—सूत्र (१) साथी प्रेस, हेवेट रोड लखनऊ.

(२) कुसुमपाल नीहारिका, राय बिहारीलाल रोड लखनऊ.